प्रथम संस्करण, १९४७

प्रकाशक— किताब महल, ५६-ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद
मुद्रक—पं० रामभरोस मालवीय, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग

उन महान कवियों को जिन्होंने
'छायावाद' नाम की नई
धारा का प्रवर्तन किया और
वर्षों की एकांत साधना द्वारा
हिन्दी कविता में नई प्राण-प्रतिष्ठा की

प्रथम संस्करण, १९४७

प्रकाशक— किताब महल, ५३-ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद
मुद्रक—पं० रामभरोस मालवीय, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग

इन महान् कवियों को जिन्होंने
'छायावाद' नाम की नई
धारा का प्रवर्तन किया और
वर्षों की एकांत साधना द्वारा
हिन्दी कविता में नई प्राण-प्रतिष्ठा की

'छायावाद'

१९०९ ई० के लगभग हिन्दी में एक नई काव्य-धारा का प्रवर्तन हुआ। जयशंकरप्रसाद इस नई काव्यधारा के सूत्रधार थे और इस नई काव्यधारा को बल देने के लिए ही उन्होंने 'इन्दु' (१९०९—१३) प्रकाशित कराया। सुमित्रानन्दन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' इस नई काव्यधारा के अन्य दो अग्रणी थे। इन तीनों कवियों ने नई-नई काव्य-भूमियों को जन्म दिया और भाषा, शैली एवं अभिव्यंजना के नये-नये मार्ग उन्मुख किये। अनेक नये कवियों ने इस काव्यधारा में योग दिया। बङ्गला और पश्चिम के काव्य-साहित्य से प्रभावित होकर प्राचीन काव्य-परम्परा के प्रति विद्रोही होते हुए भी इन कवियों ने हिंदी काव्य-साहित्य को अपनी मौलिक प्रतिभा, अनवरत साधना और अप्रतिम कला से धनी किया। १९३६ तक यह काव्यधारा अबाध गति से बहती रही। हिन्दी कविता में चतुर्दिक क्रान्ति का सूत्रपात इसी धारा द्वारा हुआ। वर्षों तक यह काव्यधारा 'छायावाद' नाम से लांछित रही और छायावादी कवि समाज में नगण्य, तुच्छ और आकाशजीवी होने के कारण उपेक्ष्य माना

गया। परन्तु आज हम जानते हैं कि 'छायावाद' शब्द को लांछित होने का कोई कारण नहीं है। जिस समय देश अपनी राजनैतिक और सामाजिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था उस समय साहित्य और कला के प्रसार और उनकी स्वतंत्रता केलिए छाया-वादी कवियों ने जो युद्ध किया, जो लांछन सहे, जो साधना की, वह स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के इतिहास में गर्व की वस्तु होगी।

इसी 'छायावाद' का यह इतिहास है। आधुनिक युग की साहित्य की मुक्तिविधायिनी इस काव्यधारा का अभी और अध्ययन करना होगा। तभी हम इन साहित्यिक साधकों के ऋण से मुक्त हो सकेंगे।

गांधी-जयन्ती
२-१०-१९४७

रामरतन भटनागर

तालिका

१
भूमिका

'छायावाद' आधुनिक हिंदी कविता की एक नई प्रवृत्ति है जिसके जन्म एवं विकास का समय १९०९ ई० से १९३६ ई० तक माना जा सकता है। परंतु छायावाद की कविता अब भी हो रही है और यद्यपि साहित्यिक आंदोलन के रूप में वह महत्वपूर्ण नहीं है, परंतु परंपरा के रूप में उसका पालन अब भी हो रहा है। नये, प्रगतिवाद के साहित्यिक आन्दोलन में योग देने वाले बहुत से कवि पहले छायावादी कवि थे। अतः यदा-कदा उनकी लेखनी से ऐसी कविताएँ निकल जाती हैं जो छायावाद की परंपरा को ही पोषित करती हैं, नई कविता (प्रगतिवाद की कविता) में नहीं आतीं। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि छायावाद एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में पच्चीस वर्षों तक क्रियाशील रहा। फिर नई साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों ने कवियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया और वे एक नये प्रकार के काव्य के उन्नायक बन गये। प्रगतिवाद की कविता की अनेक प्रवृत्तियाँ छायावादी काव्य से प्रभावित एवं विकसित हुई हैं। इस प्रकार 'छायावाद-काव्य' के अंतर्गत पिछले चार दशकों का काव्य आ जाता है।

परंतु पिछले चार दशकों में 'छायावाद-काव्य' से इतर अनेक अन्य प्रकार के काव्य की सृष्टि भी बराबर होती रही। भाषा के अनुसार हम व्रजभाषा और खड़ी बोली के काव्य को अलग-अलग कर सकते हैं परंतु व्रजभाषा का काव्य रीतिकालीन परंपरा का पोषक-मात्र है और वह आधुनिक कविता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति नहीं है। खड़ी बोली काव्य को हम तीन मोटे शीर्षकों में रख सकते हैं।

(१) कवित्त-सवैयों का साहित्य : यह व्रजभाषा के कवित्त-सवैया साहित्य का ही नया संस्करण था।

(२) इतिवृत्तात्मक गद्यात्मक साहित्य : इसे द्विवेदीयुग का साहित्य (१६००—२१) कहा जाता है। इसमें नये छंदों में विचारात्मक और सुधार भावना से पोषित कविताएँ लिखी गईं। श्रीधर पाठक इस कविता के आदि गुरु हैं और इसके प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं। विषय-भेद से इस काव्य के अनेक भेद हो सकते हैं—(१) राम-चरित्र, (२) कृष्ण-चरित्र, (३) शिव-चरित्र, (४) पौराणिक उपाख्यान, (५) संत-चरित्र, (६) पौराणिक महाकाव्य, (७) भक्ति-स्तुति, (८) ऐतिहासिक खण्ड-काव्य, (६) ऐतिहासिक महाकाव्य, (१०) मानव-चरित्र (जीवन-चरित्र), (११) सामयिक तथा राष्ट्रीय, (१२) सामाजिक, (१३) व्यंग-विनोद, (१४) प्रकृति-चित्रण। और भी अनेक विषय-विभेद हो सकते हैं। महत्ता शैली की है। इस काव्य की शैली इतिवृत्तात्मक है। बोल-चाल की गद्य से उसमें अंतर भले ही हो, ऊँची श्रेणी की काव्योत्कृष्टता उसमें नहीं है। यह काव्य अधिकांश वर्णनात्मक और विचार-प्रधान है।

(३) 'छायावाद' : इस पुस्तक का विषय यही काव्य है। इसके कई पक्ष हैं—

(क) प्रेमोपाख्यान—आधुनिक साहित्यिक की एकदम नवीन प्रवृत्ति है। इसकी प्रमुख रचनाएँ हैं जयशंकर प्रसाद का 'प्रेमपथिक' (१६१३), हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि' कृत प्रेमपथिक (१६१८), रामनरेश त्रिपाठी के काव्य 'मिलन' (१६१८), 'पथिक' (१६२०) और 'स्वप्न' (१६२६), सुमित्रानंदन पंत की 'ग्रन्थि' (१६३०) और रामकुमार वर्मा की 'निशीथ'।

(ख) उच्छ्वासपूर्ण भावना-प्रधान कविताएँ—इनमें प्रमुख हैं, मन्मन द्विवेदी का 'प्रेम' (१६१५), सुमित्रानंदन पंत का 'उच्छ्वास'

(१९२२), जयशंकर प्रसाद का 'आँसू' (१९२६), रामकुमार वर्मा का 'अभिशाप' (१९३०), हरिकृष्ण प्रेमी की रचना 'आँखों में' (१९३०), विश्वनाथप्रसाद की कृति 'मोती के दाने' (१९३४) और गौरीशंकर झा का काव्य 'स्मृति' (१९३४)। इस कव्य में पृष्ठभूमि में प्रेम और विरह तो है, परंतु आलंबन इतना अस्पष्ट है कि कविता की प्रत्येक पंक्ति का ठीक-ठीक अर्थ समझा भी नहीं जा सकता है। इन सभी रचनाओं में कल्पना और भावुकता की प्रधानता है।

(ग) रहस्यवाद की कविता—यह इस काव्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है। परंतु केवल 'रहस्यवाद' कह देने से इस काव्य का पूरा-पूरा समाधान नहीं हो जाता। इस कविता के अनेक विषय हैं, अनेक शैलियाँ हैं, अनेक छंद। वास्तव में 'छायावाद' के नाम से यही रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इन्हीं रचनाओं के मौलिक तत्त्वों पर हमें इस ग्रन्थ में विचार करना है। प्रमुख रचनाएँ हैं—जयशंकरप्रसाद के 'कानन कुसुम' (१९१३) तथा चित्राधार (१९१८), लोचनप्रसाद शर्मा का 'प्रवासी' (१९१४), मुकुटधर पांडेय का 'पूजाफूल' (१९१६), ईश्वरीप्रसाद शर्मा का 'सौरभ' (१९२१), सूर्यकांत त्रिपाठी की 'अनामिका' (१९२३), रूपनारायण पांडेय का 'पराग' (१९२४), मोहनलाल महतो का निर्माल्य (१९२६), रामनाथ सुमन की 'विपञ्ची' (१९२६), सुमित्रानंदन पंत के 'पल्लव' (१९२७) और 'वीणा' (१९२७), मोहनलाल महतो का 'एकतारा' (१९२७), रामनरेश त्रिपाठी की 'मानसी' (१९२७), गुरुभक्त सिंह का 'कुसुम-कुञ्ज' (१९२७), जयशंकरप्रसाद का 'झरना' (१९२७) द्वितीय संस्करण), सियारामशरण गुप्त की 'आर्द्रा' (१९२८), आनंदिप्रसाद श्रीवास्तव का 'उषाकाल' (१९२८), जगदीश झा विमल की 'छाया' (१९२८), गोपालशरण सिंह की 'माधवी' (१९२९), शांतिप्रिय द्विवेदी का 'नीरव' (१९२९), विद्याभूषण विन्दु की

'ज्योत्स्ना' (१९२९), सियारामशरण गुप्त का 'दूर्वादल' (१९२९), महेन्द्र शास्त्री की 'हिलोर' (१९२९), मैथिलीशरण गुप्त की 'झंकार' (१९२९), सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का 'परिमल' (१९३०), महादेवी वर्मा का 'नीहार' (१९३०), मंगलप्रसाद विश्वकर्मा की 'रेणुका' (१९३१), सुभद्राकुमारी चौहान का 'मुकुल' (१९३१), रामकुमार वर्मा की 'अंजलि' (१९३१), बालकृष्ण राव की 'कौमुदी' (१९३१), हरिकृष्ण प्रेमी का 'अनंत के पथ पर' (१९३१), सुमित्रानंदन पंत का 'गुंजन' (१९३२), भगवतीचरण वर्मा का 'मधुकण' (१९३२), महादेवी वर्मा की 'रश्मि' (१९३२) हरिवंशराय बच्चन का 'तेरा हार' (१९३२), जनार्दनप्रसाद झा द्विज की 'अनुभूति' (१९३३), रामकुमार वर्मा की 'रूपराशि' (१९३३), रामेश्वरी देवी 'चकोरी' का 'किञ्जल्क' (१९३३), नरेन्द्र का 'शूल-फूल' (१९३४), तारा पांडेय का 'सीकर' (१९३४), रत्नकुमारी देवी का 'अंकुर' (१९३४), सियारामशरण गुप्त का 'पाथेय' (१९-३४), महादेवी वर्मा की 'नीरजा' (१९३४), आनंदकुमार का 'मधुवन' (१९३५), जयशंकरप्रसाद की 'लहर' (१९३५), मोहन-लाल महतो की 'कल्पना' (१९३५), हरिवंशराय बच्चन की 'मधुशाला' (१९३५), रामकुमार वर्मा की 'चित्ररेखा' (१९३५), रामधारीसिंह दिनकर की 'रेणुका' (१९३५), बालकृष्णराव का 'आभास' (१९३५), हरिवंशराय बच्चन की 'मधुबाला' (१९३६) नरेन्द्र का 'कर्णफूल' (१९३६), महादेवी वर्मा का 'सांध्यगीत' (१९३६), सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'गीतिका' (१९३६), तारा पांडेय का 'शुकपिक' (१९३७), इलाचंद्र जोशी की 'विजनवती' (१९३७), भगवतीचरण वर्मा का 'प्रेम-संगीत' (१९३७), हरिवंशराय बच्चन का 'मधुकलश' (१९३७), रामकुमार वर्मा का 'चंद्रकिरण' (१९३७), गोपालशरणसिंह की 'कादम्बिनी' (१९३७), आनन्दकुमार का 'पुष्पबाण' (१९३८), गोपालशरण

सिंह की 'मानवी' (१९३८), रामेश्वर शुक्ल अंचल की 'मधूलिका' (१९३८), हरिवंशराय बच्चन का 'निशानिमंत्रण' (१९३८), आरसीप्रसाद सिंह का 'कलापी' (१९३८), आनन्दकुमार का 'सारिका' (१९३९); गोपालशरण सिंह की 'संचिता' (१९३९), रामेश्वरी देवी चकोरी का 'मकरंद' (१९३९), राजेश्वर गुरु की 'शेफाली' (१९३९), उदयशंकर भट्ट की 'मानसी' (१९३९), रामरतन भटनागर का 'ताण्डव' (१९३९), सुदर्शन की 'झंकार' (१९३९), रामेश्वर शुक्ल अंचल की 'अपराजिता' (१९३९), अनूप शर्मा की सुमनांजलि (१९३९), तोरन देवी लली की 'जागृति' (१९३९), उदयशंकर भट्ट का 'विसर्जन' (१९३९), हरिवंशराय बच्चन का 'एकांत संगीत (१९३९), महादेवी वर्मा की 'माया' (१९४०), नरेन्द्र शर्मा का 'पलाशवन' (१९४०), सुमित्रानंदन पंत की 'पल्लविनी' (१९४०), हरिकृष्ण प्रेमी का 'अग्निगान' (१९४०), गोपालशरण सिंह की 'सुमना' (१९४१), रामेश्वर शुक्ल अंचल की 'किरण वेला' (१९४१), उपेन्द्रनाथ अश्क की 'ऊर्मियाँ' (१९४१), भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'ओस की बूँद' (१९४१), माखनलाल चतुर्वेदी की 'हिमकिरीटिनी' (१९४१), महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' (१९४२), और हृदयनारायण 'हृदयेश' की 'सुषमा' (१९४२)। १९४३ के बाद से इस प्रकार की रचनाओं की परंपरा में उतना बल नहीं रहा, परंतु अब भी 'पत्रों' में और फुटकर काव्य-संग्रहों में इस श्रेणी की कविताएँ सामने आ रही हैं।

यह स्पष्ट है कि इस शताब्दी का पहला दशक बीतते-बीतते इस नये काव्य (छायावाद) की धारा ऊपर आने लगती है। १९००-१९१० की सरस्वती का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि द्विवेदीयुग की वृत्तात्मक, गद्यात्मक कविताओं के साथ अंग्रेज़ी के उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक कवियों की रचनाओं की ओर भी हमारे कवियों का ध्यान जाने लगा था। कूपर, ब्लैक, लांगफैलो,

बाइरन और शैली की कुछ रचनाएँ हम पहले दशक में अनुवाद के रूप में सामने आईं। परन्तु प्रवृत्ति के रूप इस धारा का जन्म 'इन्दु' (मासिक पत्र, काशी, १९०६) के जन्म से मानना चाहिये। 'सरस्वती' (१९००-१९१६) और इंदु (१९०६—१९१६) छायावाद के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वास्तव में इन्हीं पत्रों में ये नई कविताएँ प्रयोग रूप में सामने आती हैं। पहला प्रकाशित कविता-संग्रह 'काननकुसुम' (१९१३) है। १९२६ में 'आँसू' और १९२७ में वीणा के प्रकाशन के साथ इस काव्य-धारा में स्थायित्व आ गया। आगे के दस वर्ष इस काव्यधारा के सबसे उत्कृष्ट वर्ष हैं।

छायावाद के तीन पहले महत्वपूर्ण कवि जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हैं। इन कवियों ने हिंदी काव्य-क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जब सारा काव्य द्विवेदीयुग की जड़ता और इतिवृत्तात्मकता से निष्क्रिय और निष्प्राण हो रहा था। यह काव्य मूलतः नैतिकतावादी था। नारी-सौन्दर्य, प्रेम, कल्पना-विलास, जीवन के आनन्द का स्वच्छन्द प्रकाशन, इनका इस काव्य में ज़रा भी स्थान नहीं है। नए खड़ी बोली काव्य को गढ़ने के लिए आचार्य द्विवेदी ने मराठी काव्य को अपना आदर्श माना था। आधुनिक भारतीय भाषा के काव्यों में मराठी का काव्य सबसे अधिक पुरातनवादी है। वही संस्कृत के वृत्त, वही रुक्ष पदावली, वही नैतिकवाद। इसका फल यह हुआ कि हिंदी की द्विवेदीयुग की कविता को अच्छा नेतृत्व न मिला और वह जड़ रूढ़ि बन गई। श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण के काव्य को छोड़कर उसमें क्या धरा था? स्वयं श्रीधर पाठक अंग्रेज़ी के १८वीं सदी के कवि गोल्डस्मिथ, पोप, ड्राइडन आदि से प्रभावित हैं। प्रत्येक युग का साहित्य उस युग के अनुरूप होता है। १९वीं शताब्दी के अंतिम दशक और बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक अति-नैतिकवादी थे। क्रांति का कहीं नाम न था। रूढ़ियों-परंपराओं का समर्थन जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता

समझा जाता था। इसी से कवियों की दृष्टि आचारवादी १८वीं सदी के क्लासिकल काव्य और मराठी कविता तक सीमित रही।

परन्तु १९वीं शताब्दी के अंत होते-होते देश बँगला-काव्य से परिचित हो रहा था। माइकेल, विहारीलाल, हेमचंद्र और रवीन्द्र हिंदी प्रदेश में भी पहुँचे। इनमें रवीन्द्र की कविता पर अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद, उपनिषदों के रहस्यवाद, बंगला भावुकता और वैष्णव भक्ति का प्रभाव था। १९१३ के आसपास उनके काव्य के अनुकरण से ये प्रभाव भी हिंदी में आ गये। परन्तु रवीन्द्रनाथ ने अकेले छायावादी काव्य को जन्म दिया, यह कहना अत्युक्ति होगी। १९०० के बाद से ही 'सरस्वती' में कीट्स, शेली, वर्डसवर्थ, ब्लेक आदि रोमांटिक कवियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे थे। इन अनुवादों ने अनुवाद-कर्त्ताओं और लेखकों को प्रभावित किया। दूसरे, अंग्रेज़ी की उच्च कक्षाओं में रोमांटिक काव्य पढ़ाया जाने लगा था और नये हिन्दी के कवि इससे अपरिचित नहीं रह सके। पंत द्वारा अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का प्रभाव मुख्य रूप से हिन्दी में आया। 'पंत' और 'निराला' दोनों रवीन्द्र के काव्य से प्रभावित हैं। 'पंत' के 'पल्लव' और निराला की कितनी ही कविताओं में रवीन्द्र के स्वर बोल रहे हैं। निराला ने विवेकानन्द के अद्वैत भक्ति के काव्य से स्फूर्ति ली। प्रसाद ने रवीन्द्र की गीताञ्जलि के प्रभाव को ग्रहण किया। 'झरना' की कविताएँ इसका उदाहरण हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रभाव को शीघ्र ही छोड़ दिया। उर्दू काव्य की व्यंजना-शैली और भावुकता एवं संस्कृत मुक्तकों एवं आचार्यों की स्थापना से इंगित लेकर उन्होंने अपने लिये एक विशिष्ट काव्य-शैली का निर्माण किया।

केवल एक दशक के भीतर (१९१०—२०) हिन्दी काव्य में महान् क्रांति हो गई। जिन लोगों ने इसका सूत्रपात किया वे बंगला या अंग्रेज़ी काव्य के पंडित थे। जितनी शीघ्रता से यह क्रांति हुई उसका उदाहरण इस देश की कविता के इतिहास में मिलना असंभव है।

इस क्रांति के कारण पाठक कवियों से बहुत पीछे रह गये। उन्होंने कवि पर अस्पष्टता, छायात्मकता, अनैतिकता, पाश्चात्य काव्य का अंधानुकरण, रवीन्द्र की जूठन—सौ तरह के आक्षेप लगाये। कवि सौन्दर्योन्मुख था। वह लापरवाही से गाता हुआ बढ़ता गया। वह कहता गया—

चींटियों की सी काली पाँति
गीत मेरे चल फिर निशि ओर
फैलते जाते हैं बहुभाँति
बधु, छूने अग जग के छोर

इस अहंता की भावना ने पाठक-कवि का विरोध बढ़ाया। लगभग एक दशक तक यह विरोध चलता रहा। १६३० के लगभग साधारण जनता में यह छायावादी कवि लोकप्रिय हो चुके थे और समीक्षकों ने उनके काव्य में सौन्दर्य का पता लगा लिया था। १६३५-३६ तक हिन्दी-काव्य-जगत् पर छायावाद का राज रहा। इसके बाद धीरे-धीरे उसके प्रति प्रतिक्रिया ने जन्म लिया और प्रगतिवाद नाम से एक नई धारा प्रकाश में आई। 'छायावाद' के अग्रगण्य कवि पंत इसके प्रवर्तक बने।

ऊपर जो लिखा है उसके स्पष्ट है कि १६१२ ई० जब रवि बाबू की गीतांजलि हिन्दी संसार में आई तो प्रसाद उससे प्रभावित हुए। काशी क्षेत्र में रहते हुए शैवभक्तों के बीच में पले प्रसाद आत्मसमर्पण और अदृश्य सत्ता की गहरी अनुभूति के संदेश के प्रभाव से बच सकते, ऐसा असंभव था। 'गीतांजलि' का प्रभाव 'पंत' और 'निराला' की कुछ कविताओं पर भी है, परन्तु यह प्रभाव कहीं भी अधिक नहीं है। हिन्दी के इन तीनों कवियों ने अलग-अलग दिशाएँ ग्रहण कीं और एक नये प्रकार के काव्य का सूत्रपात किया। प्रसाद ने अभिव्यंजना की एक नई शैली निकाली और प्रेम, सौन्दर्य और आनन्द को अपना विषय बनाया। 'झरना' को छोड़कर उनकी अन्य कविताओं पर रवि बाबू का ज़रा भी प्रभाव नहीं है। उनकी अपनी शैली, अपनी मूर्ति-

मत्ता है। 'पंत' ने अंग्रेज़ी के रोमांटिक (स्वच्छंदतावादी) कवियों के काव्य का सहारा लिया और 'छाया', 'बादल' 'ज्योत्स्ना' जैसी कविताएँ लिखकर प्रकृति और मानव के सहज-सुन्दर परंतु रहस्यमय संबंध की ओर संकेत किया। पंत नारी-सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। जीवन की सभी छोटी-मोटी भंगिमाओं के प्रति जितना प्रेम उनकी कविताओं में लक्षित है, उतना प्रेम अन्य स्थान पर नहीं मिलेगा। 'निराला' ने रवि बाबू के प्रौढ़ काव्य से बल प्राप्त किया। हिन्दी के अन्य कवियों की संवेदना केवल 'गीतांजलि' तक सीमित रहती है। रवि बाबू की 'उर्वशी' जैसी विराट चित्रपटी से वह अपिरिचित नहीं थे। निराला ने उनके लिए एक नई परंपरा स्थापित की। 'विधवा', 'भिक्षुक' जैसी प्रतिदिन की संवेदनाओं को लेकर उन्होंने काव्य का सुन्दर प्रासाद खड़ा किया। उनकी क्लासिकल प्रकृति ने उन्हें 'राम की शक्ति-उपासना', 'जागो फिर एक बार' और 'तुलसीदास' जैसे खंडकाव्यों की ओर बढ़ाया। इस प्रकार गीतांजलि का प्रभाव अधिक दिन तक नहीं टिक सका।

परंतु इसमें संदेह नहीं कि इन तीनों कवियों (प्रसाद, पंत, निराला) ने काव्य-परंपरा से हटकर एक नये काव्य की नींव डाली। जितनी बड़ी क्रांति 'छायावादी' काव्य ने की, उतनी बड़ी क्रांति हिंदी कविता के किसी भी युग में नहीं हुई थी। भाव, भाषा, शैली, व्यंजना—सभी में शत-प्रति-शत क्रांति थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रगतिशील विचारक और आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल जैसे विचारशील आलोचक नए काव्य को परंपरा-भ्रष्ट और उच्छृंखल समझने लगे। कौन नहीं जानता कि आचार्य द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' नाम से पंत की कविताओं का विरोध किया था। और आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल ने 'रहस्यवाद' विषय पर एक बृहद् ग्रंथ लिखकर छायावादी कवियों को चुनौती दी थी। मई १९२७ की सरस्वती में द्विवेदीजी ने 'कविकिंकर' के नाम से 'पंत' की 'वीणा' की

इस क्रांति के कारण पाठक कवियों से बहुत पीछे रह गये। उन्होंने कवि पर अस्पष्टता, छायात्मकता, अनैतिकता, पाश्चात्य काव्य का अंधानुकरण, रवीन्द्र की जूठन—सौ तरह के आक्षेप लगाये। कवि सौन्दर्योन्मुख था। वह लापरवाही से गाता हुआ बढ़ता गया। वह कहता गया—

चीटियों की सी काली पाँति
गीत मेरे चल फिर निशि ओर
फैलते जाते हैं बहुभाँति
बधु, छूने अग जग के छोर

इस अहंता की भावना ने पाठक-कवि का विरोध बढ़ाया। लगभग एक दशक तक यह विरोध चलता रहा। १९३० के लगभग साधारण जनता में यह छायावादी कवि लोकप्रिय हो चुके थे और समीक्षकों ने उनके काव्य में सौन्दर्य का पता लगा लिया था। १९३५-३६ तक हिन्दी-काव्य-जगत् पर छायावाद का राज रहा। इसके बाद धीरे-धीरे उसके प्रति प्रतिक्रिया ने जन्म लिया और प्रगतिवाद नाम से एक नई धारा प्रकाश में आई। 'छायावाद' के अग्रगण्य कवि पंत इसके प्रवर्तक बने।

ऊपर जो लिखा है उससे स्पष्ट है कि १९१३ ई० जब रवि बाबू की गीतांजलि हिन्दी संसार में आई तो प्रसाद उससे प्रभावित हुए। काशी क्षेत्र में रहते हुए शैवभक्तों के बीच में पले प्रसाद आत्मसमर्पण और अदृश्य सत्ता की गहरी अनुभूति के संदेश के प्रभाव से बच सकते, ऐसा असंभव था। 'गीतांजलि' का प्रभाव 'पंत' और 'निराला' की कुछ कविताओं पर भी है, परन्तु यह प्रभाव कहीं भी अधिक नहीं है। हिन्दी के इन तीनों कवियों ने अलग-अलग दिशाएँ ग्रहण कीं और एक नये प्रकार के काव्य का सूत्रपात किया। प्रसाद ने अभिव्यंजना की एक नई शैली निकाली और प्रेम, सौन्दर्य और आनन्द को अपना विषय बनाया। 'झरना' को छोड़कर उनकी अन्य कविताओं पर रवि बाबू का ज़रा भी प्रभाव नहीं है। उनकी अपनी शैली, अपनी मूर्ति-

गया है। 'पंत' ने अंग्रेज़ी के रोमांटिक (स्वच्छंदतावादी) कवियों के काव्य का सहारा लिया और 'छाया', 'बादल' 'ज्योत्स्ना' जैसी कविताएँ लिखकर प्रकृति और मानव के सहज-सुन्दर परंतु रहस्यमय संबंध की ओर संकेत किया। पंत नारी-सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। जीवन की सभी छोटी-मोटी भंगिमाओं के प्रति जितना प्रेम उनकी कविताओं में लक्षित है, उतना प्रेम अन्य स्थान पर नहीं मिलेगा। 'निराला' ने रवि बाबू के प्रौढ़ काव्य से बल प्राप्त किया। हिन्दी के अन्य कवियों की संवेदना केवल 'गीतांजलि' तक सीमित रहती है। रवि बाबू की 'उर्वशी' जैसी विराट चित्रपटी से वह अपरिचित नहीं थे। निराला ने उनके लिए एक नई परंपरा स्थापित की। 'विधवा', 'भिक्षुक' जैसी प्रतिदिन की संवेदनाओं को लेकर उन्होंने काव्य का सुन्दर प्रासाद खड़ा किया। उनकी क्लासिकल प्रकृति ने उन्हें 'राम की शक्ति-उपासना', 'जागो फिर एक बार' और 'तुलसीदास' जैसे खंडकाव्यों की ओर बढ़ाया। इस प्रकार गीतांजलि का प्रभाव अधिक दिन तक नहीं टिक सका।

परंतु इसमें संदेह नहीं कि इन तीनों कवियों (प्रसाद, पंत, निराला) ने काव्य-परंपरा से हटकर एक नये काव्य की नींव डाली। जितनी बड़ी क्रांति 'छायावादी' काव्य ने की, उतनी बड़ी क्रांति हिंदी कविता के किसी भी युग में नहीं हुई थी। भाव, भाषा, शैली, व्यंजना—सभी में शत-प्रति-शत क्रांति थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रगतिशील विचारक और आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल जैसे विचारशील आलोचक नए काव्य को परंपरा-भ्रष्ट और उच्छृंखल समझने लगे। कौन नहीं जानता कि आचार्य द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' नाम से पंत की कविताओं का विरोध किया था। और आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल ने 'रहस्यवाद' विषय पर एक बृहद् ग्रंथ लिखकर छायावादी कवियों को चुनौती दी थी। मई १६२७ की सरस्वती में द्विवेदीजी ने 'कविकिंकर' के नाम से 'पंत' की 'वीणा' की

विरोधी आलोचना की थी, उन्होंने वीणा के प्रकाशकों से आग्रह करके भूमिका का एक अंश निकलवा भी दिया था। पंत को भी वृद्ध द्विवेदी के व्यंग का उत्तर व्यंग से देना पड़ा था—

"व्यास, कालिदास के होते हुए, तथा सूर, तुलसी के अमर काव्यों के होते हुए भी ये कवि यशोलिप्सु, कवित्वहंता छायावाद के छोकड़े, कमल-यमल, अरविंद-मलिंद आदि अनोखे-अनोखे उपमानों की लाङ्गून लगा, कामा-कुलिस्टापों से जर्जरित, प्रश्न-आश्चर्य-चिह्नों के तीरों से मर्माहत कभी गज़-गज़ की लंबी, कभी दो ही दो उंगलियों की टेढ़ी-मेढी, ऊँची-नीची, यतिहीन, छंदहीन, काली सतरों की चीटियों की टोलियाँ, तथा अस्पृश्य काव्य के गुह्यातिं-गुह्य कच्चे घरौंदे बना, ताड़पत्र, भोजपत्र को छोड़ बहुमूल्य कागज़ पर मनोहर टाइप में, अनोखे-अनोखे चित्रों की सजधज तथा-उत्सव के साथ छपवा कर, जो 'विन्ध्यस्तरेत् सागरम्' की चेष्टा कर रहे हैं, यह सरासर इनकी हिमाकत, धृष्टता, अहमन्यता, तथा 'हम चुना दीगरे नेस्त' के सिवा और क्या हो सकता है? घटानां मियातुम्नि भुवन विद्यातुथ्यं कलहः।" इत्यादि। (भारतेन्दु, भाग, १ १९३८)

वास्तव में जितनी शीघ्रता से काव्य के विषय, अभिव्यक्ति के ढंगों और छंदों एवं शैलियों में परिवर्तन हुआ, उतनी शीघ्रता से जनता कवियों का साथ नहीं दे सकी। कवि-सम्मेलनों में, मासिक-पत्रों में, घर-बाहर सर्वत्र इन नये कवियों का विरोध हुआ। इस महान् विरोध के कारण इन छायावादी कवियों को अपने काव्य की व्याख्या करनी पड़ी। उन्हें अपनी प्रवृत्तियों को सुलभे रूप में जनता के सामने रखना पड़ा। इससे यह लाभ हुआ कि हम कवियों की भावधाराओं के संबंध में आज अधिक जानते हैं और उनकी मनः-भावनाओं का उनकी कविताओं से स्पष्ट संबंध स्थापित कर सकते हैं।

पहले हम छायावाद काव्य के जनक प्रसादजी की व्याख्या लें।

'इन्दु' (१६०६—१६) में प्रसाद के कुछ प्रारंभिक निबंध कविता और प्रकृति पर लिखे मिलते हैं। इनसे हमें प्रसाद के प्रारंभिक विचारों का पता चलता है। 'इन्दु' कला १, किरण १, प्रस्तावना में वे लिखते हैं—"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता और उसके लिए कोई विधि का निबंधन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ भी सत्य और सुंदर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्णरूप से विकसित करता है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और (स्वतंत्र) आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" (१६०६) "अधिकांश महाशय × × × कविता-मर्म समझने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यों, छन्द-विषयक अरुचि है? इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कविता नहीं मिलती और पुरानी कविता को पढ़ना तो महा क्लेश-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस ढंग की कविता बहुतायत से हो गई है। × × × शृंगार-रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं और इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी अपने को भुला देनेवाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी, वृत्ति स्फुरण-कारिणी, आलस्य को भंग करनेवाली, आनंद बरसाने वाली धीर-गंभीर पद विक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिये। अब दूर नहीं है; सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग कर रही है, और प्रबल रूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को भी लजावेगी, एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेगी, भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।" ('इन्दु', कला २, किरण १, १६१०)

'प्रसाद' के अनुसार आधुनिक काव्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ (१) यथार्थवाद, (२) रहस्यवाद और (३) छायावाद हैं। प्रसाद यथार्थवाद को आदर्शवाद का विरोधी मानते हैं, परन्तु रहस्यवाद और छायावाद से उसका कोई विरोध नहीं मानते। उनके अनुसार हमारा सारा साहित्य मूलतः आदर्शवादी है। यथार्थवाद बाबू हरिश्चंद से आरंभ होता है। यह यथार्थवाद आधुनिक काव्य का महत्वपूर्ण अंग है। उन्होंने 'छायावाद' की भी विशद विवेचना की है। उनके अनुसार 'छायावाद' अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट शैली मात्र है। रहस्यवाद से उसका कोई अनिवार्य संबंध नहीं। उन्होंने अभिव्यक्ति के इस नये ढंग को प्राचीन काव्य में भी खोज निकाला है और आचार्यों की साक्षी ला खड़ी की है। उनके अनुसार छायावाद की विशेषताएँ हैं (१) ध्वनि, (२) लक्षणा (३) सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान, (४) कथन की वक्रता, (५) स्वानुभूति। इस तरह उन्होंने आधुनिक आलोचकों के उस वर्ग से मतभेद प्रगट कर दिया है जो छायावाद को रहस्यवाद का पर्यायवाची मानते हैं। यथार्थवादी काव्य के अंतर्गत वह सब काव्य आ जाता है जिसमें उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति है, व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख का उल्लेख है, मनोवैज्ञानिक अवस्था या सामाजिक रूढ़ियों का चित्रण है, स्त्रियों के प्रति नारीत्व की दृष्टि है या राष्ट्रीय भावना है। स्वयं प्रसाद के काव्य का बहुत थोड़ा भाग यथार्थवाद के अंतर्गत आता है। 'प्रलय की छाया' को हम इसके भीतर रख सकते हैं। प्रसाद का अधिकांश काव्य रहस्यवाद या छाया-वाद के अंतर्गत आता है। प्रसाद शैव थे, आनन्दवादी कवि थे, इस दृष्टि से उनके सारे काव्य में आनन्द और रहस्य की एक धारा बह रही है। 'लहर' की कितनी ही रचनाएँ सुन्दर रहस्यवादी काव्य हैं। परंतु उनका आग्रह 'छायावाद' की ओर ही विशेष है, इसमें कोई संदेह नहीं। प्रसाद-काव्य में 'आँसू' छायावाद का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

प्रसाद की 'छायावाद' की विवेचना साहित्य-सम्बंधी उनकी सारी स्थापनाओं में सबसे मौलिक है। उनका कहना है कि आधुनिक कविता की छायावादी धारा रीतिकालीन परंपरा की प्रतिक्रिया है जिसमें वाह्यवर्णन की प्रधानता है। इसे हम वेदना के आधार पर स्वानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति कह सकते हैं। छायावाद की कविता के संबंध में वे लिखते हैं—"ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा वाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद-योजना सफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था। हिंदी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त की जाने लगी।" इस प्रकार वे 'छायावाद' को प्रधानतयः शब्द, शब्द-भंगिमा और शैली के क्षेत्र में एक क्रांति मानते हैं। वे इसे रहस्यवाद से अलग वस्तु समझते हैं। यह तो ठीक है कि आधुनिक काव्य की अभी अपनी भाव-दिशाएँ विकसित हो रही थीं :

(१) वेदना की प्रधानता

(२) स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति (व्यक्तिवाद)

(३) भावों क' सूक्ष्म व्यंजना

(४) नवीन पद-योजना

(५) नवीन शैली

(६) नया वाक्य-विन्यास जिसमें सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भाव में एक तड़प उत्पन्न कर दे।

(७) आभ्यंतर वर्णन के लिए शब्दों की नवीन भंगिमा।

प्रसाद ने छायावाद के इसी वाह्य पक्ष की ओर ही अधिक बल दिया है। जब कवि वाह्य उपाधि से हटकर आन्तरहेतु की ओर प्रेरित हुए, तो उन्हें अभिव्यक्ति का एक निराला ढंग आविष्कृत करना पड़ा। 'इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई,

हिंदी में वे पहले से कम समझे जाते थे; किंतु शब्दों के भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है।' इसी स्वतंत्र शक्ति की साधना छायावादी कवियों को मान्य हुई।

अभिव्यक्ति के इस नये ढंग की प्रसाद ने प्राचीनों की उक्तियों के सहारे व्याख्या की है। उन्होंने बताया है, यह कोई नई वस्तु नहीं। भारतीय काव्य-परंपरा में बराबर इसका प्रयोग रहा है और आनंदवर्द्धन और कुन्तक जैसे आचार्यों ने साहित्य-शास्त्रों में इसकी व्याख्या की है। कवि अर्थ से कुछ अधिक प्रगट करना चाहता था। इसके लिए वह एक नई शैली पकड़ता है। अर्थ से अधिक जो है, उसे प्राचीन आचार्यों ने 'लावण्य', 'छाया', 'विच्छित्ति', वक्रता, 'वैदग्ध-मैत्री' नाम से प्रगट किया है। इसे 'ध्वनि' भी कहते हैं।" यह ध्वनि प्रबंध, वाक्य, पद और वर्णों में दीप्त रहती है। कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा के भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी-सुलभ श्री की वहिन ही है, घूँघट वाली वाली लजा नहीं। संस्कृत साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अपने लिए अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है। इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष-काल में अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की भी थी, किंतु आंतर अर्थवैचित्र्य को प्रगट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं। उन्होंने उपमाओं में भी आंतरसारूप्य खोजने का प्रयत्न किया है। निरहङ्कार मृगांक, पृथ्वीगत यौवना, संवेदन मिवाम्बरं, मेघ के लिए जनपदवधू लोचनैः पीयमानः या कामदेव के कुसुमशर के लिए विश्वसनीयमायुधं, ये सब प्रयोग वाह्य सादृश्य को प्रगट करते हैं।" "इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक हैं।" प्रसाद कहते हैं—"प्राचीन साहित्य में यह छायावाद

अपना स्थान बना चुका है। हिंदी में जब इस तरह के प्रयोग आरंभ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परंतु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्यजगत् के लिए अत्यंत आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। बाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आंतर की ओर चल पड़ी थी।"

छायावाद काव्य पर आलोचकों ने यह दोष लगाया है कि वह अस्पष्ट है, इसका निवारण प्रसाद ने किया है: "कुछ लोग इस काव्य में अस्पष्टता का रंग भी देखते हैं। हो सकता है कि जहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो, वहाँ अभिव्यक्ति विशृंखल हो गई हो, परन्तु सिद्धांत में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट छाया-मात्र हो, वही छायावाद है।" परंतु प्रसाद छायावाद और रहस्यवाद को पर्यायवाची शब्द नहीं मानते। "मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है। इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धांत भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलंबन, स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्यधारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से संबंध रखने वाली कविता को ही छाया-वाद नहीं कहा जा सकता।" वे छायावाद की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—"छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आंतर-स्पर्श करके भावसमर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है।"

प्रसाद स्वयं रहस्यवादी कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। अतः रहस्यवाद

के संबंध में उनके विचार उपादेय है। रहस्यवाद की परिभाषा वे इस तरह करते हैं :

(१) काव्य की आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।

(२) वास्तव में भारतीय दर्शन और साहित्य दोनों का समन्वय रस में हुआ था और यह साहित्यरस दार्शनिक रहस्यवाद से अनुप्राणित है।

(३) रहस्यवाद सच्चा भी हो सकता है और मिथ्या भी। प्रसाद ने मिथ्या रहस्यवाद के उदाहरण दिये हैं।

(४) प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद की हमारी अपनी दार्शनिक एवं काव्य-परंपरा है, परंतु मध्ययुग में मिथ्या रहस्यवाद का इतना प्रचार हुआ कि सच्चे रहस्यवादी पुरानी चाल की छोटी मंडलियों में लावनी गाने और चंग खड़काने लगे। प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद का आधार आर्य अद्वैत धर्म भावना है। उन्होंने ऋग्वेद के समय से लेकर आज तक की रहस्यवादी चिंताधारा का इतिहास लिखा। इस ऐतिहासिक विवेचना में प्रसाद आर्यों की दो चिंताधाराओं तक जाते हैं। आर्यों में ऐकेश्वरवाद और आत्मवाद की दो चिंताधाराएँ अलग-अलग चल रही थीं। ऐकेश्वरवाद के प्रतिनिधि थे वरुण और आत्मवाद के इंद्र। इस प्रकार भारत के प्राचीनतम इतिहास के समय से दो धाराएँ बराबर चली आती हैं, एक, विकल्पात्मक बुद्धिवाद की धारा; दो, आनंदवाद की धारा। कठ, पांचाल, काशी और कोशल आनंदवादियों के केन्द्र थे। मगध का संबंध से व्रात्यों से थे। सदानीरा के उस पार का देश दार्शनिक चिंतन और दुःखवाद की भूमि रहा है। अद्वैत रहस्यवाद की परंपरा उपनिषदों के ऋषियों से प्रारम्भ होती है और आगमवादी, टीकाकार, योगी, सिद्ध और संत इस धारा को आगे बढ़ाते हैं। सिद्धों और संतों की रहस्य संप्रदाय की परंपरा में अंतिम नाम तुकनगिरि और रसालगिरि आदि

के हैं जो लेखनी में शुद्ध रहस्यवाद, आनंद और अद्वयता की धारा बहाते रहे थे। आधुनिक रहस्यवाद के सम्बन्ध में प्रसाद का मत है—"वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष सहानुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से सम्बन्ध करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमें सम्मिलित है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी संपत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।"

यथार्थवाद की व्याख्या करते हुए प्रसाद ने कहा है—"यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य में माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःखों और अभावों का वास्तविक उल्लेख।" "वेदना से प्रेरित होकर जन-साधारण के अभाव और वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है। प्रसाद की यथार्थवाद-सम्बन्धी धारणा के मुख्य अंग हैं—

(१) जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण

(२) लघु और उपेक्षित जीवों और वस्तुओं के प्रति सहानुभूति

(३) दुःख और वेदना की अनुभूति

(४) व्यक्तिगत जीवन के दुःखों और अभावों का वास्तविक उल्लेख

(५) संकीर्ण संस्कारों के प्रति विद्रोह

(६) मनुष्य की दुर्बलताओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण

(७) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों की परख

(८) स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने रहस्यवाद, यथार्थवाद और छायावाद को इस नई कविता (छायावाद) का आवश्यक अंग माना है और इन अंगों की विशद व्याख्या की है। इन व्याख्याओं से यह स्पष्ट है कि रहस्यवाद और यथार्थवाद का सम्बन्ध विषय से है, छायावाद का शैली से। आधुनिक काव्य इसलिए तो महत्वपूर्ण है ही कि उसने नये विषय अपनाये हैं, इसलिये और भी महत्वपूर्ण है कि उसने अभिव्यक्ति के नये ढंग (लाक्षणिक व्यञ्जना) को स्वीकार किया है। इस वाह्य पक्ष पर प्रसाद अधिक बल देते हैं।

प्रसादजी की भाँति पंत ने भी अपने काव्य पर बहुत कुछ लिखा है :

१—कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्य-पट चुपचाप, मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में दूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल कूर्मांचल की छायांकित पर्वत-श्रेणियाँ, जो अपने सिखरों पर रजत-मुकुट हिमाचल को धारण की हुई हैं, और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाये हुए हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबाकर कुछ काल के लिये भुला सकती हैं। और शायद पर्वत प्रांत के वातावरण का ही प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत की तरह, निश्चय रूप से अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पना-जीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जन-भीरु भी बना दिया। यही कारण

है कि जनसमूह से अब भी मैं दूर भागता हूँ, और मेरे आलोचकों का यह कहना कुछ अंशों तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगों के सामने आने में लजाती है।

२—दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्त्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी। मेरी निजी इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई। मनुष्य के जीवन के अनुभवों का इतिहास बड़ा ही करुण प्रमाणित हुआ है। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थि-पंजर।

३—किन्तु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से जहाँ जीवन के नाम-रूप-गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि में भटकाता है, वहाँ वह छिलके में रस की तरह व्याप्त एक ऐसी सूक्ष्म संश्लेषात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्र को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने मेरे मन को अस्थिर वस्तु-जगत से हटा कर अधिक चिरंतन भावजगत में स्थापित कर दिया।

४—व्यक्तिगत सुख-दुःख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नहीं दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है।

५—बाद की रचनाओं में मेरे हृदय का आकर्षण मानव-जगत की ओर अधिक प्रगट होता है।

६—'छायावाद' के पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रह कर अलंकृत संगीत बन गया था। द्विवेदी युग के काव्य की तुलना में छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौन्दर्य-बोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था और उसका भाव-शरीर द्विवेदी युग के काव्य की

परंपरागत सामाजिकता से पृथक हो गया था। किंतु वह नवयुग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के वाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र' की धारणा (वास्तविकता) नहीं आई थी। उसके 'हास-अश्रु आशाऽकांक्षा' 'खाद्य मधु पानी' नहीं बन सके थे। इसलिए वह एक ओर निगूढ़, रहस्यात्मक, भावप्रधान (सबजेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनिक और आवरणमात्र रह गया। दूसरे शब्दों में नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने से पहले हिंदी कविता छायावाद के रूप में, इस युग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं-संबंधी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर पलायन के रूप में, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर, भीतर-बाहर में, सुख-दुःख में, आशा-निराशा, संयोग-वियोग के द्वन्द्वों में सामंजस्यता स्थापित करनी पड़ी।

७—'पल्लव'काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज़ी कवियों—मुख्यतः शेली, वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनीसन—से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है। रविबाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीनयुग की, सौन्दर्य-कल्पना ही में परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगन रहा है। इस प्रकार मैं रवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ। और यदि लिखना एक unconcious-concious process है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का यत्र-तत्र उपयोग भी किया है और उसे अपने विकास का अंग बनाने की चेष्टा की है।

८—छायावादी कवियों पर अतृप्त वासना का लांछन मध्यवर्गीय (बूर्ज्वा) मनोविज्ञान (डेप्थ साइकॉलोजी) के दृष्टिकोण से नहीं लगाया जा सकता। भारत के मध्ययुग की नैतिकता का लक्ष्य ही अतृप्त वासना और मूक वेदना को जन्म देना रहा है, जिससे बंगाल के वैष्णव कवियों के कीर्तन एवं सूर-मीरा के पद भी प्रभावित हुए हैं। संसार के सभी देशों की संस्कृतियाँ अभी सामंत युग की नैतिकता से से पीड़ित हैं। हमारी क्षुधा (संपत्ति) काम (स्त्री) के लिए अभी नहीं बनी है।

९—अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है, और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा है। शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे हैं।

सुश्री महादेवी वर्मा ने भी अपना व्यक्तिगत विश्लेषण हमें इस प्रकार दिया है—

१—एक ओर साधना-पूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या संप्रदाय में न बँधनेवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर, माँ की पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने व्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।

२—वाह्य जीवन के दुःखों की ओर मेरा ध्यान विशेष जाने लगा....

३—तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं, अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी

अनुरागमयी भारतजननी भारतमाता', 'तेरी उतारूँ आरती, मा भारती !' आदि रचनाओं की सृष्टि की।

४—इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई जिसमें व्यक्तिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा।

५—मेरी काव्यजिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य और दर्शन में सीमित रही और कुछ संतयुग की रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फैल गई। करुणा-बहुल होने के कारण बुद्ध-सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।

६—मेरे संपूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धिप्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पा रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियों में दबे हुए, निर्जीव संस्कारों का भार ढोते हुए और विविध विषमताओं में साँस लेने का अवकाश न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भावजगत् की वेदना को गहराई और जीवन की क्रिया दी।

७—निरन्तर एक स्पंदित मृत्यु की छाया में चलते हुए मेरे अस्वस्थ शरीर और व्यस्त जीवन को जब कुछ क्षण मिल जाते हैं तब वह एक अमर चेतना और व्यापक करुणा से तादात्म्य करके अपने आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करता है।

८—इस बुद्धिवाद के युग में भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है वह किसी रूढ़ि, धर्म या संप्रदायगत न होकर उस सूक्ष्म सत्ता की परिभाषा है। व्यक्ति की सप्राणता में समष्टिगत एक-प्राणता का आभास देती है और इस प्रकार वह मेरे सम्पूर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है जो जीवन के सब रूपों के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है। जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का

कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता, यह तो दूसरे ही बता सकेंगे, परन्तु हृदय में तो आज निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गंभीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।

९—साहित्य मेरे जीवन की संपूर्ण साधना नहीं है।

१०—बाहर के वैषम्य और संघर्ष से थकित मेरे जीवन के जिन क्षणों में विश्राम मिलता है उन्हीं को कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मैं समय-समय पर उनके (काव्य-मर्मज्ञ पाठकों के) पास पहुँचाती रही हूँ।

११—मेरी कविता यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत सूक्ष्म की भावक है, अतः उसके उपयोग के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

१२—भौतिकता के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण और हिंसा से जर्जरित जीवन में व्यक्त युग को देखकर स्वयं कभी-कभी मेरा व्यथित मन भी अपनी करुण भावना से पूछना चाहता है—'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री'।—परन्तु मेरे हृदय के कोने-कोने में सजग विश्वास जानता है कि जिस विद्युत के भार से कठोर पृथ्वी फट जाती है, उसी को बादल की सजलता अपने प्राणों का आलोक बनाये घूमती है। अग्नि को बुझाने के लिए हमें उसके विरोधी उपादानों में ही शक्तिशाली जल की आवश्यकता होगी, अंगारों के पर्वत और लपटों के रेले की नहीं।

'छायावाद' के संबंध में कवियित्री के विचार उपादेय हैं:

एक—छायावाद ने नये छन्द-बंधों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था, अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तौल और काट-छाँट कर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतर कलेवर दिया।

दो—इस युग की प्रायः सब प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रखता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप भी। परन्तु अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण वे कहीं सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता, कहीं संवेदन की गहराई, कहीं कल्पना के सूक्ष्म रंग और कहीं भावना की मर्मस्पर्शिता लेकर अनेक वादों को जन्म दे सकी है।

तीन—यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्य-धारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परंपरा भी थी।

चार—कितने दीर्घकाल से वासनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य का हमारे ऊपर कैसा अधिकार रहा है यह कहना व्यर्थ है। युगों से कवि को शरीर के अतिरिक्त और कहीं सौन्दर्य का लेश भी नहीं मिलता था। वह उसी के प्रसाधन के लिए अस्तित्व रखता था। जीवन के निम्न स्तर से होता हुआ यह स्थूल, भक्ति की सात्विकता में भी कितना गहरा स्थान ला सका है यह हमारे कृष्ण-काव्य का शृंगार वर्णन प्रमाणित कर सकेगा।

यह तो स्पष्ट है कि खड़ी बोली का सौन्दर्यहीन इतिवृत्त उसे हिला भी न सकता था। छायावाद यदि अपने संपूर्ण प्राणवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असंख्य रूपरंग में अपनी भावना-द्वारा सजीव करके उपस्थित न करता तो उस धारा को × × × × मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को उसके समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकेंगी।

पाँच—छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ था, अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हो सका;

परन्तु उसकी सौन्दर्य दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण करना है।

छः—छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धांतों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रूप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।

सात—छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा यह निर्विवाद है परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है इस प्रश्न के कई उत्तर हैं।

आठ—छायावाद के जन्मकाल में मध्यम वर्ग की ऐसी क्रांति नहीं थी। आर्थिक प्रश्न इतना उग्र नहीं था, सामाजिक विषमताओं के प्रति हम संपूर्ण क्षोभ के साथ आज के समान जागृत भी नहीं हुए थे और हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर असंतोष का इतना स्पष्ट रंग भी नहीं चढ़ा था। तब हम कैसे कह सकते हैं कि केवल संघर्षमय जीवन से पलायन के लिए ही उस वर्ग के कवियों ने एक सूक्ष्म भाव-जगत् को अपनाया। हम केवल इतना कह सकते हैं कि उन परिस्थितियों ने आज की निराशा के लिए धरातल बनाया।

ऊपर जो कहा गया है उससे छायावाद काव्य की प्रवृत्तियों का निरूपण इस प्रकार हो सकता है :

१—अभिव्यंजना के नये कलात्मक प्रयत्न

२—पाश्चात्य साहित्य और बंगला काव्य का प्रभाव

३—प्रकृति की ओर स्वाभाविक और रहस्यात्मक आकर्षण

४—वासनामूलक स्थूल सौन्दर्य से हटकर सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

५—जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव

६—स्थूल के प्रति प्रतिक्रिया

७—दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन का प्रभाव

८—संत-साहित्य एवं बुद्ध का प्रभाव
९—व्यक्तिगत दुःख-सुख
१०—कल्पनाप्रियता
११—पारिवारिक और वैयक्तिक प्रभाव
१२—बाह्य जीवन के दुःखों का प्रभाव
१३—सामाजिक और राष्ट्रीय जागृति का प्रभाव
१४—बुद्धि-प्रसूत चिंतन
१५—अस्वस्थता और व्यस्तता

दोनों कवियों ने 'पलायनवाद' और 'अतृप्तवासना' के आक्षेपों का उत्तर दिया है। ये प्रमुख छायावादी कवि इन दोनों लांछनों को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं। पंत कहते हैं कि संत और भक्त-साहित्य भी पलायनवाद पर स्थित है और संतों और भक्तों ने भी अपनी अतृप्त आकांक्षाओं को ही भगवान को समर्पित किया है। इस प्रकार यह तो कोई लांछन और अपराध की बात है ही नहीं। महादेवी की दृष्टि में छायावाद के आरंभ के दिनों में आर्थिक समस्याएँ इतनी जटिल नहीं थीं जितनी आज हैं, अतः उनसे भागने का प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु जहाँ महादेवी इस काव्य से नितान्ततः संतुष्ट हैं, वहाँ पंत के काव्य के प्रति दृष्टिकोण में महान परिवर्तन हो गया है। 'आधुनिक कवि : सुमित्रानंदन पंत' की कवि की अपनी भूमिका, उनकी प्रगतिशीलता को स्पष्ट कर देती है। उन्होंने ठीक ही कहा है—"(छायावाद) के पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था। वह नये युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सकता था।" परंतु इतना होते हुए भी हिंदी काव्य में आमूल क्रांति करने का श्रेय 'छायावाद' को है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत है यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता।

१९२७ ई० तक यह नई काव्य-वेलि भली भाँति पल्लवित हो उठी थी। 'इन्दु' कला ८, किरण १, जनवरी १९२७ में इस नये काव्य की प्रगति के संबंध में सम्पादक (वास्तव में यह वक्तव्य प्रसादजी ने ही लिखा है) लिखते हैं—"गद्य के साथ आधुनिक हिन्दी कविता ने भी करवट ली है। अभी उसका लड़कपन दूर नहीं हुआ है, पर नींद की इस नई करवट ने उसे मधुर अवश्य बना दिया है। पहले वह सेवा की चीज थी, अब प्रेम की वस्तु हो गई है। पुराने अभिभावकों को शिकायत है कि अस्पष्टता और उच्छृङ्खलता बढ़ रही है पर वह भूल जाते हैं कि ये दोनों बातें जीवन के वसन्त और यौवन के संधिकाल के दो बहुत ही आवश्यक उपकरण हैं। हिन्दी के नये मधुकर बड़े-बूढ़ों की इस शिकायत का शायद यह जवाब दें कि पौढ़ता मुबारिक हो उनको जिनकी यात्रा का वही संबल है। अल्हड़पन ही जो जीवन का विकास है। हम भी यह कहें तो अनुचित न होगा कि सौन्दर्य सदैव एक रहस्य है, अतएव जहाँ जितनी ही सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता भी रहेगी। सौन्दर्य की भाषा में जो अस्पष्टता, संकोच और सिर झुका कर कभी ऊपर देख लेने वाली लज्जा की सहेली है वही साहित्य के प्रगति-विशान में प्रतियोगिता के चिन्ह हैं। परिवर्तन की इस अवस्था पर रोने वाले रोयें, पर वह रोने की नहीं, मुस्कराने की चीज़ है। हँसने की चाहे भले ही न हो। हमारा तो विश्वास है कि साहित्य के दृष्टिकोण में सबसे महत्वपूर्ण जो परिवर्तन हुआ और वह कविता से ही सम्बन्ध रखता है।" परन्तु अभी भी इस नये काव्य के विरोधी कम नहीं थे। १९३० में प्रकाशित 'परिमल' की भूमिका में निराला ने छायावाद विरोधी दल की शक्ति का अच्छा चित्र खींचा है—"इस युग के कुछ प्रतिभाशाली अल्प-वयस्क साहित्यिक प्राचीन गुरु उसके एकच्छत्र साम्राज्य में बग़ावत के लिए शासनदंड ही पा रहे हैं, अभी उन्हें साहित्य के राज-पथों पर स्वतन्त्र रूप से चलने का सौभाग्य नहीं मिला। परन्तु ऐसा जान

पड़ता है कि इस नवीन जीवन के भीतर से शीघ्र ही एक ऐसा आवर्त बँधकर उठने वाला है, जिसके साथ साहित्य के अगणित जलकण उसे एक ही चक्र की प्रदक्षिणा करते हुए उसके साथ एक ही प्रवाह में बह जायेंगे और लक्ष्यभ्रष्ट या निदाघ से शुष्क न हो एक ही जीवन के उदार महासागर में विलीन होंगे। यह नवीन साहित्य के क्रियाकाल में संभव होगा। अभी तो प्रत्येक नवयुवक लेखक और कवि अपनी ही प्रतिभा के प्रदर्शन में लगा है। अभी उसमें अधिकांश साहित्यिक अपने को समझ भी नहीं सके। जो कवि नहीं, वह भी अपने को कविता के क्षेत्र में अप्रतिद्वन्दी समझता है। सब लोग अपनी ही कुशलता और अपनी ही रुचि-विशेषता को लेकर साहित्य के बाज़ार में खड़े हुए देख पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो बड़ा ही विचित्र नज़ारा है; ...ंसा और आलोचना में भी आदान-प्रदान जारी है। दलबंदियों के ... जिनमें हों, ऐसे साहित्यिक कदाचित् ही नज़र आते हैं, और ...ी साहित्यिकों को निष्प्रभ तथा हेय सिद्ध करके सम्मान का ...न ग्रहण करने वाले महालेखक और महाकविगण साहित्य में ...नी गुलामी प्रथा की ही पुष्टि करते जा रहे हैं।" (पृ० १०, ...) सचमुच इस समय हिंदी काव्य-क्षेत्र की परिस्थिति बड़ी ...त्र थी। प्रसाद और पंत का नया काव्य हिन्दी में आ गया था, ...की एक वर्ग विशेष में प्रशंसा भी हुई थी, परन्तु यह प्रशंसा कोई ...त्वपूर्ण नहीं थी। काव्य में इन कवियों के साथ किसी नई शक्ति ... प्रवेश हुआ है, पुरोगामी इसे मानने के लिए तैयार नहीं थे। ...ँ, विरोधियों का दल अधिक प्रबल था और तुलसी की तरह खल-...ना करके पीछे के दरवाजे से छिप कर काव्यक्षेत्र में प्रवेश करना ...ये कवि के लिये क्षम्य समझा जाता। 'पंत' ने 'पल्लव' की भूमिका में ब्रजभाषा काव्य और द्विवेदी युग के काव्य की रूढ़ियों की जो हँसी उड़ाई थी, वह बड़े साहस का काम था। आज इतने वर्षों के बाद हम इस बात को भूल गये हैं। परन्तु सच अर्थों में रीतिकाल की

कविता की उत्तराधिकारी कविता इन नये कवियों की कविता थी। द्विवेदी युग की कवियों की रचनाओं को हम काव्य-गद्य (Poetic Prose) ही कह सकते हैं। सच्ची कविता में जिस रक्त-माँस की आवश्यकता है, सच्ची कविता में हृदय-मन के जो बोल चाहिये, वे द्विवेदी-युग के कवियों में कहाँ मिलेंगे। परन्तु दो दशाब्द तक कविता के नाम पर गद्य पढ़ते-पढ़ते हिन्दी के काव्य-रसिकों की रस की परख नष्ट हो गई थी—जो इस बार सामने आया वह पुरानी परंपरा से एकदम अलग था—इन कारण में से यह नई 'छायावाद' की कविता जनता के गले उतनी सरलता से नहीं उतरी। मासिक पत्रों और साप्ताहिकों में समय-समय पर 'हाला-प्याला' लिये, लम्बे बाल बुरे हवाल आकाश के तारों की ओर ताकते या किसी सुन्दर, से प्रणय निवेदन करते हुए नये कवि (छायावादी कवि) के जो चित्र निकलते रहे हैं, वे उस विरोध की सूचना देते हैं जिन्हें इन कवियों को पाठकों से करना पड़ा। अंग्रेज़ी और बंगला काव्य के अध्ययन के सहारे, पटऋतु-आचार्यों के अभिव्यंजनावाद और उर्दू की व्यंजनात्मक शैली से प्रभावित हो इन नये कवियों ने छाया और प्रकाश के जो नए मार्ग हिन्दी कविता में खोले, वह अत्यंत आकर्षक थे।

१९२१ से १९२६ तक छायावाद का स्वर्णयुग आता है। इस समय की प्रसिद्ध ऐतिहासिक रचनाएँ अंजलि (रामकुमार वर्मा, १९३१), मधुकण (भगवतीचरण वर्मा, १९३२), महादेवी वर्मा (रश्मि, १९३२), गुञ्जन (पंत, १९३२), रूपराशि (रामकुमार वर्मा, १९३३), नीरजा (महादेवी, १९३४), पाथेय (सियारामशरण गुप्त) लहर (जयशंकर प्रसाद, १९३५), चित्ररेखा (रामकुमार वर्मा १९३५), रेणुका (रामधारीसिंह दिनकर, १९३५), सांध्यगीत (महादेवी वर्मा, १९३६), गीतिका (निराला, १९३६), मधुशाला (बच्चन १९३६) हैं। इस काव्य-श्रृंखला की अंतिम कड़ी कामायनी (१९३७) है। १९३७ से नई-नई प्रवृत्तियों का जन्म होने लगता है जिन्होंने बाद

में जाकर 'प्रगतिवाद' की रूपरेखा स्थिर की। इस नई प्रगतिवादी धारा का पहला स्फुरण 'रोटी का राग' (श्रीमन्नारायण अग्रवाल, १६३७) है। इसी वर्ष पंत ने 'युगांत' (१६३७) लिखकर नई काव्य प्रवृत्तियों में योग दिया। प्रगतिवाद की कविताएं 'अपराजिता' (रामेश्वर शुक्ल 'अचल' १६४१), युगवाणी (पंत, १६३६), मानव (भगवतीचरण वर्मा, १६४०), ग्राम्या (पंत, १६४०), किरणवेला (अंचल, १६४१), जीवन के गान (शिवमंगलसिंह, १६४१), मानव (श्रीमन्नारायण, १६४१), तांडव (रामरतन भटनागर, १६४२) चिंता (अज्ञेय, १६४२) काव्यसंग्रहों में प्राप्त होती है। धीरे धीरे नई प्रवृत्तियाँ पुष्ट होती गई, परन्तु "छायावाद" की रचनाओं की परम्परा भी बढ़ती गई। युद्धकाल (१६४२ – १६४५) नये काव्य प्रयोगों का युग है। और इस समय हम छायावाद काव्य-धारा को रूढ़ बनता और प्रगतिवादी काव्यधारा को अग्रसर होता पाते हैं। 'रूपाभ' (१६३८ मासिक, प्रयाग) और हंस (१६३०, काशी) ने इस नए काव्य (प्रगतिवाद) के निर्माण में विशेष योग दिया। छायावाद की अनेक प्रवृत्तियाँ नई विचारधारा से पुष्ट होकर प्रगतिवाद का अंग हो गई। अब भी प्रगतिवादी कवि यदा-तदा छायावाद की परंपरा से प्रभावित हो जाते हैं—वे अभी एकदम नई दिशा स्थिर नहीं कर सके हैं। अतः प्रगतिवाद के साहित्यिक और ऐतिहासिक मूल्यांकन के लिए छायावाद का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है।

जो हो, छायावाद काव्य का आधुनिक काव्य-साहित्य में बड़ा महत्व है। इस काव्य द्वारा हम प्राचीन काव्य की वृंदावनीय गलियों से एकदम बाहर आ सके हैं। इसी काव्य द्वारा हमने पश्चिम और अपने बाहर के विश्व से संबंध जोड़ा है। इससे भी महत्व की बात यह है कि इस काव्य ने हमारे कलात्मक आन्दोलनों का श्रीगणेश किया है। 'आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास' (१६००-२५) में डॉ० श्री कृष्णलाल ने इस आन्दोलन का बहुत सुन्दर विश्लेषण किया है :

१—हिंदी साहित्य के प्रथम पचीस वर्षों में हिन्दी कविता का विकास स्वच्छंदवाद (Romanticism) का सर्वाङ्गीण विकास है। इस विकासयुग के दो चरण हैं। प्रथम चरण में स्वच्छंदवाद अपने मूल रूप में प्राचीन साहित्य की रूढ़िगत परंपरा और उसके सीमित दृष्टिकोण के प्रति एक उत्साहपूर्ण विरोध था।

२—यह सीमित दृष्टिकोण छंदों के बंधन, अलंकारों की परंपरा और काव्य की रूढ़ियों के कारण और भी संकुचित हो गया था। × अस्तु आधुनिक कवि जिन्हें मानव-जीवन को समझना और उसकी भावपूर्ण व्यंजना करना अभीष्ट था, रीतिकवियों के संकुचित दृष्टिकोण का विरोध और बहिष्कार करने लगे।

३—स्वछंदवाद का प्रथम चरण (१६००-१६) 'सैद्धांतिक स्वच्छंदवाद' (Theoretical Romanticism) का काल था जिसका सिद्धांत उन्नीसवीं शताब्दी की कविता के संकुचित दृष्टिकोण के प्रति असंतोष और उसकी अतिशय नियमबद्धता (Formalism) और साहित्यिक पांडित्य के प्रति विरोध था। इस विरोध के दो पक्ष थे। प्रथम पक्ष में प्रकृति और मानव-जीवन को उनके संकीर्ण वातावरण से मुक्त करना आवश्यक था और फिर नवीन ज्ञान और संस्कृति के आलोक में काव्य के क्षितिज को विस्तीर्ण करना था। सैद्धांतिक स्वच्छंदवाद का दूसरापक्ष रीति-परंपरा की अतिशय नियमबद्धता और साहित्यिक पांडित्य का विरोध था। यह विरोध कविता के सभी बाह्य उपादानों—भाषा, छंद, साहित्यिक रूप और परिभाषा—में प्रत्यक्ष हुआ।

४—स्वच्छंदवाद का दूसरा चरण केवल एक साहित्यिक आंदोलन मात्र न था वरन् वह कलात्मक और दार्शनिक आंदोलन भी था। इसमें विश्व की वेदना, सृष्टि का रहस्य, उदात्त भावना तथा प्रेम और वीरता को अपनाने की तीव्र अकांक्षा, अलभ्य श्रेय से उद्भूत एकांत वेदना और अनंत निराशा आदि विशिष्ट दार्शनिक प्रवृत्तियों का

प्रदर्शन था। यह द्वितीय आन्दोलन १९१४ के आस-पास मैथिली-शरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, राय कृष्णदास, बदरीनाथ भट्ट और पदुम-लाल पन्नालाल बख्शी की स्फुट कविताओं से आरंभ होता है, किन्तु इसका वास्तविक प्रारम्भ १९१८ से मानना चाहिये जबसे 'प्रसाद' सुमित्रानंदन पंत और 'निराला' की नवीन शैली की रचनाओं का प्रकाशन होता है।

५—इस स्वच्छंदवाद आंदोलन के पक्ष हैं—दार्शनिक, कलात्मक और साहित्यिक

(क) (इस) दार्शनिक दृष्टिकोण ने मानवीय अनुभूति की परिधि को बहुत ही विस्तृत कर दिया जिसकी अभिव्यंजना सर्वचेतनवादी कविताओं (Pantheistic Poetry) में मिलती है। कवि की समस्त सृष्टि में—पशु, पक्षी, जड़ और अचेतन वस्तुओं में—एक अव्यक्त चेतना का प्रवाह दिखाई देता है, प्रत्येक स्थान में जीवन का आभास सा मिलता है। × ×(यह) दार्शनिक दृष्टिकोण अनन्त की खोज के लिए भी भावना उत्पन्न करता है। × × भावनाओं का दैवीकरण (Deification) और वेदनामय खिन्नता (Painful melancholy) दार्शनिक स्वच्छंदवाद के दो अन्य प्रमुख लक्षण हैं।

(ख) (स्वच्छंदवाद आंदोलन के पहले चरण में कलात्मकता के अधिक दर्शन नहीं होते) किन्तु स्वच्छंदवाद आंदोलन के द्वितीय चरण में प्रतिष्ठित रूढ़ियों, परंपराओं और नियमों को विदा दे दी गई और कला व्यक्तिगत प्रतिभा की अभिव्यंजना मात्र हो गई। कविता के संगीत और चित्रांकन में अभिव्यक्त होने वाली कल्पनाशक्ति आधुनिक कवि की काव्यकला की कसौटी है। भाषा के अर्थ और नादव्यंजना की सहायता से कवि दृश्य रूपों की सृष्टि करता है। अब केवल कुछ अलंकारों द्वारा ही किसी वस्तु का वर्णन करना कला नहीं है, वरन् काव्यजगत की वस्तुओं को स्वप्न-चित्रों के समान पाठकों के सामने

उपस्थित कर देना ही कला की सफलता है। आधुनिक काव्य एक जाग्रत स्वप्न है।

(अ) द्वितीय स्वच्छंदवाद आन्दोलन का तीसरा पक्ष इसका साहित्यिक रूप है। भाषा-शैली (Diction), छंद, काव्यरूप और कविता की परिभाषा—इन सभी क्षेत्रों में महान परिवर्तन हो गया। × × शीघ्र ही एक समृद्ध भाषा-शैली का विकास होने लगा जिसमें संस्कृत तत्सम तथा ध्वनि-व्यञ्जक शब्दों की अधिकता थी। यह चमत्कारपूर्ण और आलोकमय विशेषणों और चित्रमय तथा ध्वन्यात्मक शब्दों का युग था। × × कवियों ने समादृत नियमों की अवहेलना कर विषय और भाव के अनुकूल छंदो का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। (प्रतिष्ठित विधानों के प्रति सबसे बड़ा विद्रोह निराला का मुक्त छंद था) × × काव्यरूप की दृष्टि से स्वच्छंदवाद आंदोलन का द्वितीय चरण प्रधान रूप से गीतिवाद का युग था। भावों की संगीतात्मक व्यञ्जना (इसकी विशेषता थी)। × आधुनिक गीतिकाव्य पश्चिमी शैली का गीति है; यह संगीतमय भाषा में रचित एक अभ्यांतरिक काव्य (Subjective Poetry) है।

इस काल की कविता में रस और अलंकार का स्थान ध्वनि और व्यञ्जना ने ले लिया। × × निकट निरीक्षण से यह ज्ञात होगा कि आधुनिक काव्य में ध्वनिव्यञ्जना 'ध्वन्यालोक' में अनुमोदित ध्वनि की अपेक्षा पाश्चात्य काव्य-साहित्य की व्यञ्जना (Suggestiveness) से कहीं अधिक निकट है। वास्तव में आधुनिक कवियों का आदर्श पाश्चात्य ध्वनि और नाद-व्यञ्जना है।

ऊपर जो कहा गया है वह दो-चार उदाहरणों से भली भाँति स्पष्ट हो जायगा। १९१४ में 'प्रियप्रवास' में द्विवेदी-युग के एक प्रतिनिधि कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने मेघों का चित्र इस तरह खींचा है—

सरस-सुन्दर सावन मास था,
घन रहे नभ में घिर घूमते।
विलसती बहुधा जिनमें रही
छविवती उड़ती बक-मालिका ॥
घहरता गिरि-सानु समीप था,
बरसता छिति छू नव वारि था।

घन कभी रवि-अंतिय-अंशु ले,
गगन में रचता बहु-चित्र था।
नवप्रभा परमोज्वल-लीक सी,
गतिमती कुटिला-फणिनी समा।
दमकती दुरती घन-अंक में,
विपुल केलि-कला-खनि दामिनी ॥

१९३० में निराला के बादल-राग की कुछ पंक्तियाँ पढ़िये—

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !
झर झर झर निर्झर-गिरि सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित—तड़ित-गति—चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव घोर कठोर—
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर

× × ×

धँसता दलदल,
हँसता है नद खल् खल्
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल ।

देख देख नाचता हृदय
बहने को महाविकल—बेकल।

अंतर स्पष्ट है। स्पष्ट है कि हिंदी कविता इस बीच में एक दो डग नहीं, कई मील आगे बढ़ गई है। भाषा का जो महान वैभव, छंद का जो अपूर्व गंभीर-लास, शैली की जो अपार्थिव झंकार निराला के इस वंदना-छंद में है, वह द्विवेदी-युग के कवियों के लिए स्वप्न में भी सम्भव नहीं था। भारतमाता की पद-वंदना करता हुआ कवि गाता है—

वन्दूँ पद सुन्दर तव,
छन्द नवल स्वर गौरव।
जननि, जनक-जननि-जननि,
जन्मभूमि-भाषे!
जागो, नव अम्बर-भर—
ज्यो तस्तर-वासे!
उठे स्वरोर्मियाँ मुखर,
दिक्-कुमारिका-पिक-रव।

दृग-दृग को रंजित कर
अंजन भर दो भर।
बिधें प्रण पंचबाण
के भी परिचय शर।
दृगदृग की बँधी सुछवि
बाँधे सचराचर भव!

पंत की 'परिवर्तन' और 'सन्यासी का गीत' जैसी कविताओं, निराला की 'राम की शक्ति-उपासना' और 'तुलसीदास' और प्रसाद की 'कामायनी' में जो भाव-सौष्ठव, जो भाषा-माधुर्य, जो वाक्यविन्यास, जो

काव्योचित गरिमा है वह सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं के बाद इतनी नई चीज़ हमें मिली है कि आज हम आश्चर्य-चकित हैं कि हिंदी काव्य में इतनी विभूति कैसे आ गई और वह भी केवल दो दशक के भीतर। नई भाषा, नए भाव, नए छन्द, नई शैली, नई मूर्त्तिमत्ता से विभूषित, वर्ष-वर्ष के त्याग-तप से गौरवान्वित छायावाद-काव्य हिंदी काव्य की सर्वोत्तम निधि है, इसमें संदेह नहीं।

२

'छायावाद' की ऐतिहासिक और तात्विक विवेचना

'छायावाद' हिन्दी साहित्य का एक अत्यंत लांछित शब्द है। व्यंग के रूप में आधुनिक हिन्दी कविता की एक प्रमुख धारा के लिए इसका प्रयोग हुआ और कुछ दिनों बाद यह शब्द इतना लोकप्रिय हो गया कि प्रसिद्ध कवियों ने अपनी कविता के नाम के रूप में इसे अपना लिया। परन्तु इस शब्द के पीछे व्यंग और लांछना की भावना बराबर बनी रही और कदाचित् अब भी बनती है। १९०९ ई० में जयशंकरप्रसाद की प्रेरणा से काशी से 'इन्दु' (मासिक) प्रकाशित हुआ। १९०९-१३ ई० तक जयशंकरप्रसाद का प्रारंभिक काव्य इसी पत्र द्वारा हिन्दी पाठकों के सम्मुख आया। १९१३ ई० के बाद हिन्दी काव्य में एक नई धारा स्पष्ट रूप से बहने लगी है और हम पंत और निराला की प्रारम्भिक रचनाओं को पढ़ने लगते हैं। १९१८ के बाद इसमें कोई भी संदेह नहीं रहा कि प्राचीन काव्य परंपराओं से बिल्कुल अलग, अधिकतः इन परम्पराओं के विरोध के रूप में हिन्दी कविता में एक अभिनव क्रांति का सूत्रपात हुआ। प्राचीन परम्परा के प्रेमियों ने इस क्रांति का विरोध किया और इन नई, अटपटी, अंग्रेज़ी और बँगला-काव्य से प्रभावित रचनाओं को हास्यास्पद ठहराया। हाला-प्याला लिये, बाल बिखेरे अनंत के यात्री या कविता-सुन्दरी के प्रति प्रणय-निवेदन करते हुए कवियों के विचित्र-विचित्र चित्र छापे गये और अनेक अनर्गल पंक्तियों को छायावाद का उत्कृष्ट नमूना कह कर नीचे दिया गया।

आज जब हम 'छायावाद' का इतिहास लिखने बैठते हैं तो हम जानते हैं कि हिन्दी काव्य के लिए वह शत प्रतिशत नई चीज़ नहीं थी। भारतीय धर्म-चिंतन, दर्शन और साहित्य में अनेक रहस्य-साधनाओं का समावेश है। ऋग्वेद में 'नासिदेय सूत्र' और 'पुरुष-बलि' के रूपक भारतीय साहित्य में रहस्यवाद के प्रथम भावोन्मेष हैं। परन्तु धर्म-चिंतन के रूप रहस्यवाद की धारा पहली बार उपनिषदों में प्रकाशित हुई है। फिर तो शैव, सिद्ध, तांत्रिक और कर्मकांडी अनेक सप्रदायों में रहस्यचिंतन की बाढ़ ही आ गई। हिन्दी साहित्य में सिद्ध, संत और सूफ़ी काव्यों में स्पष्ट रूप से रहस्यवादी विचारावली के दर्शन होते हैं। इन सब रहस्यवादी विचार-धाराओं में मूलतः साम्य है, यद्यपि विभिन्नता भी कम नहीं है। कर्मकांड, अद्वैतचिंतन और रहस्योन्मूलक भावना इसके प्रिय विषय हैं। जीव-ब्रह्म के अनन्य संबंध पर आश्रित रहस्यवाद इसका प्रधान रूप कह सकते हैं। इसने मध्ययुग की भारतीय रहस्यवादी धाराओं को प्रभावित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सारा धार्मिक काव्य 'रहस्यवाद' की श्रेणी में आ जाता है। निर्गुण काव्य तो शत-प्रति-शत रहस्यवादी है। सगुण काव्य की भित्ति में अवतारी ब्रह्म का रहस्यवादी रूप ही है यद्यपि वहाँ आलम्बन के अधिक स्पष्ट रहने के कारण रहस्यवाद का आरोप उतना रहस्यपूर्ण नहीं हो पाता जैसे निर्गुण प्रेममय काव्य में। जो हो, १८०० तक धार्मिक रहस्यवाद अनेक रूपों में हमारे काव्य को प्रभावित करता रहा है।

१९१२ के आसपास रवि ठाकुर की 'गीतांजलि' से प्रभावित होकर खड़ी बोली में फिर रहस्यवादी काव्य का स्फुरण हुआ। 'गीतांजलि' पर उपनिषद काव्य और मध्य-युग के वैष्णव कवियों का प्रभाव स्पष्ट है। कबीर, दादू और चंडीदास ने जो कहा था, उसे नई भाषा और नए रूपकों में ढाल कर 'गीतांजलि' विश्व के सामने आई और उसका विशेष स्वागत किया गया। रहस्यवादी प्रेममय सत्ता का अन्यतम अनुभव और उसके प्रति आत्मसमर्पण—ये गीतांजलि के विषय

थे। इसके प्रभाव से हिन्दी में जयशंकरप्रसाद की पहली रहस्यवादी कविताएँ और राय कृष्णदास के 'साधना' के गीत लिखे गये। वेदान्त और भक्ति के आधार पर खड़ा 'गीतांजलि' का आधुनिक रहस्यवाद खड़ी बोली के आधुनिक काव्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति बन गया। आधुनिक काल की रहस्यवादी कविताएँ कई प्रकार की होती हैं—

(१) भक्ति के आधार पर मानवीय भावनाओं की व्यंजना, जैसे

अरे अशेष, शेष की गोदी तेरा बने बिछौना सा
आ मेरे आराध्य, खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना सा

—माखनलाल चतुर्वेदी

या वियोगीहरि की भक्तिपरक कविताएँ

(२) दार्शनिक सिद्धान्त पर स्थिर रहस्यवाद, जैसे

भर देते हो
वार बार, प्रिय, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो

—निराला

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किसमें होकर आऊँ मैं

—मैथिलीशरण

(३) दुःखवाद और बौद्ध दर्शन पर आधारित नश्वरवाद

प्रियतम ! आओ, अवधि मान की भी होती है,
जाने दो —रामनाथ सुमन

या जीवन तरी तीर पर ला दे

या करुणामय करुणाकर मुझपर आ दो दौड़ चला दे

—प्रसाद

महादेवी वर्मा का काव्य जिसका आधार ही सार्वभौम करुणा, अन्यतम मिलन और विरह है। १६१३-२५ तक इस प्रकार की कविताओं का विकास होता गया। प्रधान कवि थे मैथिलीशरण (झंकार),

निराला (परिमल), प्रसाद (झरना, आँसू, लहर), सुमन, पदुमलाल पुन्नालाल, मोहनलाल महतो। इसके बाद तो इस प्रकार की कविताओं की बाढ़ आ गई। १९२५ के बाद के कवियों में सबसे प्रमुख हैं रामकुमार वर्मा (चित्ररेखा, चन्द्रकिरण) और महादेवी (यामा)। १९३६ के बाद हमारे काव्य पर समाजवाद की नई राजनैतिक धारा का प्रभाव पड़ा है और अनेक उलझी हुई प्रवृत्तियाँ सुलझ गई हैं। धारा के रूप में रहस्यवादी काव्य लगभग समाप्त हो गया है, यद्यपि कुछ प्रमुख कवि अब भी उस प्रकार की कविताएँ लिखे जा रहे हैं। अब काव्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय चेतना को प्रकाशित करने लगा है।

१९वीं शताब्दी के अंग्रेजी रोमांटिक कवियों ने कई प्रकार के नये 'रहस्यवादों' की सृष्टि की थी। वास्तव में रहस्यवाद सहजज्ञान (Intution) पर खड़ा होता है और किसी भी विषय को एकांततः सहज अनुभूति के सहारे देखा जा सकता है। कवियों ने प्रेम, प्रकृति, बालक और सौन्दर्य को एकांततः सहजानुभूति द्वारा देखा। इस से रहस्यवाद के कई प्रकार चले: प्रेम-रहस्यवाद (Love Mysticism : Shelley) प्रकृति-रहस्यवाद (Nature Mysticism : Wordsworth) बालक-रहस्यवाद (Child Mysticism : Blake) और सौन्दर्य-रहस्यवाद (Beauty Mysticism : Keats)। १९१३ के बाद की नई कविता पर इन सभी कवियों का प्रभाव पड़ा और रहस्यवादी काव्य धार्मिकता की पेचीली गलियों से बाहर आ गया, यद्यपि प्रधानता उसी की रही। हिन्दी में इन नये प्रकारों पर सुन्दर कविताएं लिखी गईं। प्रेम-रहस्यवाद 'प्रसाद' के काव्य में मिलता है; प्रकृति में चमत्कार देखने की प्रवृत्ति पंत में; बालक के प्रति भी पंत की रहस्यवादी प्रवृत्ति मिलती है। सौन्दर्य-रहस्यवाद का विशेष प्रचलन है और प्रसाद, पंत और निराला इनमें प्रधान हैं। इनके काव्य में अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जैसे—

दूत, अलि ऋतुपति के आए
फूट हरित पत्रों के उर से स्वर सप्तक छाए
दूत०
काँप उठी विटपी यौवन के
प्रथम कम्प-मिस, मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज़-चितवन के
भाव सुमन छाए
दूत० —'परिमल'—निराला

किस रहस्यमय अभिनय की तुम
सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य-पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार ?
—'छाया'—पंत

जब इस तिमिरावृत्त मन्दिर में
उषालोक कर उठे प्रवेश
तब तुम हे मेरे हृदयेश
कर देना झट हाथ उठा इस
दीपक की ज्वाला निःशेष
यही प्रार्थना है सविशेष
—सियारामशरण

बैठ कर सारी सूनी रात, तुम्हारे चुम्बन का आघात,
याद कर देखा करता, नाथ ! विरहणी आँखों की बरसात
—रामनाथ सुमन

यही नहीं, भारतीय आत्मा जैसे कुछ कवियों ने राष्ट्रीय भावना को भी एकांतिक अनुभूति के रूप में देखकर उसे रहस्यवादी बना दिया और 'राष्ट्रीय रहस्यवाद' जैसी एक नई श्रेणी की सृष्टि की।

ऊपर हमने रहस्यवाद की कविता की प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है। अब 'छायावाद'।

जैसा हमने ऊपर बताया है 'छायावाद' आधुनिक काव्य की वह परम्परा है जो १६०६ से अब तक चली आती है। आधुनिक रहस्य-वादी कविता इसका एक अंग मात्र है। परन्तु १६१३ के बाद जनता का ध्यान विशेष रूप से इसी अंग ने आकर्षित किया नई शैली और अभिव्यंजना के कारण लोकप्रिय होने पर भी इसको सरलता से समझा नहीं जा सकता था, इसलिए आधुनिक काव्य को कई व्यंग-प्रधान नाम दिए गए। अस्पष्टता के कारण इसे 'छायावाद' भी कह दिया जाता है और 'रहस्यवाद' इस काव्य का एक विशिष्ट अंग मात्र है। वास्तव में छायावाद में 'छाया' अश की प्रधानता थी (छाया = अस्पष्टता)। इस छाया के कई कारण थे, कुछ का सम्बन्ध विषय से था, कुछ का टेकनीक से। पहले हम विषय को लेंगे।

छायावाद-काव्य के विषय थे ईश्वर की रहस्यमयी सत्ता, उसके प्रति आत्मसमर्पण, विरह, मिलन, प्रेम, प्रकृति, नारी-सौन्दर्य, राष्ट्र, मानव। विशेष नवीनता नहीं, परन्तु इन सब का आधार था सहजानु-भूति। काव्य में 'चिंतन' और बौद्धिकता को कोई स्थान नहीं। फलतः इन सब विषयों पर जो लिखा गया, वह नवीन, परन्तु जनता को अस्पष्ट था। सब छाया-छाया; स्थूल कुछ भी नहीं। स्वयं नारी के चित्रण भी स्थूल नहीं—भावना-प्रधान उड़ते-उड़ते। 'छायावाद' एक प्रकार से महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग (१६००-२०) के नीति-प्रधान, शुष्क, इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध एक सजीव प्रतिक्रिया थी। दूसरे प्रकार से उसे अंग्रेज़ी और बंगला काव्य का प्रभाव एवं पलायनवादी, व्यक्तित्व-निष्ठ कवियों की 'बहक' कहा जा सकता है। वास्तव में किसी भी युग के काव्य को अनेक दृष्टिकोणों से समझना आवश्यक होता है। 'छायावाद' के भो अनेक पहलू थे। उसका

'रहस्यवादी' अंश रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' और कबीर एवं बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित था। उसकी सूक्ष्मान्वेषण की प्रवृत्ति पिछले काव्य के प्रति विद्रोह लिये थी। उसकी शैली और उसके शब्दों एवं छन्दों पर अंग्रेजी और बँगला काव्य का प्रभाव काफी से अधिक था। क्या भावना, क्या भाव, क्या शैली, क्या छन्द—सब नए-नए, पुराना कुछ भी नहीं। फल यह हुआ कि काव्य-परम्परा से यह नया काव्य एकदम दूर जा पड़ा। बँगला और अंग्रेजी काव्य से परिचित पाठकों ने इसे नकल मात्र समझा। सामान्य जनता के लिए यह इतना ही दुरूह था जितना अंग्रेजी एवं बँगला का काव्य। उसे लेकर साधारण जनता और काव्यलोचकों में अनेक वितंडावाद उठ खड़े हुए।

छायावाद-काव्य में जो वाद सबसे स्पष्ट है, वह है कवि की गहरी भावुकता, जो उपमा-उत्प्रेक्षा की झड़ी लगा कर भी शांत नहीं होती। प्रकृति के प्रत्येक चित्र पर कवि विभोर हो जाता है—

१—प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि, तूने कैसे पहचाना
कहाँ, कहाँ, हे बाल विहंगिनि ? पाया तूने यह गाना
—पंत

२—यमुने तेरी इन लहरों में किन अधरों की आकुल तान
पथिक, प्रिया सी जाग रही है, किस अतीत के गौरव गान
—निराला

३—हे सौन्दर्यागार ? रूपखनि ! सुखमासार ! मनोहारी !
हे उपवन की अतुलित शोभा; हे सजीव छवि तनुधारी
—तितली के प्रति

'झरना', 'तारे', 'लहर' आदि (यहाँ तक कि धूल के कण) पर इसी भावुकता से लिखा गया। यह बात कवियों की अत्यधिक मानवता

भले ही सूचित करे, परन्तु इस भावुकता की बाढ़ ने काव्य को 'छायावाद' बना दिया। लगभग उपरोक्त सभी विषयों पर इसी शैली को ग्रहण करना और भी हास्यास्पद था। दूसरी विशेषता थी कल्पना का प्राचुर्य। शेक्सपियर ने क ा है कि कवि, पागल और प्रेमी एक ही तत्त्व के बने होते हैं। उसका इशारा तीनों की मानसिक स्थिति से था। तीनों कल्पनाशील होते हैं। परन्तु कवि और पागल के बीच में कल्पना का क्वचित संयम ही तो अंतर होगा। कवियों ने इस संयम का त्याग कर दिया। पंत ने नक्षत्रों को "शुचि उलूक" (नक्षत्र) कहा। निराला ने 'संध्या सुन्दरी' के चित्रण में कल्पना को आकाश-व्यापी रंगभूमि दे दी—

> अलसता की सी लता
> किन्तु कोमलता की वह कली
> सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
> छाँह सी अम्बर पथ पर चली

कहीं-कहीं तो कल्पना-चित्रों के प्रदेश के पार न जाने किस लोक की रेखाएँ खेंचते हैं, जैसे

> अँगड़ाते तम में
> अलसित पलकों से स्वर्ण स्वप्न नित
> सजनि ! देखती हो विस्मित
> नव, अलभ्य, अज्ञात —'वीणा'—पंत

इस 'अँगड़ाते तम' को १६२०-२१ का हिन्दी पाठक क्या समझता ? कल्पनातिरेक ने छायावाद के काव्य को 'बाज़ीगरी' बना दिया था। तीसरी बात यह थी कि छायावाद काव्य के ('रहस्यवाद' को छोड़ कर) दो अन्य प्रिय विषय थे प्रेम और सौन्दर्य। प्रेम अपार्थिव और सौन्दर्य वासना-प्रधान। नैतिक-प्रधान युग की सीमा पर खड़े हुए कवि

कली, लता, विटप, बिजली आदि प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यवहारों में 'रति' भाव भरकर चले। उन्होंने स्वच्छन्द रूप से इन प्रतीकों की आड़ में उसी प्रकार विलास का चित्रण किया, जिस प्रकार रीतिकाल के कवियों ने नायिका से खिलवाड़ की थी—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोई शैफाली के —शैफाली

निराला की 'जुही की कली' वासनात्मक सौन्दर्य एवं रतिकेलि का चित्रण मात्र है, परन्तु उसे कवि ने आध्यात्मिकता का आरोप देकर जनता के सम्मुख उपस्थित किया। धीरे-धीरे रीतिकाल को विजय प्राप्त हुई और जिस स्थूल कायिक-भावना का विरोध जो छायावाद की नींव बना था, वह उसी से परिचालित होने लगा। जहाँ तक नारी-सौन्दर्य का प्रश्न है, बात इतनी बुरी नहीं थी। परन्तु प्रच्छन्न रूप से कायिक भावनाओं का पोषण छायावाद-काव्य की रूढ़ि बन गई।

'टेकनिक' और छन्द के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु यहाँ हम संक्षेप से काम लेंगे। एक वाक्य में, छन्द में ऐसा परिवर्तन, शत-प्रतिशत परिवर्तन, हिन्दी के किसी युग में नहीं हुआ था। अभी इस परिवर्तन का इतिहास नहीं लिखा गया है, न हम उन तत्त्वों से ही भली भाँति परिचित हैं, जिन्होंने पथ-प्रदर्शन किया। 'छायावाद' का भावी इतिहासकार केवल इसी अंग के लिए काव्य को हिन्दी की सम्पत्ति महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर सकेगा। प्राचीन अव्यावहारिक छन्दों की जड़ता के स्थान में नए छन्दों की सजीव जागरूकता और विविधता छायावाद-काव्य की ऐतिहासिक देन होगी।

जो हो, छायावाद-काव्य हिन्दी का वह आधुनिक काव्य है जिसका समय १९१३ से १९३७ तक कहा जा सकता है। अभी इस काव्य

की अनेक प्रवृत्तियाँ जीवित हैं, परन्तु धीरे-धीरे हम नई अन्तर्राष्ट्रीय और बौद्धिक चेतना के युग में पहुँच रहे हैं। नये काव्य की आधार-शिला रखी जा चुकी है और उसने भाव, भाषा, छंद, शैली सब में 'छायावाद' से बहुत कुछ लिया है। आगे का काव्य छाया से प्रकाश की ओर बढ़ रहा है। नये विषय, नई व्यंजना, नई शैली। हो सकता है, कुछ दिनों बाद छायावाद 'स्वप्नों का काव्य' या 'अर्द्ध चेतना' का काव्य लगे। परन्तु भावी काव्य-परम्परा के गढ़ने में उसका हाथ कम नहीं रहेगा। 'रहस्यवाद' इस छायावाद का सब से प्रधान अंग है, उसकी आत्मा है, उसके बिना यह अधूरा है। इस युग की रहस्यवादी कविता में कितनी ईमानदारी है, कितना अनुकरण, यह दूसरी चीज़ है।

(२)

वर्तमान काव्य-धारा का आरम्भ १८५० के बाद से होता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र प्राचीन काव्य और वर्तमान काव्य के संधिस्थल पर खड़े हैं। परन्तु वर्तमान काव्य ने प्राचीन विषयों को एकदम छोड़ नहीं दिया। उसके अपने नये विषय विकसित हुए, परन्तु प्राचीन विषयों पर भी कविताएँ लिखी जाती रहीं। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत की काव्य-धारा में भक्ति (राम-कृष्ण), शृंगार, देश-भक्ति और मानवीय प्रेम ही प्रमुख विषय थे। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में ये सब प्रवृत्तियाँ चलती रहीं एवं विकसित होती रहीं। क्लासिकल काव्य के रूप में राम और कृष्ण-काव्य चलता रहा—यद्यपि अब उसका रूप बहुत नवीन हो रहा था। प्रियप्रवास, पंचवटी और साकेत राम-कृष्ण सम्बन्धी प्राचीन काव्य से भिन्न श्रेणी की वस्तुएँ हैं। उनमें देवत्व से अधिक मानवत्व पर बल है। शृंगार-विषयक भावना में भी महान परिवर्तन हुआ। प्राचीन शृंगार-काव्य के आलम्बन राम-कृष्ण या राजे-महाराजे थे। आधुनिक शृंगार-काव्य सामान्य व्यक्ति के प्रेम-विरह को प्रधानता देता है। उसका नायक साधारण नर है,

नायिका साधारण नारी। यद्यपि रूढ़ि-प्रेमी एक दल प्राचीन परिपाटी का अनुकरण करता हुआ राधाकृष्ण को लेकर कविता-सवैये लिखता रहा, परन्तु अब उसका विशेष महत्त्व नहीं रह गया। आधुनिक काव्य के अनेक अंगों को इस प्रकार रखा जा सकता है :

१—सुधारवादी काव्य

२—नीति-परक काव्य

३—राष्ट्रीय एवं जातीय काव्य

४—क्लासिकल काव्य

५—स्वच्छन्दतावादी (रोमांटिक काव्य)

(क) पंत—निराला की सौन्दर्यात्मक (Aesthetic) कविता

(ख) रहस्यवादी कविता

(ग) दुःखवादी कविता

६—यथार्थवादी और सामाजिक काव्य

७—वैष्णवभक्ति । राम-कृष्ण सम्बंधी काव्य

इस पुस्तक की दृष्टि से स्वच्छन्दवादी काव्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसे ही 'छायावाद' कहागया है।

इस काव्य में रहस्यवाद और दुःखवाद की दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख थीं। रहस्यवादी प्रवृत्ति के अनेक रूप थे :

१—सौन्दर्यात्मकता (Aestheticism)

२—कबीर की भांति यथार्थवादी अद्वैतवाद जिसमें सूफ़ी रहस्यवाद की भी झलक मिलती है

३—वेदांतिक रहस्यवाद

४—प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद

५—प्रेम-सम्बन्धी रहस्यवाद

दुःखवाद के भी अनेक रूप सामने आए :

१—बीते अतीत के प्रति मोहासक्ति और तज्जन्य दुःख ('आँसू' और 'यमुना के प्रति')

२—संसार की नश्वरता के कारण दुःख ('परिवर्तन')

३—प्रकृति के आनन्द के विरुद्ध जग-जीवन की जटिलता का आभास (पंत)

४—यांत्रिक सभ्यता के विरुद्ध प्रतिक्रिया (प्रसाद)

५—सौन्दर्य की खोज के फलस्वरूप दुःख (पंत)

६—अज्ञात के प्रति रहस्यात्मक आकर्षण और उसकी अप्राप्ति के कारण वेदना का अनुभव। इन सब मुख्य प्रवृत्तियों का फल यह हुआ कि कवि में व्यक्तिवाद की प्रधानता रही। निराला जैसे कवि में अहंता की मात्रा की इतनी अधिकता के मूल कारण को खोज निकालना कठिन है, परन्तु जहाँ-जहाँ रहस्यवाद और दुःखवाद कविता के मूल स्रोत बने हैं, वहाँ व्यक्ति की एकांतिक साधना पर बल दिया गया है। इससे व्यक्ति की दृष्टि में अपना मूल्य बढ़ जाता है। वह अपने को समाज से अलग समाज से ऊँची कोई बड़ी चीज़ समझने लगता है। अतः वह विद्रोही और क्रान्तिकारी बन जाता है। इससे कवि का काव्य वहिर्मुख न रह कर अंतर्मुख हो जाता है। आधुनिक काव्य की मुख्य विशेषता यही है कि वह अन्तर्मुख है। कवि की कविता में उसका अपना निजी स्वर बोलता है। उसके अनुभव, उसके भाव, उसके स्पंदन, उसके दुःख-सुख, उसकी प्रेम-घृणा ही उसके काव्य बन जाते हैं। १६.१३ से कविता में कवि का निजी स्वर बराबर ऊँचा होता गया, बच्चन के 'एकान्त संगीत' और 'निशा-निमंत्रण' में वह पराकाष्ठा पर पहुँच गया। अहंता की प्रधानता के कारण ही कवि समाज से भागता है। उसकी कविता के सामाजिक तत्त्वों का ह्रास होने लगता है और वह अपने ही सुखों-दुखों में उलझ कर रह जाता है। इसे चाहे पलायनवाद कहो या कुछ और कविता में कवि के निजी स्वर की प्रधानता के कारण ऐसा होना आवश्यक है। तीसरी बात यह है कि कवि का काव्य मनः-भूमि का विश्लेषण करता जाता है। वह मन की वृत्तियों को प्रधानता देता है। मन की चेतन, अर्ध

चेतन और अचेत प्रवृत्तियाँ ही 'छायावाद' काव्य बन जाती हैं। पंत और प्रसाद के काव्य में मानसिक विवेचना ही जैसे प्रधान हो गई हो। 'स्वप्न', 'उच्छ्वास', 'आँसू' जैसे विषय ही मनस्तत्त्व की प्रधानता सूचित करते हैं। कवि मनोविज्ञान, दर्शन और अध्यात्म की तंग गलियों का चक्कर काटने लगता है। वह कहाँ जा रहा है, वह भी यह बात नहीं जानता। 'अपराजिता' की भूमिका में नंददुलारे वाजपेयी ने छायावाद को 'मानवीय किन्तु अधिकांश अशरीरी सौंदर्य-कल्पना' और उसकी 'सूक्ष्म उज्ज्वल मर्म-स्पर्शिता' की बात कही है। छायावाद के कवियों की कविताओं में कल्पना और रहस्य का जो प्रचुर विलास-मिलन है, वह इस कथन की सत्यता ही घोषित करता है।

द्विवेदी-युग (१६००—१६२०) के काव्य में नैतिक बुद्धिवाद की प्रधानता थी। इससे प्रेम और शृंगार नाम की वस्तु साहित्य से लुप्त हो चली। भक्ति-काव्य शृङ्गारिक पृष्ठभूमि पर स्थिर होने के कारण उपेक्षित हो चला। द्विवेदी-युग का काव्य जिस अंतिम सीमा तक बढ़ सकता था, भारत-भारती और प्रियप्रवास उसके उदाहरण हैं। भारत-भारती की देश-भक्ति में हृदयतत्त्व की अपेक्षा बुद्धितत्त्व की प्रधानता है और प्रियप्रवास में नैतिक भावना कहीं भी शिथिल नहीं हुई है। द्विवेदी-काल की इतिवृत्तात्मकता और जड़ता में श्रीधर पाठक का काव्य ही एकमात्र हरियाली है। पाठक ने प्रकृति और ग्राम के सुन्दर चित्र हमें दिये। परन्तु प्रेम और विलास उनके लिए भी वर्जित प्रदेश थे।

छायावाद के काव्य में प्रेम और मिलन-विरह सम्बन्धी वैयक्तिक सुख-दुख को प्रधान स्थान मिला परन्तु कवि अधिकतः प्रेम का वर्णन अपरोक्ष रूप में ही करता। लता-विटप, सर-सरिता, सिंधु-पवन, प्रकृति के सारे उपकरण प्रेम की अगणित चुहलें करते इस काव्य में आपको मिलेंगे। १६३२ तक कवि इसी प्रकार प्रच्छन्न रूप से प्रेम और वासना की अभिव्यक्ति करता रहा। इसके बाद 'गुंजन' और भगवतीचरण वर्मा

की रचनाओं के साथ स्वर बदला। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को "कामवृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" कहा है। यह निश्चय है कि इन्द्रियता के सम्बन्ध में छायावाद काव्य स्थूल भूमि पर नहीं उतरता। उसकी अभिव्यक्तियाँ उच्च मानसिक स्तर की हैं। जहाँ साकारता आये बिना नहीं रही, जैसे 'उच्छ्वास' और 'ग्रन्थि' में, वहाँ भी वह सांकेतिक ही रही। सच ही वर्तमान काव्य में शृङ्गार की धारा ने एक प्रच्छन्न रूप ग्रहण कर लिया। उसने अमूर्त अशरीरी सौंदर्य-प्रियता को जन्म दिया जो छायावाद की विशेषता थी। यह युग एक प्रकार से सौंदर्य-दृष्टि के पुनर्निमाण (Aesthetic Revival) का युग था जिसने रोमांस का सहारा लिया था। यह रीतिकाल की स्थूल एन्द्रियता और द्विवेदी युग की बौद्धिक शुष्कता के बीच का मार्ग था। कवियों ने अपनी इन्द्रियों को काव्य का माध्यम बनाया। उन्होंने वर्जित कोनों में सौंदर्य की खोज की। वे सुन्दर रूपों में खो गये। सुन्दर रूपों के प्रति उनका उत्साह अपार था। यूरोप के सौन्दर्यवादियों (Aesthetic) की तरह वे इन्द्रिय सुख के पीछे पड़े थे।

सौन्दर्य की अनुभूति के साथ करुणा की अनुभूति भी हुई। वास्तविकता का ध्यान दिलाया। जिस सौन्दर्य की ओर परिस्थिति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आकर्षित हुए थे, वह उन्हें अधिक समय तक लुभाये नहीं रह सकता था। उसने समाज और बुर्जुआ सभ्यता में जो कुछ सुन्दर समझ रखा था, वह धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था। उसने यह अनुभव किया कि सौन्दर्य क्षणभंगुर और नाशवान है। उसके काव्य में दुःख की भावना की उत्पत्ति हुई। इस दुःख की भावना का विकास हमें उत्तरार्द्ध के कवियों में मिलता है। पूर्वार्द्ध के कवियों (निराला, पंत, प्रसाद) की दुःख की भावना अस्पष्ट और आध्यात्मिक थी; उत्तरार्द्ध में भी इसका रूप आध्यात्मिक ही रहा परन्तु यह भावना स्पष्ट हो गई। इसने एक विशिष्ट दुःखवाद का रूप ग्रहण कर लिया।

'निराला' दुःखवाद से बचे रहे। उनके दर्शन ने उन्हें बचाए रक्खा। वहाँ खेद और विषाद का स्थान नहीं था। वहाँ अनंत-संघर्ष था। इन दुःखवादी कवियों में 'निराला की आवाज़ ही अनन्त की ओर इंगित करती रही। उनके वेदांत ने उनके स्वर में दुर्बलता नहीं आने दी। उन्होंने दुःख को दर्शन के रूप में स्वीकार नहीं किया।

परंतु शीघ्र ही इस दुःखवाद ने आध्यात्मिक रूप ग्रहण कर लिया। कवियों ने अपने अस्तित्व की एकांततः का अनुभव किया। उन्हें जीवन में शून्यता की अनुभूति हुई। उन्होंने परिस्थितियों को स्वाभाविक और अपरिवर्तनशील मानकर अपने हथियार डाल दिये। उनके एकांतता के विचार ने उनमें की अहंता को उकसाया। अब वे अहम्वादी हो गये। वे वास्तविकता से आगे भागे। इसके साथ ही उनमें से कुछ ने क्षीण विरोध भी किया। निराला और भगवती बाबू के काव्य में स्वस्थ मनुष्य के सबल विरोध की हुंकार साफ़ है। परन्तु शीघ्र ही यह विरोध समाप्त हो गया। कवि की एकांतता बढ़ने लगी। उसकी विरोध-भावना स्वयम् उसमें केन्द्रित हो गई। उसने परोक्षवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया। फलतः एक पराजित भोगवाद या झूठी मस्ती का जन्म हुआ। इसकी नींव कवि की पराजित भावनाओं पर स्थिर थी। बच्चन की कविताओं में इस भोगवाद के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलेंगे।

पराजित भोगवाद की भावनाओं ने ख़ैयाम की कविता की ओर दृष्टिपात किया। ख़ैयाम की कविता के आध्यात्मिक संकेत को उसने छोड़ दिया। इसका कारण यह है कि वह स्वयं पिछले युग की आध्यात्मिक कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ था। इसने ख़ैयाम की मादकता ली, उसी के प्रतीक लिये और कविता के संसार में एक युगांतर उपस्थित कर दिया। जनता ने इसमें अपनी रुद्ध चीत्कारों को देखा और इसका स्वागत किया। आधुनिक कवियों में बच्चन जैसी लोकप्रियता किसी कवि को नहीं मिली।

उनकी कविता में मध्यवर्ग की मनोवृत्तियों का सांकेतिक चित्र रहता था। उसके उपकरण थे।

१—भोग के प्रति आसक्ति

२—एक टूटे हुए स्वप्न के लिए रुदन

३—दैव या भाग्य पर आश्रय। कभी-कभी उसका विरोध भी था परन्तु भाग्य की प्रबलता पर कवि का अटल विश्वास था

४—सस्ती भावुकता

५—सौन्दर्य के प्रति आसक्ति

६—क्रियाशीलता के प्रति उदासीनता

हमने पहले कहा है कि दुःखवाद के पीछे निराशा और पलायन के दृष्टिकोण थे। सच तो यह है कि उन दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। भोगवाद का आधार ही निराशा है। धीरे-धीरे कवियों ने खैयाम की भावुकता और मादकता को छोड़ दिया और उनका स्वर स्पष्ट हो गया। 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' इसी मनोवृत्ति की परिणितियाँ हैं।

साथ ही जो कवि विरोध की भावना लेकर चले थे, उनके समाजवाद के रूप में एक नया दृष्टिकोण आ गया। उन्होंने अपना स्थान समझने का प्रयत्न किया। वह जनता की ओर झुके। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' पंत की 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' और भगवती बाबू का 'मानव' इस नये काव्य की आधार-शिलाएँ हैं। जिन पुराने कवियों ने नये काव्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया, उनमें से कुछ अपनी पिछली मनोवृत्तियों के कारण नये संदेश को साफ़-साफ़ रखने में सफल नहीं हो सके हैं।

पूर्वार्द्ध के कवि (निराला, पंत, प्रसाद) ऐसे समय में लिखना आरम्भ कर रहे थे, जब आज की अपेक्षा सामाजिक बन्धन अधिक दृढ़ थे और यौन-सम्बन्धी आकर्षण को किसी भी प्रकार प्रगट

करना एक महान् अपराध होता। उस समय का ब्रज-साहित्य भी रीतिकाल की प्रधान विशेषता शृंगार से हीन था। उसने साधारण प्रकृति-वर्णन और नैतिक उपदेश को अपना विषय बना लिया था। उस समय का समाज, विशेषकर आलोचक वर्ग, १९वीं शताब्दी के अंग्रेज़ी समाज से मिलता-जुलता है। एक प्रकार से द्विवेदीजी जानसन का कार्य कर रहे थे। साहित्य पर नीति का कठोर नियन्त्रण था। अतएव नये कवियों की प्रतिभा विशेषतः प्रकृति या दार्शनिक तत्त्वों की ओर गई। उन्होंने जहाँ-जहाँ भौतिक प्रेम को अपना लक्ष्य बनाया, वहाँ-वहाँ वे देह की ओर केवल अस्पष्ट संकेत करके रह गये। उनका यौन-सम्बन्धी संकोच उन्हें देह की ओर देखने ही नहीं देता था। यह क्षेत्र पहले से ही बदनाम था। इससे उन्हें कई दिशाएँ देख कर चलना पड़ता था। समय के नियंत्रण का डर था। स्वयम् उनकी मनोवृत्ति कायिक थी क्योंकि वे सौन्दर्यवादी थे, परन्तु नारी का चित्रण करते हुए वे

(१) या तो दैहिक सौन्दर्य और उसके प्रति आकर्षण की उपेक्षा करते, या

(२) उर्दू कविता की तत्सम्बन्धी लाक्षणिकता के आवरण में अपने आकर्षण को छिपाते।

परन्तु धीरे-धीरे परिस्थिति बदली। उनका स्वागत हुआ। नियन्त्रण भी कम हुआ और उनकी कायिक वृत्ति ने साँस ली। उन्होंने नारी-सौन्दर्य की ओर भी ध्यान दिया। परन्तु तब कठोर नियन्त्रण में रहने के कारण उनका दृष्टिकोण दूषित हो गया था। उनकी सौन्दर्यानुभूति रहस्यमयता की ओर बढ़ रही थी। फल यह हुआ कि उन्होंने नारी को एक रहस्यमय, अलौकिक और अपार्थिव जीव के रूप में देखा। उनके इस दृष्टिकोण की जड़ में उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति थी जो लौकिक को अलौकिक और नगण्यतम को उच्चतम करके देखने लगी थी।

परन्तु एक दिन उन्होंने आँखें खोल कर देखा तो नारी उनकी चितना के केन्द्र में थी। यह अवश्य था कि उसमें पार्थिवता का कोई अंश न था, वह उनकी कल्पना-सृष्टि थी, विधाता की नहीं। परन्तु उनका दृष्टिकोण इससे इतना रँग गया कि उन्होंने उसे प्रकृति के मूल में देखा। कभी-कभी चेतन आदि शक्ति के रूप में भी। 'प्रसाद' का दृष्टिकोण अंत तक शुद्ध सौन्दर्यवादी जैसा रहा। पंत और निराला की सौन्दर्यानुभूति नारी के रहस्यमय अव्यक्त रूप की ओर उन्मुख रही।

उत्तरार्द्ध के कवियों के काव्य में नारी का ऐहिक रूप अधिक स्पष्ट हो गया है। उसमें मांसलता तो अभी नहीं आई परन्तु कवि प्रेयसी की काया की सत्ता की ओर भी इंगित करता है। रामकुमार वर्मा की कविता में पहली बार नारी विधाता की सृष्टि के रूप में आती है। 'निशीथ' में ऐसा होना आवश्यक था, क्योंकि वह कथा है। परन्तु इस पुस्तक को पंत की इसी प्रकार की प्रेम-कथा 'ग्रन्थि' के सामने रखने पर यह मालूम हो जाता है कि उनकी नारी पंत की नारी से अधिक स्थूल है। भागवती बाबू के प्रेम-गीतों में भी जिस नारी की ओर इंगित किया गया है, उसे इस स्थूल रूप में लेते हैं।

परन्तु यह परिस्थिति वांछनीय नहीं थी। इससे परवर्ती कवियों में इससे विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अपनी कविता को ऐन्द्रियता का इतना पुट दिया कि लोग उन्हें भोगवादी समझ कर घृणा करने लगे। यह साफ़ है कि छायावाद की अस्थूल नारी की कल्पना की प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अपनी कविता को ऐन्द्रियता का इतना पुट दिया कि लोग उन्हें भोगवादी समझ कर घृणा करने लगे। यह साफ़ है कि छायावाद की अस्थूल नारी की कल्पना की प्रतिक्रिया होने के कारण कवि शरीर पक्ष की ओर झुके—परन्तु उनका आकर्षण इस अपेक्षित विषय की ओर इतना तीव्र हो गया कि उनका काव्य ही अस्वाभाविक जान पड़ा।

नारी के प्रति ठीक-ठीक, दृष्टिकोण हमारे कवि अभी तक नहीं बना पाये हैं। इसका कारण भी यह है। अभी तक नर-नारी के बीच की सामाजिक प्राचीरें उसी तरह बनी हुई हैं। यह अवश्य है कि अब मध्यवर्ग का नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण कुछ सुलझ रहा है और वैवाहिक प्रतिबन्ध कुछ शिथिल हो रहा है। परन्तु अभी परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि हमारी कविता उस तरह की प्रेम-कविताओं को जन्म दे जिनका स्वर विकृत न हो गया हो। कहीं पाशविक ऐन्द्रियता है, तो कहीं स्त्रैणता। नरेन्द्र की कविताओं में नारी के प्रति कोमल भावनाएँ मिलती हैं परन्तु उनका प्रेम तरुण का प्रेम नहीं है। उसमें किशोर का कंठ फूट रहा है। नारी के चरणों में एकांत समर्पण के अतिरिक्त पुरुष उससे कुछ नहीं चाहता। उनके काव्य में भावुकता और सस्ता विरह निवेदन है यद्यपि उनकी कविता हाड़-मांस की नारी के प्रति लिखी होने के कारण अनुभूतिपूर्ण है; अतः प्रिय है। उसमें अपना आकर्षण है। फिर भी जब तक हमारे समाज में नारी जीवविज्ञान की एक आवश्यकता को पूरी करने वाली चीज़ मात्र बनी रहती है और उसे पूरा आदर नहीं मिलता, तब तक न हमारा साहित्य उसके प्रति अपने स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण कर सकेगा, न हमारे प्रेमगीत ही विश्व-साहित्य के प्रेमगीतों की तुलना में पूरे उतर सकेंगे।

नई काव्यधारा की रूपरेखा अभी स्पष्ट नहीं हो पाई है। यह धारा यथार्थवादी कवियों की है। अब तक के कवि रहस्यवादी, रोमांटिक या आदर्शवादी रहे हैं। उनके भावपक्ष और विचारपक्ष के सम्बन्ध में यह बात बिल्कुल ठीक है। जहाँ उन्होंने सत्य को छूने का प्रयत्न किया है, वहाँ वे Romantic Sentimentalist या अति-भावुक या रोमांटिक हो गये हैं। सच तो यह है कि उनका बौद्धिक स्तर देखने के लिए हमें उनकी गद्य-रचनाओं की ओर देखना चाहिये। उनके अध्ययन से हमें मालूम होगा कि समाज की अनेक संस्थाओं के सम्बन्ध में उनके विचार कभी-कभी प्रतिक्रियावादी,

परन्तु अधिकतः आदर्शवादी जैसे हैं। काव्य के दृष्टिकोण या भावुकता के विचार से वे रोमांसप्रिय, सौन्दर्यप्रिय या रहस्यवादी हैं अथवा निराशवादी हैं। अब विचार के क्षेत्र में नई राजनैतिक और आर्थिक धारणाओं के प्रवेश के कारण हमारी नैतिक और समाज-संबंधी धारणाएँ भी बदल रही हैं। लोग वास्तविकता में पीछे होने के बजाय उससे मोर्चा लेने की बात सोच रहे हैं। इस उद्देश्य से उन्होंने वस्तुस्थिति का अध्ययन करना आरम्भ किया है। इससे कविता में यथार्थवाद का जन्म हो रहा है। पंत की 'युगवाणी' में 'ठन,ठन, ठन' 'चींटी' और 'नारी' जैसी कविताए इसी ओर इंगित करती हैं। यह सत्य हो सकता है कि उनके विचारों ने अभी भावनाओं का रूप नहीं लिया है तथा उनकी भावनाओं ने अपने चारों ओर कवित्व को इकट्ठा नहीं कर पाया है, परन्तु वह यथार्थ के कवित्तपूर्ण चित्रण की ओर बढ़ रहे हैं। अपने पुराने प्रतिबन्धों को तोड़कर वह इस दिशा में काफ़ी सफल हुए। नवीन हिन्दी कविता की समाजवादी धारा यथार्थवाद की ही एक शाखा है, यद्यपि अभी न उसमें कलात्मकता है न विचारों की गहराई है।

आगामी कल के हिन्दी काव्य की प्रगति अंतर्मुख से बहिर्मुख की ओर जान पड़ती है। व्यक्ति का स्वर समाज के स्वर में खोता दिखाई देता है। कविता समाज की वाणी होगी, ऐसे समाज की जो आशा, संघर्ष और विद्रोह से अनुप्राणित और स्पंदित होगा। भावी कवि की वाणी पूर्णता की ओर बढ़ती हुई मानवता को बल देगी। परन्तु अभी उसके आगे बहुत-सी मंज़िलें हैं।

[२]

'छायावाद और 'रहस्यवाद' के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ उपस्थित हुई हैं और स्वयं कवियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण दिये हैं। रहस्यवाद के सम्बन्ध में श्री रामकुमार वर्मा कहते हैं—"रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और

अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता।" (कबीर का रहस्यवाद, पृ० ७) जैनेन्द्रकुमार 'छायावाद' की परिभाषा देते हुए लिखते हैं—"छायावाद में अभाव को अनुभूति से अधिक कल्पना से भरा गया। वियोग उसके लिये एक cult (दृष्टि) ही हो गया। आँसू मानों। छिपाने की चीज़ नहीं, दिखाने की वस्तु हो गया। व्यथा संग्रहणीय न होकर बिखेरी जाने लगी। जो वेदना सँजोयी जाकर बल बनती, वह साज-सज्जा से प्रस्तुत की जाकर छाया-मात्र रह गई" (साहित्य-संदेश, नवम्बर १६१६)। महादेवी के शब्दों में—"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती है" (सांध्यगीत की भूमिका)। वास्तव में नये काव्य के तीन पहलू ऐसे थे जिन्होंने एकदम नवीनता उत्पन्न कर दी थी (१) अज्ञात सत्ता और उसके प्रति प्रेम एवं आत्मसमर्पण, (२) नारी, (३) प्रकृति। अज्ञात सत्ता के प्रति लिखे काव्य ने रहस्यवाद का रूप ग्रहण किया और नारी प्रकृति के सम्बन्ध में नये-नये दृष्टिकोण विकसित किये गये।

नवीन कवियों का प्रकृति-संबंधी दृष्टिकोण सूफ़ी-काव्य की याद दिलाता है। सूफ़ी कवियों का प्रकृति के संबंध में एक विशेष दृष्टिकोण है और उसने उनके काव्य में एक महत्वपूर्ण स्थान पाया है। वे कवि रहस्यवादी थे। इनकी दृष्टि में प्रकृति परमात्म सत्ता की अभिव्यक्ति है। वह दर्पण है जिसमें पुरुष का चित्र पड़ता है। इसीसे उन्होंने उसे चिदात्म की प्राप्ति का माध्यम माना है। उन्होंने प्रकृति का जो चित्र उपस्थित किया है वह उनकी रहस्यानुभूतियों से रँगा होने के कारण अतिरंजित है। साथ ही वह जीवित, स्पंदित और सहानुभूतिपूर्ण है।

साधक के दुःख-सुख के साथ प्रकृति भी सुख-दुःख का अनुभव करती है। उसके उतने ही भाव हैं जितने मनुष्य के। सूफियों ने विरह को प्रेम की चरम अभिव्यक्ति माना है, इससे उनकी प्रकृति भी क्रन्दन-शीला, पुरुष-परित्यक्ता और आजीवन विरहिणी है।

द्विवेदीकाल के कवियों ने पहली बार प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया। नई पश्चिमी सभ्यता के साथ नगरों का जीवन तेज़ी से बदल रहा था। प्रकृति के जो चिह्न विलासिता के पिछले युग में थे, वह भी नष्ट हो रहे थे। आर्थिक संघर्ष ने जीवन को और भी जटिल, और भी नीरस कर दिया था। इससे कवियों की दृष्टि प्रकृति की ओर गई। वे नगर के रहने वाले थे। उनकी भावुकता और सहानुभूति कभी काश्मीर की सुषमा पर जाती, कभी ग्राम-जीवन की सरलता और ग्राम की प्रकृति की ओर। जो हो, उन्होंने प्रकृति की ओर देखा, चाहे उनका दृष्टिकोण ही उनके उस आदर्शवाद से प्रभावित होकर बेमानी ही क्यों न हो गया हो जिससे प्रेरित हो बाद में प्रेमचंद गाँवों पर मोहित हो गये थे।

नवयुग के कवियों ने जीवन की कटुता के प्रति भावुक विद्रोह किया और अपनी भावना-प्रिय प्रवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करके उन्होंने उसे आँख की ओट करना चाहा। उनकी प्रवृत्ति शुतुरमुर्ग जैसी है जो रेत में मुँह छिपाकर शत्रु के ओट हो जाने की कल्पना करके हृदय को संतुष्ट कर लेता है। उन्होंने Back to Nature कहा। परन्तु वह अति की ओर झुक चुके थे। उनकी दृष्टि में आसक्ति-पूर्ण भावुकता ने प्रवेश कर लिया। शीघ्र ही वह प्रकृति के प्रति रहस्य-वादी हो गये।

सच तो यह है कि पूर्वार्द्ध के कवियों के प्रकृति-चित्र उनके रहस्य-वाद के कारण अतिरंजित हैं। उनमें न प्रकृति की स्वाभाविकता है, न उसकी विशदता। उनकी प्रकृति स्वयं उनकी निर्माण की हुई है,

यद्यपि कहीं-कहीं बाह्य प्रकृति के चित्र बड़े सुन्दर मिलते हैं। परन्तु नवीनतम कवियों ने प्रकृति के प्राकृत रूप की ओर भी दृष्टिपात किया है। वे प्रत्येक दिन के दृश्यों में सौंदर्य की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। उन्होंने उपेक्षित क्षेत्रों में प्रवेश किया है और उन्हें साहित्य प्रेमियों के सामने रखा है, यद्यपि उनका दृष्टिकोण आदर्शवाद से प्रभावित है। फिर भी वे प्रकृति के बहुत समीप हैं। इन नये कवियों में प्रकृति कई तरह से आई है। (१) वीथिका रूप में निराशावाद और सुखवाद और रहस्यवादी अनुभव के लिए, (२) रहस्यवादी सत्ता के रूप में, (३) ऐसी सर्वोपरि सत्ता के रूप में जो मनुष्य की भाग्यविधायिनी है, (४) उपमा-उत्प्रेक्षा के रूप में, (५) स्वतंत्र रूप, में (६) दार्शनिक ऊहापोह (metaphysical conclip) के लिए। वास्तव में नई कविता में प्रकृति के प्रयोग इतने भिन्न ढङ्गों से हुए हैं कि थोड़े में उन सबकी व्याख्या बड़ी कठिन बात है। कवियों की सारी दृष्टियों, सारी शैलियों, सारी वाग्भंगिमाओं को प्रकृति ने रंग दिया है। नारी, प्रकृति और परोक्ष सत्ता (ईश्वर) छायावाद के काव्य में इतने गूँथ कर आये हैं कि उन्हें अलग-अलग रखना कठिन है। सारे मानवजीवन और सारे मानव चिंतन को समेट कर चलनेवाला छायावाद का काव्य हिंदी कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है। उसने हिंदी कविता को शताब्दियों की रूढ़िकारा से बाहर निकाला है और आज छायावादी कवियों की साधना से बलवती होकर ही हिन्दी कविता विश्वभारती के कंठ में अपनी भी तान भरने चली है।

[४]

द्विवेदीकाल के दो कवियों पं० रामनरेश त्रिपाठी और मुकुटधर पांडेय में हमें परवर्ती रोमांस काव्य, रहस्यवाद, या छायावाद के सूत्र मिलते हैं। जैसा हम आगे विशद रूप में विवेचना करेंगे, छायावाद काव्य में अदृष्टता सत्ता के प्रति प्रेम-भावना, लौकिक प्रेम को आध्यात्मिकता की ओर ले जाने की प्रवृत्ति, प्रकृति के स्वच्छन्द और रमणीय प्रसार

की ओर दृष्टि पहले इन्हीं लोगों में मिलती है। त्रिपाठी ने मिलन, पथिक और स्वप्न खंड-काव्य लिखकर राष्ट्रीय और प्रेम-प्रधान कथा-काव्य में योग दिया। निम्नलिखित पंक्तियों से उसका वह मूल रूप प्रगट होगा जो छायावाद में अंकुरित हुआ है—

प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग बिरंग निराला
रवि के सम्मुख थिरक रही थी नभ में वारिदमाला
नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है
घन पर बैठ बीच में विचरूँ यही चाहता मन है

×　　　　+　　　　×

सिंधु विहंग तरङ्ग-पंख का फड़का कर प्रतिक्षण में
है निमग्न नित भूमिखंड के सेवन में रक्षण में

इसी प्रकार मुकुटधर पांडेय की ये पंक्तियाँ भी छायावाद काव्य का पूर्व रूप ही उपस्थित करती हैं—

हुआ प्रकाश तमोमय जग में,
मिला मुझे तू तत्क्षण मग में,
दम्पति के मधुमय विलास में,
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में,
था तव क्रीड़ा-स्थान

इनके अतिरिक्त पं० बदरीनाथ भट्ट और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की १९१३-१६ तक की कुछ कविताएँ गीतात्मकता, भावना, व्यंजना-शैली और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परवर्ती काव्य का बीज लिये हैं। सच तो यह है कि पहले दशाब्द का अंत होते-होते कवि (विशेषकर वे कवि जो अंग्रेज़ी से परिचित थे) द्विवेदी-युग की कविता की नीरस अभिधा-प्रधान शैली, इतिवृत्तात्मकता और उसकी कल्पना-हीनता और रस-शून्यता से ऊब गये थे। वे कम से कम भावप्रकाशन

की अधिक सरल, सरस और मार्मिक शैली की ओर बढ़ना चाहते थे। यद्यपि ये कवि प्रधान रूप से द्विवेदी-युग के ही कवि हैं क्योंकि उनके काव्य का अधिकांश उसी की विशेषताओं से विभूषित है, परंतु उनका थोड़ा भाग अवश्य ही उन्हें द्विवेदी-युग से आगे बढ़ाकर छायावाद काव्य के उन्नायकों में रख देता है।

१९१३ ई० तक खड़ी बोली पद्य द्विवेदी स्कूल के कवियों द्वारा बहुत कुछ मंज गया था। भाषा सँभल गई थी, यद्यपि तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक था, परंतु संस्कृत पदावली का प्रयोग कम हो गया था। भाषा में ऊँची कल्पना और उत्कृष्ट चित्र उपस्थित करने एव उनमें अपनी अनुभूति भरने की चेष्टा होने लगी थी। मुकुटधर पांडेय कुछ-एक गीत भी लिख चुके थे जो रहस्य-भावना को प्रगट करते थे। यदि भाषा और शैली में विदेशी प्रभाव के कारण हठात् परिवर्तन हो जाता तो हिंदी कविता में प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर सामंजस्य हो पाता।

परंतु ऐसा नहीं हो पाया। जिस प्रकार पिछले काव्य में पं० श्रीधर पाठक के नैसर्गिक मार्ग को छोड़ कर कविता क्षेत्र में द्विवेदीजी के कारण एक नई गति-विधि चल पड़ी थी जिसके कारण एक दशाब्द तक कविता की प्रगति रुकी रही, उसी प्रकार रवीन्द्र बाबू के प्रभाव और अंग्रेज़ी कविता (१६वीं शताब्दी के रोमांटिक कवियों) के प्रभाव के कारण कविता ने मुकुटधर पांडेय और श्रीधर पाठक को छोड़कर एकदम नया रंग पकड़ा। इससे दस वर्षों में हिंदी कविता जिस प्रौढ़ता पर पहुँच चुकी थी उसको धक्का लगा और कवि नये भाव और नई धारणाएँ लेकर नये सिरे से काम करने बैठे।

द्विवेदी-युग का काव्य इतिवृत्तात्मक था। कवि उससे ऊब चुके थे, विशेषकर वे जिन्होंने अंग्रेज़ी काव्य का अध्ययन किया था या जो अंग्रेज़ी और बँगला साहित्य के वातावरण से प्रभावित हो चुके थे।

अतएव काव्यकला के क्षेत्र में द्विवेदीयुग की काव्यधारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। उसके अभिधा-प्रयोग के विरुद्ध लक्षणा का प्रयोग हुआ। कहीं-कहीं केवल अप्रस्तुत विधान से प्रस्तुत का संकेत होने लगा। ऐसे स्थलों पर अप्रस्तुत प्रस्तुत का प्रतीक होकर आता था, अतः काव्य अस्पष्ट हो गया। विशेषण का प्रयोग विशेष्य के लिए, भाववाचक शब्दों का अधिक प्रयोग, विशेष विपर्यय, अन्योक्ति पद्धति का आश्रय, लाक्षणिकता का बाहुल्य, वैचित्र्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति, शब्द-सौन्दर्य पर भाव-सौन्दर्य से अधिक दृष्टि—ये नये काव्य (छायावाद) की कुछ विशेषताएँ थीं। छायावाद-काव्य काव्य-कल्पना-प्रधान था, भक्तिकाव्य की तरह अनुभूति-प्रधान नहीं। इसके साथ ही उसमें आलम्बन की अस्पष्टता भी थी। अद्वैत वेदांत का समर्थन होते हुए भी छायावादी कवि अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रेम प्रगट करता है और उससे मिलने के लिए आकुल है। इस प्रियतम का कोई रंग नहीं, कोई लोक अथवा स्थान-विशेष ऐसा नहीं जहाँ वह रहता हो। भारतीय धर्म या साहित्य में उसकी कोई परंपरा नहीं है। कवि अपने को प्रियतम से पिछड़ी हुई पत्नी या प्रेमिका मानता है, परन्तु न उसकी शैली कोई स्पष्ट चित्र देती है, जैसा कबीर के रहस्यात्मक काव्य से होता है, और न आलम्बन का रूप ही साकार है, जैसा कृष्णकाव्य में। वस्तुतः छायावाद काव्य का अनंत अथवा प्रियतम शैली के रूप में प्रयुक्त होता है, वह काव्य की एक रूढ़ि सी है। अतः इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि हिंदी प्रदेश की जनता उसे क्यों नहीं समझ सकी।

छायावाद-काव्य पर अंग्रेज़ी काव्य-साहित्य का प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। अनेक शब्द ऐसे प्रयोग में आये हैं जो अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों के अनुवाद मात्र हैं। कहीं-कहीं पदावली के अनुवाद के रूप में भावों के अनुवाद भी मिलते हैं। कवियों की प्रवृत्ति कल्पना द्वारा आकाश-पाताल मिलाने की ओर है। अत्यन्त थोड़ा साम्य रहते हुए भी किसी

अपरिचित अप्रस्तुत विधान में एक पूर्व परिचित प्रस्तुत विधान का आरोप किया गया है। सन्दर्भ-रहित प्रतीकों का अत्यन्त अधिक प्रयोग हुआ है। इससे भावना जटिल हो गई है और भाव अप्रकाशित ही रह गये हैं। कवियों का ध्यान रूप और गुण-साम्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य पर अधिक है। रीतिकाल के स्त्री के अङ्गों के उपमानों का एक बार फिर प्रयोग हुआ है, परन्तु नवीन रूप से लाक्षणिकता का सहारा लेकर। उपमान वही हैं परन्तु उनका प्रयोग दूसरे ढङ्ग पर हुआ है। द्विवेदी युग के कवियों ने शृंगार रस की पूर्णतः उपेक्षा की थी। उनमें नैतिकता की प्रधानता थी। छायावाद के कवि की स्त्री-विषयक भावना पिछले खेवे के कवियों के दृष्टिकोण से विपरीत थी। नये कवि सौन्दर्य के प्रेमी थे। वह स्त्री के सौन्दर्य की ओर इतने आकृष्ट थे कि उसे पूजाभाव अथवा रहस्यभाव से देखते थे।

इन नये कवियों में हम द्विवेदी-काल के कवियों के विरुद्ध नाद-सौन्दर्य से विशेष प्रेम पाते हैं इसीलिए अनेक निरर्थक पदावलियाँ केवल नादसौन्दर्य के कारण ही प्रमुख हुई हैं। कवियों की प्रवृत्ति कला की ओर अधिक थी। उन्होंने प्रत्येक दिशा में कलाप्रियता का परिचय दिया है। यह कलाप्रियता विशेषतः नवीन छंदों के प्रयोग के रूप में प्रगट हुई है। अंग्रेजी और बंगला-साहित्य के छंदों से प्रभावित होकर अतुकांत और मुक्त छंद का भी प्रयोग हुआ, यद्यपि अधिक मात्रा में नहीं।

छायावाद काव्य में हम अप्राकृतिक में प्राकृत, अमानव में मानव और जड़ में चेतन का आरोप पाते हैं। कवियों की दृष्टि आत्माभिव्यक्ति और वैयक्तिकता के प्रकाशन की ओर है परन्तु अनुभति को कल्पना द्वारा उत्पन्न करने की चेष्टा और वास्तविक अनुभूति की तीव्रता न आने पर काव्य में अस्पष्टता-दोष भर आता है, यद्यपि कवियों की दृष्टि समाज और राष्ट्र से हट कर मुख्यतः अपने व्यक्तित्व पर सीमित हो गई है, तथापि उनमें से कितने ही कवियों में विशाल सहानुभूति के दर्शन होते हैं।

छायावाद-काव्य में प्रकृति को विशेष स्थान मिला। आधुनिक काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र प्रयोग पहले-पहल पं० श्रीधर पाठक द्वारा हुआ। इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। द्विवेदी युग के लेखकों ने अपने काव्य में प्रकृति को स्थान तो अवश्य दिया परन्तु वे प्राकृतिक प्रसंगों और वस्तुओं के परिगणन तक सीमित रहे। छायावादियों ने प्रकृति के प्रति प्रेम, तन्मयता और तीव्र मिलनाकांक्षा प्रकट की है। उन्होंने प्रकृति के रूपों में स्त्री-सौन्दर्य और रहस्यात्मकता का आरोप किया है। सारी प्राकृतिक सामग्री स्त्री-रूप में देखी गई है, अतः प्रकृति के कार्यकलापों में प्रेमी-प्रेमिकाओं की चेष्टाओं का आरोप विशेष रूप से हुआ है। छायावाद के प्रकृति-चित्रण में अनुभूति के अतिरिक्त कल्पना का भी बड़ा पुट है; इसी से कहीं-कहीं अत्यंत ऊहात्मक वर्णन मिलते हैं। उपमानों की खोज में कवि साधारण अनुभव की सीमा का अतिक्रमण कर जाता है और कभी-कभी अत्यंत संदिग्ध कल्पना-मूलक उपमानों की झड़ी लगा देता है। उसे रंगों के प्रति व्यर्थ का प्रेम है। उसने बहुत से ऐसे रंगों की कल्पना की है जो केवल विदेशी काव्य में प्रयोग में आते हैं। उसने रङ्ग-सम्बन्धी परंपरागत धारणाओं की अवहेलना की है। सच तो यह है कि छायावादी कवि प्रभाव की ओर अधिक ध्यान देता है, स्वयम् रङ्ग या चित्र की ओर कम।

वर्तमान काव्य (छायावाद) में शृङ्गार की धारा ने एक प्रच्छन्न रूप ग्रहण कर लिया। उसने अशरीरी सौन्दर्यप्रियता को जन्म दिया जो छायावाद की विशेषता थी। यह युग एक प्रकार सौन्दर्यप्रियता के पुनरुत्थान का युग था जिसने रोमांस का सहारा लिया था। वैष्णव साहित्य में सौन्दर्यानुभूति की भावना मिली हुई थी जो कवि की सौन्दर्य-प्रेमी प्रवृत्ति को तृप्त करती थी। द्विवेदी-युग के वैष्णव काव्य में सौन्दर्य का विशेष पुट नहीं था। वह युग स्वयं रसिकता के प्रति विद्रोह का युग था। छायावादी कवियों में वह सौन्दर्यानुभूति फिर जागी और उन्होंने देवगाथाओं

और देव-पुरुषों के आलम्बन को छोड़कर प्रकृति और अव्यक्त अथवा अशरीर कल्पना-चित्रों में सौन्दर्य की स्थापना की चेष्टा की। यह रीतिकाल की स्थूल ऐन्द्रियता और द्विवेदी-युग की बौद्धिक शुष्कता के बीच का मार्ग था जो इन कवियों ने ग्रहण किया।

आलोचक-प्रवर श्री रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को 'काया-वृत्तियों' का प्रच्छन्न पोषण कहा है। बहुत हद तक यह बात ठीक भी है। वह पूर्ववर्ती स्थूल लौकिकता से विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आरंभ हुआ था। उसका दार्शनिक आधार वेदांत या उपनिषद का दर्शन था। भौतिक प्रेम की ओर से कवि ने अपनी दृष्टि हटा ली। परंतु उसी प्रकार की अभिव्यञ्जना। वह प्रकृति और अव्यक्त सत्ता के लिए करने लगा। इस प्रकार अपनी शृङ्गार-भावना को अमूर्त चित्रों पर आश्रित करके अपने मन को तृप्ति दी। छायावाद के पहले खेवे के कवियों ने नारी-सौन्दर्य की जो सृष्टि की है, वह काल्पनिक अतः अभौतिक है। उसने प्रकृति को भी स्त्री के रूप में देखा।

जो सर्वप्रथम प्रवृत्ति हमें काव्य में दिखलाई पड़ती है वह उसकी सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य के प्रति उसकी व्याकुलता है। उसने जिस वस्तु को छुआ है उसमें सौन्दर्य की स्थापना की है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण आश्चर्य का रहा। फिर उसने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया और उसे अपने अधिक सन्निकट लाने का प्रयत्न किया। प्रकृति के स्त्री-रूप के प्रति उसे मोह हो गया। उत्तरार्द्ध के कवियों में एक प्रकार के प्राकृतिक अध्यात्म के दर्शन होते हैं। यही नहीं, कवियों में सौन्दर्यान्वेषण की प्रवृत्ति बढ़ी और इतनी बढ़ी कि उन्होंने स्वयं छन्द और कविता में भी सौन्दर्य की आत्मा के दर्शन किये। छन्द, शब्द और ध्वनि सब में उन्होंने उत्तरोत्तर इस प्रकार के परिवर्तन किये और धीरे-धीरे काव्य का कलापक्ष उनके लिए सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ महत्वपूर्ण हो गया।

संक्षेप में यह कि कवियों ने अपनी इंद्रियों को काव्य का माध्यम बनाया।

इन कवियों ने सौन्दर्य और करुणा का विचित्र गठबंधन किया। सौन्दर्य और करुणा का संबंध अनिवार्य हो, यह आवश्यक नहीं। वैदिक ऋचाओं में ऋषियों ने प्रकृति के अनेक रूपों में देवत्व का स्थापन किया है। परंतु उनके गीतों में विषाद और करुणा की छाया भी नहीं है। वे मुक्त विहंगम की भाँति सुख के पंखों पर उड़ते हैं और यद्यपि वे वर्डस्वर्थ के स्काइलार्क (लवापक्षी) की तरह आकाशचारी हैं परंतु उनके गीतों में विषाद और करुणा की छाया भी नहीं है। उनमें कहीं भी पृथ्वी की धूल नहीं लग पाती। हमारे आधुनिक कवियों को पग-पग पर आर्थिक और सामाजिक विडम्बनाओं से मोर्चा लेना पड़ता था। इससे उनकी आदर्शवादी प्रवृत्ति को धक्का लगता जिसके द्वारा वे अपने चारों ओर सौंदर्य के एक संसार की सृष्टि करना चाहते थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि सौन्दर्य क्षणभंगुर है, नाशवान है। उनके काव्य में दुःख की भावना की उत्पत्ति हुई। पहले कवियों में दुःख की भावना अस्पष्ट और आध्यात्मिक थी, परंतु बाद में यद्यपि उसका रूप आध्यात्मिक ही रहा, परन्तु यह भावना स्पष्ट हो गई। बाद को बच्चन में इसने एक विशिष्ट दुःखवाद का रूप ग्रहण किया।

रामकुमार वर्मा और महादेवी वर्मा में आध्यात्मिक दुखवाद अपनी अन्यतम गहराइयों तक पहुँच गया है। कवियों ने अपनी एकांतता का अनुभव किया। उन्हें जीवन में शून्यता की अनुभूति हुई। उन्होंने परिस्थितियों को स्वाभाविक और अपरिवर्तनशील मानकर अपने हथियार डाल दिये—वे अहंवादी हो गये। वे वास्तविकता से भागे। उन्होंने अपने बाहर संघर्ष पाकर अपने भीतर के संसार में शांति ढूँढने की चेष्टा की। उनकी प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी हो गईं। संसार के प्रति उनका विश्वास क्षीणतम होकर अंत में खो गया। तब उन्होंने मनुष्य-

जीवन के अंतिम आधार को पकड़ा जो उसका स्वयम् में विश्वास है। बार-बार जब मनुष्य परिस्थितियों से पराजित हुआ है तो उसने अपने प्रति विश्वास बनाये रखने की चेष्टा की है जिससे उसका अस्तित्व बना रहे। महादेवी लिखती हैं—"इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है, इसे मेरा हृदय ही जानता नहीं है, मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होता है और अविश्वास का भी, परंतु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं।"

फल यह हुआ कि कवि के लिए उसका व्यक्तित्व ही सब कुछ हो गया। उसकी व्यापकता उसके लिए इतनी अधिक हो गई कि उसने बाहरी संसार से संबंध ही छोड़ दिया। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कंपन को अंकित कर लेने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पाने के लिए विकल हैं। इसके साथ ही उनमें से कुछ ने परिस्थिति का क्षीण विरोध भी किया।

परंतु जो विद्रोह था, वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। उनकी एकांतता बढ़ने लगी। उनकी विरोध-भावना उनमें ही केन्द्रीभूत हो गई। उसने यथार्थवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया, न अपने चारों ओर फैले हुए दुःख के कारण के मूल में पहुँचने का प्रयत्न किया। फलतः एक पराजित भोगवाद या झूठी मस्ती का जन्म हुआ। इसकी नींव कवि की पराजित भावनाओं में थी। भावुकता और मादकता को छोड़कर दुःख ही उसका स्वर हो गया। अब उनको पीड़ा से उन्हें मोह था, उसमें उन्हें आसक्ति थी। वह एक प्रकार से Sadist (आत्म-प्रताड़क) थे जो यह संतोष कर लेते थे कि दुःख स्वयम् एक प्रकार की साधना है जो मनुष्य की आत्मा को पुष्ट, बलवती और सुन्दर

करती है। अब उनकी पीड़ा उन्हें प्रिय लगने लगी। उन्होंने उसे तीव्र अनुभूति के द्वारा स्पष्ट किया और उनकी कविता व्यक्ति के आत्मिक रुदन और चीत्कार के रूप में समष्टि की भावना का रूप देने लगी। कवि यद्यपि एकांत में गाता था, परन्तु उसके स्वर में सारे समाज का स्वर बज रहा था।

साथ ही जो कवि समाज, सत्ता और परिस्थिति के प्रति विद्रोह की भावना लेकर चले थे उनके सामने समाजवाद के रूप में एक नया दृष्टिकोण आया। उन्होंने अपना स्थान समझने की चेष्टा की। उन्होंने देखा कि वह न ऊँचे मध्यवर्ग से संबंध रखते हैं, न साधारण श्रमिक-कृषकों से। उन्होंने यह भी देखा कि उन्हें अपना स्थान चुनना होगा। वे जनता की ओर झुके। भगवतीचरण वर्मा की कविताएँ और पंत की युगवाणी इस नई दिशा की ओर बढ़ती हुई चीज़ें हैं। कवि ने अनुभव किया कि उसका युग उसकी कविता से मेल नहीं खाता, कि उसने अपने लिए सौन्दर्य और प्रेम का जो संसार खड़ा किया था, वह वास्तविकता की टक्कर से चूर हुआ जाता है। उसने अनुभव किया कि उसके युग का जो गद्य है उसे वह रूप देगा, उसकी वेदना को वह स्पष्ट करेगा। पिछले कवियों ने भी बदलने की चेष्टा की, परन्तु अभी वे अपनी रोमांटिक मनोवृत्तियों के कारण नये संदेश को साफ़ साफ़ रखने में सफल नहीं हो सके हैं। पूर्वार्द्ध के कवि ऐसे समय में लिखना आरम्भ कर रहे थे जब आज की अपेक्षा सामाजिक बन्धन अधिक दृढ़ थे और यौन-सम्बन्धी आकर्षण को किसी भी प्रकार प्रगट करना एक अपराध होता। उस समय का ब्रजभाषा-साहित्य भी रीतिकाल की प्रधान विशेषता शृंगार से हीन था। उसने साधारण तौर पर प्रकृति-वर्णन और नैतिक उपदेशों को अपना विषय बना लिया था। उस समय का समाज, विशेषकर आलोचक-वर्ग, १८वीं शताब्दी के अंग्रेज़ी समाज से मिलता-जुलता था। एक प्रकार से द्विवेदी जॉनसन का कार्य कर रहे थे। साहित्य

पर नैतिकता का कठोर नियंत्रण था। अतएव नये कवियों की प्रतिभा विशेषतयः प्रकृति या दार्शनिक तत्त्वों की ओर गई। उन्होंने जहाँ-जहाँ भौतिक प्रेम को अपना लक्ष्य बनाया, वहाँ-वहाँ देह की ओर केवल अस्पष्ट संकेत करके रह गये। उनकी पलायनशीलता उन्हें देह की ओर देखने ही नहीं देती थी।

यह क्षेत्र पहले से ही बदनाम था। इससे कवियों को कई दिशाएँ देखकर चलना पड़ता था। समय के नियंत्रण का डर था। स्वयम् उनकी मनोवृत्ति कायिक थी क्योंकि वह सौन्दर्योपासक थे। परन्तु नारी का चित्रण करते हुए या तो वे दैहिक सौन्दर्य और उसके प्रति आकर्षण की उपेक्षा करते या उर्दू कविता की तत्संबन्धी लाक्षणिकता के आवरण में अपने आकर्षण को छिपाते।

परन्तु धीरे-धीरे स्थिति बदली। उनका स्वागत हुआ। नियंत्रण भी कम हुआ और उनकी कायिक वृत्ति ने साँस ली। उन्होंने नारी-सौन्दर्य की ओर भी ध्यान दिया। परन्तु तब कठोर नियंत्रण में रहने के कारण उनका दृष्टकोण दूषित हो गया था। उनकी सौन्दर्यानुभूति रहस्यमयता की ओर बढ़ रही थी। फल यह हुआ कि इन्होंने नारी को एक रहस्यमय, अलौकिक, अपार्थिक जीव के रूप में देखा। उनके इस दृष्टिकोण की जड़ में उनकी रहस्यमयी प्रवृत्ति थी जो लौकिक को अलौकिक और नगण्यतम को उच्चतम करके देखने लगी थी।

परन्तु एक दिन उन्होंने आँखें खोलकर देखा तो नारी उनकी चिन्ता के केन्द्र में थी। यह अवश्य था कि उसमें पार्थिवकता का कोई अंश नहीं था। वह उनकी कल्पना-सृष्टि थी। पराजित भोगवाद की भावनाओं ने ख़ैयाम की कविताओं की ओर दृष्टिपात किया। ख़ैयाम की कविता के आध्यात्मिक संकेत को उन्होंने छोड़ दिया। इसका कारण यह है कि वे स्वयम् पिछले युग की आध्यात्मिक

कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ था। ख़ैयाम की मादकता उसने ली, उसी के प्रतीक लिये और कविता-संसार में एक युगांतर उपस्थित कर दिया। जनता ने उसमें रुद्ध चीत्कारों को देखा और उसका स्वागत किया। इस प्रकार की कविताओं के उन्नायक बच्चन अपनी पहली ही कुछ कृतियों से जनता में इतने लोकप्रिय हो गये थे जितना कदाचित इतने समय में हिन्दी का कोई कवि नहीं हुआ। उनकी लोकप्रियता का कारण यह था कि इस कविता में मध्यवर्ग की मनोवृत्तियों का सांकेतिक चित्र रहता है। भोग के प्रति आसक्ति, एक टूटे हुए स्वप्न के लिए रुदन, दैव या भाग्य पर आश्रय (कभी-कभी उससे विरोध, परन्तु वह भी उसकी सत्ता स्वीकार करते हुए), सस्ती भावुकता, सौन्दर्य के प्रति आसक्ति और क्रियाशीलता के प्रति उदासीनता—ये कुछ कविता की इस नई धारा की विशेषताएँ थीं। युद्ध के बाद की मध्यवित्त जनता जिस आर्थिक संकट से गुज़र रही थी, उसने उसमें निराशा और हतोत्साही भावनाओं को जन्म दिया था और यह कविता उसके छिन्न-भिन्न स्वर्ण-स्वप्न को ठीक-ठीक प्रतिबिंब करती थी।

हमने कहा है कि दुःखवाद के पीछे निराशा और पलायन के दृष्टिकोण थे। सच तो यह है कि दुःखवाद और निराशा एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं। भोगवाद की नींव में निराशा काम कर रही थी। धीरे धीरे कवियों में निराशा कम हुई, ख़ैयामी मादकता का अंत हुआ। उन्होंने नारी-सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति और मानव-जीवन के दुःख-सुख के सम्बन्ध में अधिक स्वस्थ दृष्टिकोण आविष्कृत कर लिए।

उत्तरार्द्ध के कवियों के काव्य में नारी का रूप अधिक स्पष्ट है। नरेन्द्र के 'प्रवासी के गीत' की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि नारी को कल्पना की स्वर्गीय भूमि से उतार कर उसके प्रकृत स्थान

में उसे स्थापित करने लगा है। यही नहीं, पुराने रूढ़िवादी दृष्टिकोण के प्रति विरोध के शंख भी बज रहे हैं। 'युगवाणी' में पंत लिखते हैं।

योनिमात्र रह गई मानवी
निज आत्मा कर अर्पण,
पुरुष-प्रकृति की पशुता का
पहने नैतिक आभूषण
नष्ट हो गई उसकी आत्मा,
त्वचा रह गई पावन,
युग-युग से अवगुंठित गृहिणी
सहती पशु के बंधन
खोलो हे मेखला युगों की
कटि प्रदेश से, तन से,
अमर प्रेम हो उसका बंधन,
वह पवित्र हो मन से
अंगों की अविकल इच्छाएँ
रहें न जीवन - पातक,
वे विकास में बनें सहायक
होवें प्रेम प्रकाशक

नारी के प्रति कवि का यह नवीन दृष्टिकोण उसके जीवनदर्शन के आमूल परिवर्तन का प्रतीक-मात्र है।

द्विवेदी-युग में नये छन्दों के प्रयोग की बात हम पहले ही कह आये हैं, परन्तु छायावाद-काव्य में छन्दों के विषय में भी क्रांति हुई :

(१) नवीन संस्कृत छन्दों का प्रयोग हुआ।

(२) मात्रिक छंदों में ऐसे प्रकारों की सृष्टि हुई जिनमें प्रत्येक चरण में विभिन्न छंदों के चरण का प्रयोग मिलेगा।

(३) अभिव्यंजना को सफल करने के लिए किसी भी चरण की मात्राओं को घटाने-बढ़ाने की स्वतंत्रता बरती गई।

(४) बंगला से प्रभावित छन्दों का प्रयोग हुआ।

(५) तुकांत छंदों के कई नये भेदों का प्रयोग हुआ।

(६) मुक्त छंद (जिसे उपहास की दृष्टि से विरोधियों ने रबड़ छंद या केचुआ छंद कहा था) में रचनाओं की प्रवृत्ति स्थापित हुई। लगभग सारा छायावाद-काव्य गीतों या गेय कविताओं के रूप में ही हमारे सामने आया। व्यक्तित्व की प्रधानता और गीतात्मकता की महत्ता के कारण इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था।

परंतु इस सारे समय में विषय और प्रकार की दृष्टि से अनेक तरह की विभिन्नता रही है। राम-कृष्ण पर "साकेत" और "प्रियप्रवास" जैसे महाकाव्य लिखे गये हैं, बुद्ध पर "अनघ" और "बुद्ध-चरित।" कुछ पौराणिक काव्य भी लिखे गये जिनके विषय देवी-देवता हैं। इनके अतिरिक्त मध्ययुग और आधुनिक युग के कितने ही वीरों को विषय बनाया गया। वास्तव में जातीयता और राष्ट्रीयता के भावों के विकास के साथ उन पर ध्यान जाना आवश्यक था—यही कारण है कि शिवाजी, प्रताप, अर्जुन, गोविन्दसिंह जैसे वीरों को लेकर कितनी ही वर्णनात्मक और कथात्मक कविताएँ लिखी गई हैं। परन्तु इस युग की विशेषता है जनसाधारण का काव्य में प्रवेश। हम कह चुके हैं कि सर्वचेतना और करुणा की प्रवृत्तियाँ मुख्य थीं, नवीन प्रवृत्तियाँ इन्हीं के भीतर से छन कर एकात्मकता को प्राप्त हुईं। विषय के बाद जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात नवीन कविता में दृष्टिगोचर होती है वह है कलात्मकता। उसकी अभिव्यक्ति छन्दों, शब्द-योजना और शैली सभी में हुई है। कवि ने अपनी कला को गीतात्मकता या संगीत और

चित्रात्मकता पर गया है। जो कुछ कहा जाय उसमें संगीत हो और अत्यन्त रंगीन, विशद एवं मुखर चित्र उपस्थित हो सकें। हम जानते हैं कि ऐसा सब स्थानों पर नहीं हो सका है, विशेषकर वहाँ जहाँ कवि इन्द्रियों को ही अपना विषय बनाता है अथवा अमूर्त भावों को ही मूर्त्त रूप देता है या मूर्त्त वस्तुओं के सौन्दर्य की रहस्यात्मक अनुभूति प्रगट करता है—परन्तु यह प्रवृत्ति अन्य सभी स्थलों पर मिलती है।

छायावाद-काव्य का दूसरा पक्ष भी है—उसमें साधारण के ऊपर असाधारण की प्रतिष्ठा की गई है। फलतः उसने साधारण शब्दों के प्रयोग को त्यागकर असाधारण नये गढ़े शब्दों का प्रयोग किया। यदि यह प्रवृत्ति नहीं होती तो हम उसकी भाषा में मैथिलीशरण गुप्त या गोपालशरण सिंह की भाषा का विकास देखते जिनकी भाषा में द्विवेदी-युग की काव्य-भाषा का सर्वोत्तम विकास मिलेगा। परन्तु इस व्यक्तिगत रुचि के कारण नये शब्दों के उद्गम-स्थल कई हैं—

(१) अंग्रेज़ी शब्दों के अनुवाद (जैसे स्वर्ण स्वप्न, गीले गान। इस प्रकार के शब्दों का सबसे अधिक प्रयोग श्री सुमित्रानंदन पंत के काव्य में हुआ है)

(२) बँगला से लिये संस्कृत के शब्द (निराला और पंत दोनों के काव्य द्वारा इन शब्दों ने हिन्दी जगत में प्रवेश किया)

(३) लक्षणा के प्रयोग

(४) अंग्रेज़ी और बँगला के शब्दों के जोड़ पर गढ़े नये शब्द और समास।

(५) संस्कृत काव्यों और महाकाव्यों से प्राप्त नये शब्द।

(६) नये अर्थ में प्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग। इस प्रकार छायावाद-काव्य में एक विशिष्ट शैली ही नहीं, एक विशिष्ट शब्दकोष ही खड़ा हो गया। यह शब्दकोष छायावाद की लांछना का विशेष

कारण सिद्ध हुआ क्योंकि बिना संदर्भ के इन शब्दों को समझना कठिन था। ये हमारी काव्य-परम्परा में प्रयोग पाये हुए शब्दों की आत्मा से बड़ी दूर जा पड़ते हैं।

वास्तव में २०वीं शताब्दी की मुख्य काव्यधारा को रोमांटिक ही कहना पड़ेगा यद्यपि दशाब्द तक छायावाद का जन्म एवं उत्थान नहीं हो पाया था और प्राचीन ब्रजभाषा अथवा उससे प्रभावित खड़ी बोली के कवित्तों-सवैयों में कविता खूब भी चल रही थी। पहले दो दशाब्द में रीतिकाल की कविता के विरोध ने ही नवीन प्रवृत्ति का रूप ग्रहण किया। इसके कारण काव्य में कई नवीनताओं का प्रवेश हुआ : (१) शृंगार से विमुखता, (२) इतिवृत्तात्मक काव्य, (३) पौराणिक विषयों की ओर प्रवृत्ति, (४) नए रूप से कथाकाव्य का जन्म, (५) प्रकृति, पेड़ पौधों आदि पर दृष्टि—यद्यपि प्रकृति के प्रति आग्रह रामचंद्र शुक्ल जैसे कवियों में ही मिल सकेगा। (६) नई शब्दावली का प्रयोग जिसमें माधुर्य गुण, यमक अलंकार आदि की योजना नहीं थी। इस प्रकार कवियों की दृष्टि भाषा की स्वाभाविकता की ओर थी। इस तरह यद्यपि पहले २० वर्षों का काव्य रूढ़ि के विरोध के नाते रोमांटिक कहा जायगा परन्तु ठीक उस प्रकार का काव्य छायावाद के रूप में ही हमारे सामने आया। ब्रजभाषा काव्य में केवल कवित्त, सवैयों और दोहों का प्रयोग होता है। खड़ी बोली का जो कवि-वर्ग परम्परा से अधिक प्रभावित था, उसने कवित्तों और सवैयों में रचना की परंतु दूसरे वर्ग ने संस्कृत छन्दों और फ़ारसी बहों के अधिक विस्तृत प्रयोग किये। कहीं कहीं बंगला के पयार और अंग्रेजी की सॉनेट आदि का प्रयोग भी हुआ। जहाँ सारे रीति-साहित्य में मुख्यतः काव्य ही भरा पड़ा था, वहाँ कथाकाव्य, गीत, भजन, महाकाव्य और खंडकाव्य भी उपस्थित हुए, यद्यपि पहले दशाब्द में उच्चश्रेणी का काव्य उत्पन्न नहीं हुआ। कारण यह था कि कवियों की दृष्टि भाषा-परिष्कार पर लगी थी और नये विषयों पर लिखते हुए उन्हें प्राचीन काव्य से किसी प्रकार सहारा नहीं मिलता

था। जहाँ प्राचीन कविता में रस और अलंकार ही सब कुछ थे—वहाँ अब भावना पर अधिक बल दिया जाता था। यही नहीं, रस दृष्टि भी परिष्कृत हो चली। वीररस का अर्थ केवल कर्णकटु शब्दों का श्रुत्यानुप्रास नहीं रह गया। इसी दृष्टिकोण के कारण वीभत्स और भयानक रसों पर अधिक नहीं लिखा जा सका। शृङ्गार तो प्रतिक्रिया के कारण उपेक्षित ही रहा। हाँ, राम-कृष्ण को लेकर एवं फुटकर विनयपदों में शांत रस की प्रतिष्ठा रही। इस काल में वीर, रौद्र, करुण ही मुख्य रस रहे, यद्यपि उनके प्रति दृष्टिकोण एकदम नवीन था। पहले प्रकृति उद्दीपन के लिए थी और षट्ऋतुवर्णन प्रत्येक कवि का ध्येय समझा जाता था, परन्तु अब शृङ्गार से प्रकृति-वर्णन अलग हो गया। कालांतर में ऋतुओं के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक विषयों पर भी कविताएं लिखी जाने लगीं। इनमें वर्णन की इतिवृत्तात्मकता है, रसपुष्टि कम हुई है, परन्तु बदलते हुए दृष्टिकोण के कारण एवं संक्रांतिकाल की कविता होने के कारण वह प्रत्येक प्रकार से अभिनंदनीय है।

धीरे-धीरे नवीन प्रभाव पड़े। करुणा की प्रवृत्ति को विस्तार मिला। १९१४ ई० के आसपास मुकुटधर पांडेय, राय कृष्णदास, प्रसाद आदि द्वारा 'गीतांजलि' से प्रभावित होकर एक नए प्रकार की रचना हिंदी में आई जो भावना और शैली की दृष्टि के नवीन थी। इसी के प्रभाव से छायावाद काव्य की नींव दृढ़ हुई। छायावाद की विशद विवेचना हम पीछे कर चुके हैं। यहाँ हम संक्षेप में उसकी प्रवृत्तियों को और उस प्रभाव को भी सूचीबद्ध करेंगे जिसके कारण ये प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं—

(१) सर्वचेतना की भावना—करुणा की प्रवृत्ति का विकास और उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ी काव्य का प्रभाव।

(२) परमसत्ता के प्रति आकुलता भाव—"रहस्यवाद"। गीतांजलि, कबीर आदि का प्रभाव।

(३) प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण—श्रीधर पाठक के समय

से आई हुई नवीन प्रवृत्तियों का विकास—विशेषकर सर्वचेतनता की भावना और उन्नीसवीं शताब्दी के आंग्ल काव्य के भीतर से।

(४) नारी के प्रति दृष्टिकोण—सामाजिक एवं व्यक्तिगत संस्कारों एवम् परिस्थितियों का प्रभाव।

(५) निराशावाद—आर्थिक असंतोष का प्रभाव जिसने रहस्य-वाद के साथ मिलकर आध्यात्मिक असंतोष का अस्पष्ट रूप ग्रहण किया था।

(६) कलात्मकता—व्यक्तिगत प्रयास।

इन सब प्रवृत्तियों में एक विशेष प्रवृत्ति थी—लेखकों में व्यक्तित्व एवम् अहमन्यता का विकास। इसी प्रवृत्ति के कारण कविता के विषय का साधारणीकरण संभव हो सका।

इन प्रवृत्तियों के कारण नायक-नायिकाओं का साधारणीकरण हो गया। दो प्रकार के नायक हमारे काव्य के विषय पहले से ही थे—धीर वीर नायक और धीर ललित नायक। ये क्रमशः वीर काव्य और शृंगार काव्य के नायक थे। कालांतर में 'रासो' ग्रंथों में वीर नायक उदात्त चरित्र लोकनायक न रहकर महाराज या सामंत होने लगे और शृंगार काव्य के नायक राधा-कृष्ण या राजा-महाराजा। रीति-काव्य में राधा-कृष्ण ही शृङ्गार के विषय रहे परन्तु धीरे-धीरे उनका संदर्भ छूट गया, इससे लौकिक नायक-नायिकाओं की प्रतिष्ठा हुई। प्रत्येक नर-नारी, चाहे कितना ही क्षुद्र हो, नायक-नायिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। आधुनिक युग में नायक नायिकाओं की मान्यता और साधारण तल पर उतर आई प्रत्येक जातीय वीर और राष्ट्रीय वीर नायक था। सत्याग्रह आन्दोलनों ने सत्याग्रही के रूप में एक नया वीरादर्श दिया। उधर शृंगार के कल्पित नायक-नायिकाओं के स्थान पर व्यक्तिगत रूप से लोक से अभिन्न प्रियतम-प्रियतमाओं की सृष्टि हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान काव्य असाधारण से साधारण और अलौकिक से लौकिक की ओर निरंतर बढ़ती हुई प्रगति का अंतिम सोपान है ।

परन्तु यह नहीं समझना होगा कि छायावाद की इस नवीन धारा के साथ अन्य धाराओं का लोप हो गया था । सभी काव्य-धाराएँ उस समय चल रही थीं । इन धाराओं के तीन रूप थे—ब्रजभाषा काव्य की कवित्त-सवैयों की शृंगार-प्रधान धारा, खड़ी बोली काव्य की कवित्त-सवैयों की शैली जिसमें एक बड़ा वर्ग अब कविता करने लगा था एवं जिसका आदर्श प्राचीन रूढ़ि-प्राप्त विषयों को अंगीकार करके बढ़ना था, द्विवेदी-युग की खड़ीबोली की नई धारा जो अब प्राचीन होकर समय से पीछे पड़ गई थी । पहली धारा के प्रतिनिधि रमाशंकर शुक्ल रसाल, सरस आदि हैं, दूसरी धारा के प्रतिनिधि अनूप शर्मा, जगदंबाप्रसाद हितैषी, गोपालशरण सिंह और सनेही हैं । इनमें से कुछ द्विवेदी युग का भी प्रतिनिधित्व कर चुके हैं । तीसरी धारा के पोषकों की संख्या सर्वाधिक है । ठाकुर गोपालशरण सिंह, हरिऔध, श्री श्यामनारायण पांडेय, पुरोहित प्रतापनारायण, मैथिलीशरण गुप्त आदि कितने ही कवि भाव-धारा की दृष्टि से द्विवेदी युग से आगे नहीं बढ़ पाये हैं । वस्तुतः जनता में यही तीन वर्ग के कवि माने जाते थे—छायावाद-काव्य को जन-साधारण बराबर उपहास का पात्र बनाये थे । इसका कारण यह था कि इस काव्य में चतुर्दिक क्रांति हुई । काव्य-भाषा तो खड़ी ही रही, परन्तु वह द्विवेदी-युग के लोकप्रिय कवियों की भाषा से इतनी दूर थी कि वह हठात् विद्रोह उत्पन्न करती थी । भाषा, भाव, छंद, व्यंजना, शैली—काव्य के समस्त उपकरणों में एक ही साथ आपाद-मस्तक परिवर्तन हो गया । जनता इस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थी । वह द्विवेदी युग के कवियों की जनता थी । इसी से छायावाद-युग का सर्वप्रिय कवि कोई छायावादी नहीं है । वह लोकप्रिय कवि

द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि की श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं। छाया-वाद के अतिरिक्त ये जो तीन काव्य-धाराएँ हिंदी काव्यक्षेत्र में चल रही थीं, उनके विषय स्पष्ट थे। जनता उनकी भाषा, शैली, व्यंजना—सभी को भली भाँति समझती थी। ब्रजभाषा काव्य तो खड़ी बोली का प्रचार और अध्ययन-अध्यापन के कारण जनता से दूर पड़ा जा रहा था, परन्तु उसकी विशिष्ट काव्य-शैली और उसके विषय से लोग इतने अधिक परिचित थे कि कवि-सम्मेलनों में, जिनमें बहुधा प्रधान छायावादी कवियों को छोड़कर शेष की खिल्ली उड़ाने की चाल बँधी थी, उसी की जीत होती थी। १९२५ तक परिस्थिति लगभग यही रही परंतु इसके उपरांत छायावादी कवियों ने अपनी संगीतज्ञता के कारण जनता को आश्वस्त कर लिया यद्यपि समझ में न आने की शिकायत अब भी बनी रही। १९३८ तक आते-आते कवि-सम्मेलनों में परिस्थिति विपरीत हो गई—कम से कम जहाँ तक हिन्दी के प्रधान केन्द्रों का संबंध था। कवियों की निराशापूर्ण अर्द्ध-आध्यात्मिक कविताओं को अपने ही ढंग पर समझ कर कवि-सम्मेलनों की जनता उनकी माँग करने लगी। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि जनता अध्यात्म-प्रिय हो गई थी या छायावादियों की कविता समझ लेती थी। बात इतनी ही थी कि अधिक परिचय के कारण जनता का विद्रोह कुंठित हो गया था। इस नये काव्य के प्रति वह और कुछ नहीं तो जिज्ञासा की दृष्टि से ही देखने के लिए वह तैयार थी। उसके अस्पष्ट आध्यात्मिक निराशावाद और काव्यक्रन्दन में उसे अपनी असफलताओं और निराशाओं के चित्र दिखलाई पड़ते थे।

छायावाद-काव्य मुक्तक-काव्य था। उसमें खंडकाव्य जैसी चीज़ नाममात्र को ही थी। पथिक, स्वप्न, ग्रंथि, निशीथ, राम की शक्ति-उपासना, कामायनी—छायावाद-काव्य केवल इन्हीं कथा-काव्यों को हमारे सामने उपस्थित कर सका है। उसमें व्यक्तित्व की प्रधानता थी।

कवि संसार को अपनी ही दृष्टि से देखता था, अपने को ही केन्द्र बना कर देखता था। फल यह था कि उसे उन कथाओं से कोई मतलब नहीं था जो स्वयं उसके भावक्षेत्र में नहीं आई थीं। उसकी दृष्टि बहिर्मुखी कम थी, अंतर्मुखी अधिक, इसीसे वह खंडकाव्य और महाकाव्य-प्रभृति चीज़ें नहीं लिख सका। जहाँ उसने ऐसा किया भी (उदाहरण के लिए कामायनी लीजिये), वहाँ अस्पष्ट भावधारा असंतुलन और अव्यक्त व्यंजक भाषा के कारण एवं गीतात्मकता की प्रधानता से वह उच्चश्रेणी का कथा-काव्य नहीं बन सका। कामायनी में पात्रों और कथा के भीतर जो ज्ञान, कर्म और श्रद्धा के रूपकों को लेकर अन्तर्जगत का चित्र उपस्थित किया गया है, वह उसे कथा-काव्य की श्रेणी से नीचे गिराता है। व्यक्तिमुखी काव्य व्यक्ति पर काव्य नहीं बन सकता था। परन्तु 'द्विवेदी-युग में प्रवर्तित खड़ीबोली की काव्य-धारा के कवियों ने छायावादी कवियों के स्फुट गीतों के समकक्ष खंड-काव्यों और महाकाव्यों का ढेर लगा दिया। मैथिलीशरण गुप्त के कितने ही महाकाव्य और खंडकाव्य कालक्रम की दृष्टि से छायावाद के साथ ही लिखे गये हैं; सियारामशरण गुप्त के 'मौर्य विजय', अनूप शर्मा के 'कुणाल' और 'सिद्धार्थ', श्यामनारायण पांडेय के 'रासो के दो वीर' और हल्दीघाटी', पुरोहित प्रतापनारायण का 'नल नरेश' आदि कितने ही काव्य छायावाद के बवंडर के भीतर ही हमारे सामने आये और जनता ने उनका स्वागत किया। जहाँ द्विवेदी-काल का कवि अपने व्यक्तित्व को कथा-संपुट में रखकर उसे जनता को अपने परिचित स्वरों में उपस्थित करता था, वहाँ छायावादी कवि की प्रतिभा अहं-प्रधान होने के कारण कथा बिखर जाती है। छायावाद-काव्य के पहले खेवे के प्रधान कवि हैं जयशंकर प्रसाद (१८८९—१९३७), सुमित्रानंदन पंत (१९०१—), सूर्यकान्त त्रिपाठी (१८९६—), मोहन-लाल वियोगी (१९०७)। दूसरे खेवे के महत्वपूर्ण कवि हैं महादेवी वर्मा (१९०७—), भगवतीचरण वर्मा (१९०३—), रामकुमार वर्मा

(१९०५—), जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द (१९०७—) सियारामशरण गुप्त (१८९४—), जगन्नाथप्रसाद द्विज, हरिकृष्ण प्रेमी, गुरु भक्तसिंह 'भक्त', बच्चन (हरिवंशराय), इलाचंद जोशी और शांतिप्रिय द्विवेदी। इन सब कवियों में छायावादी काव्य की उन विशेषताओं से किसी के दर्शन अवश्य होते हैं जिनका वर्णन हम पहले कर आये हैं।

इन कवियों में जयशंकर प्रसाद संक्रातिभूमि पर खड़े हैं। इनकी प्रारम्भिक कविताएँ व्रजभाषा में हैं, परम्परागत कवित्त छंदों का ही आधिक्य है, परन्तु भाव और अभिव्यंजना-शैली दोनों की दृष्टि से वह छायावाद-काव्य का पूर्व रूप ही प्रस्तुत करती हैं। 'आँसू' पर लिखा हुआ यह छंद उनकी इसी नाम की क्रांतिकारी कविता की पीठिका कहा जा सकता है—

"आवे इठलात जल-प्रात केस विन्दु,
कैधौं खुली सीपी माहिं मुक्ता दरस है।
कढ़ी कंज-कोष ते कलोलिन के सीकर ते,
प्रात: हिम-कन-से न सीतल परस है॥
देखे दुख ऊनों उमगत अति आनन्द सौं,
जान्यों नहिं जाय यहि कौन सौं हरस है।
ताते-ताते कढ़ि रूखे मन को हरित करैं,
ए रे मेरे आँसू ये पियूष ते सरस हैं।"

ये प्रारम्भिक कविताएँ 'चित्राधार' में संग्रहीत हैं। उनके अन्य संग्रह 'काननकुसुम', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय' और 'प्रेमपथिक' उन्हें जहाँ विषय और भाषाशैली की दृष्टि से द्विवेदी युग में रखते हैं, वहाँ इन्हीं काव्यों में कहीं-कहीं नवीन काव्यभूमि के भी दर्शन हो जाते हैं। १९१८ में प्रकाशित 'झरना' की कविताओं में वह स्पष्ट रूप से नवीन काव्य के प्रवर्तक के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। राय कृष्णदास ने प्रसाद के संस्मरण में लिखे हुए अपने एक

लेख में 'झरना' की कविताओं का इतिहास दिया है जिससे पता चलता है कि 'साधना' (राय कृष्णदास का गद्यगीत-संग्रह) और 'झरना' की कविताओं का मूल स्रोत एवं मूल रूप एक ही है। इससे स्पष्ट है कि उन पर रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि के गद्यानुवाद का स्पष्ट प्रभाव है। पर यह प्रभाव इस संग्रह की कुछ कविताओं को छोड़ कर आगे नहीं बढ़ सका है। १६२७ में 'झरना' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें कितनी ही नई कविताएँ उपस्थित हैं। ये प्रसाद की अपनी विशेष काव्यानुभूति और अभिव्यंजना-शैली को प्रकाशित करती हैं। 'विषाद', 'वालू की वेला' और 'किरण' शीर्षक कविताएँ रहस्यवाद की व्यंजना समस्त काव्य में लाक्षणिक आरोप और मादकतापूर्ण चित्रमयता को हमारे सामने उपस्थित करती हैं। परन्तु जिस कविता ने प्रसाद को अग्रगण्य छायावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया वह १९२६ में प्रकाशित 'आँसू' है। उनका दूसरा कविता संग्रह 'लहर' (१६३६) है। प्रसाद की कवि-प्रतिभा ने छायावाद काव्य को कामायनी (१६३७) की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ भेंट दी जिसमें कवि एक पौराणिक कथा को लेकर उस पर रूपक का आरोप करता हुआ जीवन, मृत्यु, ज्ञान, कर्म, श्रद्धा, प्रेम और विलास के अन्यतम रहस्य खोलता दिखाई देता है।

'प्रसाद' सौन्दर्य, प्रेम और करुणा के भीतर से जीवन और प्रकृति को देखते हैं और उन्हें अंतर्जगत में उतारने की चेष्टा करते हैं। वह आध्यात्मिक और सौन्दर्यनिष्ठ असंतोष को प्रगट करते हुए भी काव्य के चिरमंगल का संदेश देते हैं। 'आँसू' के दूसरे संस्करण का अंतिम भाग और 'कामायनी' के अंतिम प्रकरण उन्हें इसी रूप में प्रगट करते हैं। कामायनी में कर्म, श्रद्धा, बुद्धि इन तीनों के सामंजस्यपूर्ण सम्मिलन को ही चिर शांति का विधायक माना है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया की धाराएँ जब अलग-अलग बहती हैं तो व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में असफलता, संघर्ष और उच्छृङ्खलता के

सिवा और कुछ नहीं रहता। श्रद्धा के द्वारा इन तीनों विभिन्न शक्ति-केन्द्रों में एकीकरण स्थापित होता है। दुःख का कारण है मन के संतुलन का अभाव। सुख-दुख को मन का खेल समझ कर समभाव बनाये रखने और इच्छा ज्ञान और कर्म की धाराओं को एकमुखी बनाने में ही मनुष्यजाति का कल्याण है। प्रसाद जगत के दुःख-सुख प्रधान व्यक्तित्व के ऊपर आत्मा के मांगलिक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करते हैं।

पंत में दार्शनिकता का इतना आग्रह नहीं है जितना प्रसाद और निराला में। वे प्राकृत कवि हैं। उन्होंने प्रकृति-सौन्दर्य और मानव-जीवन को कुतूहल, उल्लास और रहस्य की दृष्टि से देखा है। वे सच्चे अर्थों में रोमांटिक हैं। उच्छ्वास, ग्रन्थि, पल्लव, गुञ्जन—ये उनके क्रमिक विकास का इतिहास उपस्थित करते हैं। अपने युग में उन्हीं का अनुकरण सबसे अधिक हुआ है और छायावाद काव्य का प्रतिनिधि कवि उन्हें ही कहा जा सकता है। 'उच्छ्वास' और 'ग्रंथि' गीतात्मक कथा-काव्य हैं। यद्यपि कथा शैली-विशेष के कारण खुली नहीं है, परन्तु उसमें हमें पंत के प्रकृत रूप के दर्शन पहली बार होते हैं। 'वीणा' में उनका रूप कुछ अधिक स्पष्ट हुआ है, परन्तु 'पल्लव' में ही वे पहली बार काव्य की मान्यताओं को तर्क-वितर्क की भूमि पर उतारते हुए और निश्चित सिद्धांतों को लेकर बढ़ते हुए हमारे सामने आते हैं। 'पल्लव' (१९२६) में सुकुमार शब्द-चयन, उत्कृष्ट कल्पना, सौन्दर्य और प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति, प्रकृति के प्रति कुतूहल और रहस्यात्मक एवं तीव्र आकर्षण, अतीन्द्रिय प्रेम का आग्रह इतने स्पष्ट रूप से जनता के सामने आया कि वह कवि को भली भाँति न समझ सकने पर भी उसके प्रति जिज्ञासु हो उठी। जैसा हम पहले कह आये हैं 'पंत' की प्रारंभिक कविताओं पर 'गीतांजलि' का प्रभाव है परंतु उनकी बाद की कविताएँ उससे बिल्कुल मुक्त हैं। 'पल्लव' की कविताओं पर यह प्रभाव लगभग

नहीं है। इन कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व महान है क्योंकि इन्हीं के द्वारा काव्य की प्रचलित परिपाटी के विद्रोह और नवीन काव्य की रूपरेखा प्रकाशित हुई है। इस विद्रोह के कई रूप थे—

(१) रीतिकालीन शृङ्गार के प्रति विद्रोह :

"शृङ्गार-प्रिय कवियों के लिए शेष रह ही क्या गया! उनकी अपरिमेय कल्पनाशक्ति कामना के हाथों द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलाकर 'नायिका' के अंग-प्रत्यंग में लिपट गई। बाल्यकाल से वृद्धावस्था-पर्यंत—जब तक कोई 'चन्द्रवदनि मृगलोचनी' तरस खाकर उनसे बाबा न कह दे—उनकी रस-लोलुप सूक्ष्मतम दृष्टि केवल नख से लेकर शिख तक, दक्षिण ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक यात्रा कर सकी! ऐसी विश्वव्यापी अनुभूति! इसी विराट रूप का दर्शन कर ये पुष्प धनुर्धर कवि रति के महाभारत में विजयी हुए। समस्त देश की वासना के वीभत्स समुद्र को मथकर इन्होंने कामदेव को नवजन्म दान दिया, वह अब सहज ही भस्म हो सकता है!"

(२) रीतिकाव्य के बाह्य रूप के प्रति विद्रोह :

"भाव और भाषा का ऐसा शुक-प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एकस्वर रिमझिम, उपमा, तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रांत उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है?'

(३) खड़ी बोली को नए प्रकार से नए संस्कारों में गढने का प्रयोग

(क) शब्दों के रागात्मक रूप और नादात्मक सौन्दर्य को खोजने की चेष्टा :

"भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्रायः संगीतभेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न स्वरूपों को प्रगट करते हैं। जैसे भ्रू से क्रोध

की वक्रता, भृकुटि से कटाक्ष की चंचलता, भौहों से स्वाभाविक प्रसन्नता ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है"—आदि।

(ख) चित्रमय भाषा के लिये आग्रह :

"कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों; सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों, जिनका भाव-संगीत विद्युत्धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके..."

(ग) भाव और भाषा के सामंजस्य का प्रयत्न :

"भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्रण है। जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत हो गये हों, निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हों, छुड़ाये न जा सकते हों...."

(घ) अलङ्कारों का विशेष प्रयोग :

"अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के लिए विशेष द्वार हैं।...कविता में भी विशेष अलंकारों, लक्षणा-व्यंजना आदि आदि विशेष शब्द-शक्तियों तथा विशेष छंदों के सम्मिश्रण और सामंजस्य विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है—"

(४) छन्द के क्षेत्र में नए प्रयोग

(क) संस्कृत के वार्णिक छन्दों की उपेक्षा :

"संस्कृत का संगीत जिस प्रकार हिल्लोलाकार मालोपमा में प्रवाहित होता है, उस तरह हिन्दी का नहीं। हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छंद ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है। वर्ण वृत्तों की नहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य...खो बैठती..."

(ख) सवैया और कवित्त की उपेक्षा :

"सवैया तथा कवित्त छंद—मुझे हिन्दी की कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं जानने पड़ते।"

(ग) तुक के प्रति मोह :

"तुक राग का हृदय है।"

(पल्लव) में पंत का यह विरोध अत्यंत सफल कविता के रूप में प्रगट हुआ है। यहाँ हमें छायावाद का प्रकृत रूप मिलता है। इस संग्रह की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता सचमुच बेजोड़ है, परन्तु इसका कारण यह है कि कवि की दृष्टि विचित्रता पर नहीं है और वह प्राचीन परम्परा को आत्मसात करके चल रहा है। चित्र-भाषा और नाद-सौन्दर्य में तो सारे छायावाद-साहित्य में इस जोड़ की रचना नहीं मिलेगी—

अहे वासुकि सहस्र फन !

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर
शतशत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर
अखिल विश्व ही विवर, वक्रकुण्डल दिङ्मण्डल

'गुंजन' की कविताओं में कवि विषय, भाषा और प्रेम-व्यंजना की इतनी ऊँची भूमि पर उठ गया है, 'पल्लव' के विरोधी स्वर भी दब गये हैं, परन्तु यहाँ हमें कवि जीवन-मरण जैसे चिरन्तन सत्यों के उद्घाटन में लगा दिखलाई देता है। 'पल्लव' में वह वाह्य जगत पर मुग्ध था, उसके सौन्दर्य में रहस्य और कुतूहल की खोज करता था, 'गुंजन' में वह अंतः-मुख हो गया है; जहाँ उसने वाह्य जगत को देखा भी है वहाँ आत्मचिंतन

के भीतर से। इसी से 'गुंजन' में दर्शन और कविता का सुन्दर सामंजस्य स्थापित हो सका है। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में— 'गुञ्जन' में इस जीवन क्षेत्र के भीतर कवि का अधिक प्रवेश ही नहीं, उसकी काव्य-शैली को अधिक संयत और व्यवस्थित पाते हैं। प्रतिक्रिया की झोंक में अभिव्यञ्जना के लाक्षणिक वैचित्र्य आदि के अतिशय प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति हम 'पल्लव' में पाते हैं, वह 'गुंजन' में नहीं है। उसमें काव्यशैली अधिक संयत और गम्भीर हो गई है।" पंत की परवर्ती कविताओं में अन्य अनेक प्रवृत्तियों का मेल हुआ है, परन्तु उनमें भी वह अपने पुरातन स्वर नहीं भूल सके हैं। जहाँ कवि प्रकृति और नारी-सौन्दर्य से दो-चार हो जाता है, वहाँ उसकी वीणा के पुराने तार ही झंकृत हो उठते हैं। परन्तु इन वाद की कविताओं में वह कल्पना के शीशमहल से निकल कर जीवन के कर्मपथ पर बराबर बढ़ता चला गया है। उसने यह प्रयत्न किया है कि कर्म के भीतर से कर्मठ जीवन के स्वरों के उतार-चढ़ाव चित्रित कर सके, यद्यपि अपनी ईश्वरप्रदत्त कोमल प्रवृत्ति के कारण वह तब कहीं सफल नहीं हो पाया है।

सूर्यकांत त्रिपाठी का काव्यकाल १९१५ से आरम्भ होता है। प्रारम्भिक कविताएँ 'मतवाला' में प्रकाशित होकर अनामिका नाम से संग्रहीत हुईं। दूसरा संग्रह 'परिमल' था जिसमें तुकांत, अतुकांत और मुक्तछंद सभी प्रकार की रचनाएँ थीं। इस संग्रह ने 'निराला' को क्रांतिकारी कवि के रूप में उपस्थित किया। 'निराला' की कविता पर वेदांत की गहरी छाप है। जहाँ दार्शनिकता के साथ-साथ कठिन और अव्यवहृत भाषा का प्रयोग हो गया है, वहाँ वह केशवदास की तरह कठिन काव्य के प्रेत बन गये हैं। परन्तु ऐसी कविताएं भी कम नहीं हैं जो भाव, भाषा और अभिव्यंजना की दृष्टि से नूतन होती हुई भी कठिन नहीं है। यह कोमल-कठोर, सरल-दुरूह का विचित्र मेल 'निराला' की प्रतिभा की विशेषता है। काव्य के भीतर से

स्वतन्त्रता और शक्तिमत्ता का इतना सुन्दर सामंजस्य अन्य प्रांतीय काव्य-साहित्य में भी नहीं मिलेगा। पंत और निराला दोनों की कविताओं में प्राचीन काव्य-रूढ़ियों के प्रति विद्रोह दिखाई पड़ता है। कुछ चमत्कार की भावना भी है। इसीलिए उनकी प्रारम्भिक कविताओं को—जिनमें ये प्रवृत्तियाँ अत्यधिक वेग के साथ उपस्थित हैं—समझना कठिन है। वैलक्षण्य की प्रवृत्ति पंत में 'पल्लव' के बाद अधिक नहीं मिलती। वे काव्य की सामान्य भूमि पर उतर आये। 'गुञ्जन' की कविताएँ उदाहरण-स्वरूप उपस्थित की जा सकती हैं, परन्तु निराला में यह प्रवृत्ति अब तक बनी है। इसका कारण वह विद्रोह है जिसका सामना उन्हें पग-पग पर करना पड़ा, जिसने उन्हें प्रकृत नहीं बनने दिया।

'निर्माल्य', 'एकतारा' और 'कल्पना' आदि काव्य-रचनाओं के कवि मोहनलाल महतो 'वियोगी' रवीन्द्र के प्रभाव को हिन्दी में स्थापित करने वाले प्रमुख कवियों में से हैं। 'निर्माल्य' के परिचय में लेखक ने कहा है—"यह 'गीतांजलि' के टक्कर का है, ऐसा कहने का हमें कोई अधिकार नहीं।" परन्तु इस उक्ति से 'गीतांजलि' का प्रभाव ही स्पष्ट होता है जो इस प्रकार की कविताओं में मुखर हो उठा है—

> मैं क्या लिखता हूँ, इसका नहीं मुझे किंचित भी ज्ञान;
> अनमिल अक्षर मिलकर बन जाते हैं स्वयं पद्य या गान;
> मैं तो हूँ नीरव वीणा, मुझ पर है वादक का अधिकार
> मुझे बजाता है वह जब आ अपनी इच्छा के अनुसार—
> होती हैं तब व्यक्त राग-रागनियाँ मन हरने वाली;
> है उसकी ही दया अचेतन को चेतन करने वाली

छायावाद—काव्य का एक पक्ष—'कविता कविता के लिए'—वाद का

आग्रह भी था। वियोगी कहते हैं—"कविता कविता के ही लिए लिखी जाती है। अत्युक्तियों और अलंकारों की सहायता से अपने मन की बातों को रंजित करना आवश्यक है।" इस प्रकार नवीन काव्य में कला की प्रधानता थी। इन प्रवृत्तियों में महतो ने भी महत्वपूर्ण योग दिया है।

इन चार प्रमुख कवियों के अतिरिक्त राय कृष्णदास, माखनलाल चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि कितने ही कवि ऐसे हैं जिन्होंने काव्य के रूप गढ़ने में सहायता दी है। राय कृष्णदास (१८६२—) के 'साधना', 'छायावाद', 'संलाप' 'प्रवाल' आदि गद्यकाव्य नवीन काव्य-प्रवृत्तियों का ही प्रभाव है। 'साधना' का एक गद्यगीत इस प्रकार है—"मैं अपनी मणि-मंजूषा लेकर उनके यहाँ पहुँचा, पर उन्हें देखते ही उनके सौन्दर्य पर ऐसा मुग्ध हो गया कि अपनी मणियों के बदले उन्हें मोल लेना चाहा। अपनी अभिलाषा उन्हें सुनाई। उन्होंने सम्मति स्वीकार करके पूछा—किस मणि से मेरा बदला करोगी?' मैंने अपना सर्वोत्तम लाल दिखाया। उन्होंने गर्वपूर्वक कहा—'अजी, यह तो मेरे मूल्य का एक अंश भी नहीं।' मैंने दूसरी मणि उनके सामने रखी। फिर भी वही उत्तर। तब मैंने पूछा—'मूल्य पूरा कैसे होगा?' वह कहने लगे—'तुम अपने को दो, तब पूरा होगा।' इस गीत की केन्द्रीय भावना छायावाद के अदृष्ट सत्ता के प्रति लिखे गए गीतों की भाव-धारा से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अंतर्जगत्' में असीम और ससीम का संबंध निश्चित किया है—

आज बज उठी तेरे कर से वीणा मेरे मन की;
आशातीत अतिथि! लीला कैसी तेरी इस छन की?
जागृत तभी हुई अचानक, जो चिर दिन की सोई,
सुला सकेगा क्यों उसको फिर इस जगती में कोई?

जीवन सागर के उस तट पर अपने सुन्दर जग की,
सृष्टि अनोखी की है तूने, जहाँ न रेखा पग की?
नीचे सिंधु भर रहा आहें, हँसते नखत गगन में,
सबसे दूर जल रहा दीपक, तेरे भव्य भवन में,
तेरी धुँधली स्मृति के आगे झुकी विश्व की क्षमता;
भला असीम जगत यह तेरी कर सकता है समता!
सत्य कहीं होगी यदि निर्मम यह चिरपूजा मेरी;
तो देवत्व लाभ कर लेगी पावन प्रतिमा तेरी!

यह 'साधना' के उपर्युक्त गद्यगीत से भिन्न नहीं है, प्रकाशन-शैली में थोड़ा अंतर अवश्य है। इन सभी कवियों में भाषा शैली की वक्रता को अत्यंत महत्व दिया गया था। साधारण सी बात कहने के लिए कवि इतना आयोजन इकट्ठा करता हुआ दिखलाई पड़ता है कि केन्द्रीय भावधारा गौण चित्रों के पीछे छिप जाती है। माखनलाल चतुर्वेदी 'तरुण कलिका' से कहते हैं—

री सजनि, वनराजि की शृङ्गार
समय के वनमालियों की क़लम की वरदान,
डालियों, काटों भरी के ऐ मृदुल अहसान;
मुग्ध मारुत के हृदय के मुँदे तत्त्व अगाध;
चपल अलि की परम संचित गूँजने की साध;
बाग की बागी हवा की मानिनी खिलवाड़,
पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़,
खोल मत निज पँखड़ियों का द्वार
री सजनि, वनराजि की शृङ्गार
आ गया वह वायुवाही, मित्र का नव राग,
बुलबुलें गाने लगी हैं—जाग, प्यारी, जाग,
प्रेम-प्यासे गीत गढ़ तेरा सराहें त्याग,
रागियों के प्राण हैं, तेरा अतुल अनुराग,

पर न वनदेवी, न संपुट खोल तू मत जाग,
विश्व के बाजार में मत बेच मधुर पराग!
खुलो पंखड़ियों कि तू बेमोल,
हाट है तू यह, हृदय मत खोल

इसके केन्द्र में जो भाव है, वह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, पर उस पर रूपक का विशाल मंदिर खड़ा कर दिया गया है। इस प्रकार की कविताएँ एक दो नहीं सैकड़ों की संख्या में लिखी गई जिनमें कवि को या तो कुछ कहना ही नहीं होता था, या जो उसे कहना होता था, वह महत्वपूर्ण नहीं होता था। छायावाद के गौण कवियों में इस प्रकार की विशेषताएँ अपेक्षाकृत अधिक मिलेंगी। इनमें हम छायावाद को एक विशेष भाषाशैली के रूप में ही देखते हैं, विशेष दर्शन के रूप में नहीं। 'प्रसाद' का काव्य इसका उदाहरण है। सच तो यह है कि छायावाद-काव्य की शैलियों का सभी प्रकार की कविताओं में प्रयोग हुआ। राष्ट्र-प्रेम, समाज-सुधार, प्रकृति—सभी पर इस नये ढंग से लिखा गया कि जनता हठात् विद्रोही हो उठी, वह नये काव्य को खिलवाड़ समझने लगी। विभिन्न कवियों ने विभिन्न प्रवृत्तियों के वशीभूत हो छायावाद की एक-एक दो-दो विशेषताओं को लेकर एक विशाल काव्य-संग्रह खड़ा कर दिया जो किसी एक 'वाद' के भीतर नहीं आ सकता था।

'छायावाद' के इन कवियों ने जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, दुःख को प्रधानता दी थी। धीरे-धीरे उनका चिंतन आत्मप्रधान हो गया और निराशावाद की धारा का सूत्रपात हुआ। दुःख को साहित्य के मूल सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यही समय गांधीवाद के आविर्भाव का भी है। गांधीवाद महायुद्ध के बाद से आज तक के राजनैतिक क्षेत्र में प्रधानता पाता रहा है। वह दुःख, आत्मपीड़न और समझौते को स्वीकार करता है, विद्रोह और आमूल परिवर्तन को नहीं। हिन्दी काव्य के दुःखवाद और दुःख को साधना के रूप में स्वीकार

करने की भावना में मूलतः कोई अंतर नहीं। 'प्रसाद'-'पंत' की निराशा कवि की निराशा थी। बाद के कुछ कवियों ने इसे दार्शनिक भित्ति देने की चेष्टा की और वे सफल भी हुए। इस प्रकार अध्यात्मवाद और आध्यात्मिक निराशावाद का जन्म हुआ। सुश्री महादेवी वर्मा की कविताओं में इस धारा ने सर्वोच्च विकास प्राप्त किया। दुःख की काल्पनिक अनुभूति कविता-क्षेत्र की रूढ़ि-सी हो गई। अस्तु, कवियों में इसकी काफ़ी छीछालेदर भी हुई। जिन कवियों ने इन-भावधाराओं में योग दिया उनमें महादेवी वर्मा के बाद रामकुमार वर्मा, जनार्दन झा द्विज और भगवतीचरण वर्मा महत्त्वपूर्ण हैं। इन सब का साहित्य मुख्य-रूप से १९२५ के बाद आया। अतः यह सामयिक साहित्य के अंतर्गत आता है। छायावाद की विवेचना करते हुए और उसके ऐतिहासिक विकास की रेखा निर्धारित करते हुए हमने इनका उल्लेख किया है।

३

छायावाद : विहंगम दृष्टि

भारतेन्दु (१८५०-८५) के साथ हिन्दी कविता के विषयों और उनके प्रकाशन की शैली में क्रान्ति हो गई। इतिहास की दृष्टि से वर्तमान काल कुछ पहले, लगभग पलासी युद्ध से, आरम्भ हो जाता है, परन्तु हिन्दी कविता पर नवीन प्रभाव ग़दर के बाद से ही पड़ने आरम्भ हुए। इन्होंने ही कालान्तर में उसका रूप बदल दिया। अतः भारतेन्दु को ही वर्तमान हिन्दी कविता का "आदि कवि" होने का श्रेय मिलता है।

प्राचीन हिन्दी कविता के विषय धर्म और शृङ्गार थे, नवीन हिन्दी काव्य में धर्म को गौण स्थान मिला। प्राचीन कवि रस-पुष्टि पर अधिक बल देते थे, नवीन कवि भाव-प्रकाशन और भाव-पुष्टि को ध्यान में रखते थे। देश की नवीन परिस्थितियों ने स्वतंत्रता की भावना, देश-प्रेम समाज-सुधार की भावनाओं को जन्म दिया। कविता के लिए नये विषय मिले। उसका रूप ही नया हो गया।

भारतेन्दु के समय से वर्तमान हिन्दी काव्य की जो धारा बही है उसमें प्राचीन काव्य धारा की कई प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हैं—वैष्णव (रामकृष्ण) भक्ति, निर्गुण (सतंभावना), रीति शृंगार भाव। परन्तु साथ ही जिन नई प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है उन्होंने इन भावनाओं को शिथिल कर रखा है। इनमें सबसे प्रधान राष्ट्रीयता, देश-प्रेम अथवा स्वतंत्रता की भावना है। राष्ट्रीय वीरों का गुण-गान, राष्ट्र-पतन के लिए दुःख-प्रकाश समाज की अवनति के प्रति क्षोभ, कुरीतियों के परिहार के लिए अधीरता और तत्परता तथा हिन्दू

हितैषिता (जातीयता) ये भारतेन्दु-काल के काव्य के प्रमुख विषय हैं—

> कहाँ गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठर
> चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै थिर
> कहाँ क्षत्र सब मरे जरे सब गये कितैं गिर
> कहँ राज को तौन साज जेहि जनत है चिर
> कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो धूरहिं धूर दिखात जग
> जागो अब तो खल बल दलन रक्षहु अपनो आर्य मग
>
> (भारतेन्दु)

> स्त्रीगण को शिक्षा देवें कर पतिव्रता यश लेवें
> झूठी यह गुलाल की लाली धोवत ही मिटि जाय
> बाल ब्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुँह काय
> विधवा बिलपैं नित धेनु कटैं कोउ लागत गोहार नहीं
>
> (प्रतापनारायण मिश्र)

यह समय भारतवर्ष के लिए अत्यन्त संकट का समय था। देश ने हथियार डाल दिये थे। एक नई संस्कृति और सभ्यता से उसका संघर्ष चल रहा है। देश में अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त एक जन-समुदाय धीरे-धीरे खड़ा हो गया था। भारतीय धर्म-कर्म और संस्कृति-सभ्यता की बात को भूल कर यह नया शिक्षित वर्ग 'साहब' बना जा रहा था। ऐसे समय में भारतीयता के लुप्त हो जाने का डर था। हमारे कवियों ने जहाँ समाज को उदार बनने के लिये ललकारा—

> पित पित सुत करतल कमल ललित ललना लोग
> पढ़ैं गुनैं सीखैं सुनैं नासैं सब जग सोक
> बीर प्रसविनी बुध वधू होय दीनता खोय
> नारी नर अरधंग की साचहिं स्वामिनि होय
>
> (भारतेन्दु)

वहाँ हिन्दुओं की मानसिक दासता पर क्षोभ भी प्रकट किया—

अँगरेज़ी हम पढ़ी तउ अँगरेज न बनिहैं
पहिरि कोट पतलून चुरूट के गर्वन तनिहैं
भारत ही में जन्म लियो भारत ही रहिहैं
भारत ही के धर्म-कर्म पर विद्या गहिहैं

(अम्बिकादत्त व्यास)

सबै विदेसी वस्तु नर गति रति रीति लखात
भारतीयता कछु न अब भारत में दरसात
हिन्दुस्तानी नाम सुनि अब ये सकुचि लजात
भारतीय सब वस्तु ही सों ये हाय घिनात

(प्रेमघन)

यद्यपि कवि अँगरेज़ी शासन को अच्छा समझते थे, परन्तु उन्होंने अपने समय की राजनैतिक जागृति को भी पहचाना और ब्रिटिश शासन की बड़ाई करते हुए भी दयनीय दशा के करुण चित्र रखे—

अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हाहा री
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई

(भारतेन्दु)

कांग्रेस की स्थापना हो जाने से (१८८५) देश में आशा का संचार हुआ और कवियों ने नव जागरण का शंखनाद किया—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशाका
समझ अत अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका
उन्नति-पथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा दिखाई
खग वन्देमातरम् मधुर ध्वनि पड़ने लगी सुनाई
उठो आर्य सन्तान सम्भल मिल बस न विलम्ब लगाओ

(प्रेमघन)

एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कवियों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण था। आधुनिक काव्य में प्रकृति को जैसा स्थान मिला है, वैसा पहले कभी नहीं मिला था। पं० श्रीधर पाठक की "ऊजड़ ग्राम" "काश्मीर सुषमा" आदि कविताओं ने कवियों के लिए एक अभिनव क्षेत्र उपस्थित किया।

भारतेन्दु काल (१७००—१९००) से चलकर ये प्रवृत्तियाँ निरंतर विकसित, परिमार्जित एवं अनेक अन्य अन्तः प्रवृत्तियों से प्रभावित होती हुई अब तक चली आ रही है। पहले १०-१५ वर्ष तक तो कोई परिवर्तन दिखाई ही नहीं देता। पं० रामचरित उपाध्याय, हरिऔध, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० रूपनारायण पांडेय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति कवियों ने भारतीयता, हिन्दू जातीयता, राष्ट्रीयता, जैसे विषयों पर उसी तरह लिखा है जिस तरह भारतेन्दु काल के कवियों ने लिखा, अन्तर यह है कि स्वावलम्बन का भाव अधिक है, अंग्रेज़ी राज का गुण-गान कुछ कम हो गया है, काव्य में कला का अधिक प्रवेश हो पाया है। परन्तु इतिवृत्तात्मकता बनी है। प्रकृति की ओर कवियों की अभिरुचि अधिक संलग्न दिखाई पड़ती है। यद्यपि अधिकांश कवि प्राकृतिक वस्तुओं की तालिका बाँध कर ही रह जाते हैं, परन्तु पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे सहृदय कुछ कवि कृत्ति के अनेक रूपों से प्रभावित होकर उसमें रम जाते हैं और कवियों को प्रकृति के रूप-रंग देखने का एक नया ढंग सुझाते हैं। राम और कृष्ण-काव्य में मानवता का अधिक समावेश हो गया है।

बीसवीं दशाब्दि के बीतने पर इन प्रवृत्तियों के साथ कुछ नितांत नवीन प्रवृत्तियाँ भी हमारे सामने आती हैं। ये हैं—करुणा की प्रधानता, नैराश्य और नैराश्यमूलक उत्साह, रहस्यवाद, शृंगारिकता को आवरण में प्रकट करने की चेष्टा (प्रच्छन्न नारी-प्रेम), असंयत कल्पना, मानवीय सहानुभूति का विस्तार। इन प्रवृत्तियों के मूल में कई प्रकार की प्रेरणाएँ हैं। राजनैतिक परिस्थितियों, विशेषकर राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलता ने युवकों को हताश कर दिया था। जीविका की समस्या प्रबल थी। महायुद्ध के बाद संसार के आर्थिक संकलन में एक ऐसी उथल-पुथल हो गई जिसका प्रभाव सभी देशों पर पड़ा। हमारे देश में जहाँ राष्ट्रीय और सामाजिक अनेक समस्याएँ उठ रही थीं, वहाँ अर्थ की विषय समस्याएँ भी उठ खड़ी हुईं। इसका प्रभाव काव्य पर भी पड़ा। पहले कुछ कवियों ने चारों तरफ की स्थिति से एकदम आँख मोड़ ली और अपनी कल्पनाभूति द्वारा बनाए हुए सौन्दर्य-प्रेम और करुणा के लोक में जैसे खो गये। छाया, लहरें, स्वप्न, आँसू, नक्षत्र जैसे विषयों पर बहुत कुछ लिखा गया परन्तु मनुष्य, उसके दुःख सुख, आशाकांक्षा की गई। कवि सौन्दर्य के रूपों में खो गये थे। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ करुणा की अनुभूति भी हुई क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि वे उस सौन्दर्य का उपयोग नहीं कर सकते। उन्हें सामाजिक और आर्थिक बंधनों का सामना करना पड़ता था परन्तु उन्होंने इन क्षेत्रों में अपना क्षोभ एवं विद्रोह न प्रगट कर आध्यात्मिकता का आवरण देकर हमारे सामने प्रगट किया। प्रसाद के आँसू, पंत का उच्छ्वास, रामकुमार और महादेवी के करुणा के गीतों के पीछे यही मनःस्थिति काम कर रही है। नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण विचित्र था। आचार्य शुक्लजी ने छायावाद को "कायावृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" कहा है। कवि अपनी कविता में लता-विटप अथवा शैफाली और पवन का संयोग-विलास तो अत्यन्त सूक्ष्मता से विस्तारपूर्वक लिखता था, परन्तु स्त्री के प्रति मोह और आसक्ति

होते हुए भी उदासीन था, उसे एकदम अतीन्द्रिय बना रहा था। आत्मा-परमात्मा के मिलन या आध्यात्मिक वियोग की भावना को अनेक कविताओं और गीतों में बद्ध किया गया, परन्तु उनके पीछे कवि की कल्पना है, परम्परा का पालन है, कवि की अपनी साधना और अनुभूति नहीं।

१९०९ ई० के लगभग 'प्रसाद' की 'काननकुसुम' और 'इंदु' (मासिक पत्र, काशी १८०९—१३) की खड़ी बोली कविता से 'जो एक नई धारा चली उसे छायावाद के 'नाम से पुकारा गया। १९२५ तक 'पल्लव' और 'आँसू' के प्रकाशन के साथ यह धारा स्थायित्व प्राप्त कर चुकी थी। साधारण जनता में यह नाम सामयिक कविता के लिए १९३७ तक चलता रहा। 'प्रगतिवादी' काव्य का जन्म इसके बाद की कथा है। जिस किसी ने इस नाम का सूत्रपात किया, उसका उद्देश्य सामयिक काव्य की हँसी उड़ाना था। उसे एक नई श्रेणी की कविता से परिचय प्राप्त हुआ जिसमें उसने बंगाल के श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' और अंग्रेजी रोमांटिक कवियों विशेषकर वर्ड्स्वर्थ आदि की रहस्यवादी कही जाने वाली कविताओं की छाया देखी। बंगाल में जिस अर्थ में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग हो रहा था ठीक उसी अर्थ में, परन्तु निश्चय ही व्यंग में, क्योंकि हिंदी की कविता बंगाली की नकल समझी जाती थी, 'छायावाद' शब्द का प्रयोग हुआ। धीरे-धीरे 'छायावाद' ने बँगाली भावुकता और रहस्यवादी आध्यात्मिकता के सिवा अनेक अंगों का विकास किया। परन्तु नाम चलता रहा। अंत में व्यंग का भाव भी दूर हो गया, परन्तु इसके लिए बहुत समय लगा। अभी हाल तक लंबे बाल, अस्पष्ट भावना, कठिन शब्दावली का प्रयोग, सतर्कतारहित उच्छृंखल व्यवहार, अव्यवहारिकता—ये छायावादी कवि के लक्षण समझे जाते थे। उसे नितांत कल्पना-जीवी समझा जाता था।

सच तो यह कि अब छायावाद की महत्ता कम होती जा रही है।

छायावाद के कहने जाने वाले कवि नए-नए दलों में भरती हो रहे हैं। परन्तु छायावाद और उसके काव्य का ठीक-ठीक विश्लेषण अभी नहीं हो सका है। श्री रामचन्द्र शुक्ल इसे 'काव्यावृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण' कहते हैं या अभिव्यंजना की एक शैली मानते हैं जिसकी विशेषता उसकी लाक्षणिकता है। श्री नंददुलारे वाजपेयी कहते हैं— "इसमें एक नूतन सांस्कृतिक भावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की आयोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसमें स्पष्टतः अधिक अस्तित्व और गहराई है।" 'प्रसाद' जी छायावाद को "अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यंजना" मानते हैं जो "साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष की अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहम्' का 'इदम्' से समन्वय करने का सुंदर प्रयत्न है।"

जैसा हम कह चुके हैं 'छायावाद' शब्द का प्रयोग वर्तमान युग की, पहले महायुद्ध (१९१४—१८) और बाद की बहुमुखी हिन्दी कविता के लिए हुआ है और उसमें अनेक प्रवृत्तियों के साथ आध्यात्मिक रहस्यवाद, सौन्दर्यनिष्ठा, लाक्षणिकता एवं मनुष्य-जीवन एवं प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण को प्रमुख स्थान मिला है। अनेक प्रवृत्तियों में अस्पष्ट राष्ट्रीय भावनाएँ और सामाजिक उद्गार भी आ जाते हैं। परन्तु यह शब्द का व्यापक अर्थ है। संकीर्ण अर्थ में लेने पर भी शब्द के ठीक-ठीक अर्थ करने की सुविधा नहीं होगी। हाँ, उसकी विशेषताओं की ओर इस प्रकार इंगित किया जा सकता है :

(१) छायावाद-काव्य में आत्माभिव्यक्ति की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। इसी से उसमें भाव की प्रगाढ़ता और पद की गेयता सहज ही प्रतिष्ठित हो जाती है। परात्मबोधक कविताएं और खंडकाव्य भी लिखे गये, परंतु उनमें भी तीव्रानुभूति के स्वर ऊपर हो उठे हैं और कवि आत्मविमुख होकर नहीं बैठ सका है।

(२) परमात्मा आत्मा के संबंध में छायावाद-काव्य अद्वैतावस्था को मानकर चलता है। प्रेम, विरह और करुणा की भावना की प्रधानता इसीलिए है कि इनके द्वारा ही इस अवस्था पर पहुँचा जा सकता है। महादेवी, रामकुमार वर्मा और निराला की कितनी ही कविताएँ इसी प्रेममूलक अद्वैत पर खड़ी हैं।

(३) छायावाद के कवियों का आग्रह उत्तमोत्तम आदर्श-सौन्दर्य की सृष्टि की ओर है। वे सुन्दर शब्दों, सुन्दर भावों और सुन्दर रूप में खो गये हैं जैसे संसार में असुन्दर का स्थान ही नहीं हो। इस प्रकार वे 'रोमांटिक' और 'पलायनवादी' कहे जाने लगे। उन्होंने जिस जीवन की कल्पनात्मक अनुभूति उत्पन्न की वह हमारे साधारण प्रतिदिन के परिचित जीवन से भिन्न था। 'पंत' और रामकुमार वर्मा अपने काव्य में इसी सौन्दर्यान्वेषण के कारण सौन्दर्यनिष्ठ कवि (Aesthate) बन गये। उन्होंने अलौकिक शृंगार में भी अतीन्द्रियता भर दी है जिससे उनपर अशरीरी भावनाओं की भक्ति का दोषारोपण किया जा सकता है। वास्तव में सौन्दर्य के प्रति उनका दृष्टिकोण आश्चर्य, भक्ति और अतीन्द्रिय आसक्ति का ही अधिक है। इस तरह इनकी कविता रीतिकाल की शृङ्गारिक कविता के एकदम विरोध में जा पड़ती है जहाँ स्थूल शृङ्गार, अभिसार, चुम्बन और परिरंभण के सिवा और कुछ है ही नहीं। छायावाद की कविता ने इसी परंपरागत शृङ्गार भावना के प्रति विद्रोह किया।

(४) छायावाद की कविता में लाक्षणिकता की प्रधानता है। इसे शैली की विशिष्टता कहना ही ठीक होगा। इसके रूप कई हैं। कहीं तो अन्योक्ति और वक्रोक्ति का आश्रय लिया गया है, कहीं अलंकारों के वक्र, लाक्षणिक और अंग्रेजी ढंग के प्रयोग मिलते हैं। कहीं प्रतीकों का प्रयोग है। इन सबने एक स्थान पर मिलकर नये पाठक के लिए कितने ही पद्यों में कूट-काव्य की सृष्टि कर दी है। इनमें सबसे अधिक कठिनता प्रतीकों के सम्बन्ध में है।

'प्रसाद' ने कहा है—आलंबन के प्रतीक उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति युग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुनती है।" परन्तु ये प्रतीक इतनी अस्पष्टता, शीघ्रता और अनिश्चितता के साथ पाठक के सामने आये कि वह उसे पकड़ ही नहीं सका।

(५) छायावाद काव्य में "विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद है।" इसके अतिरिक्त प्रकृति और मनुष्य में रागात्मक सम्बन्ध इसी प्रकार के काव्य में पहली बार सामने आता है।

(६) जीवन के प्रति दृष्टिकोण दुःख और निराशापूर्ण है। सारा छायावाद-काव्य ही (प्रसाद और निराला की कुछ कविताओं को छोड़ कर) दुःख-प्रधान है। यह दुःख कहीं आध्यात्मिक है, कहीं लौकिक। अधिकांश में इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत असफलताओं से है जिन्होंने धीरे-धीरे दुःख का एक दर्शन दे दिया है जिसका आधार अद्वैत दर्शन पर ही रखा गया है। कितने ही कवियों ने दुःख की साधना को ही काव्य की श्रेष्ठतम कला मान लिया है।

(७) हम यह मान लेने को तैयार हैं कि छायावाद-काव्य की ये विशेषताएँ संपूर्णतः मौलिक नहीं है। इसमें से कुछ के लिए उसे कबीर, रवीन्द्र या शेली का मुँह जोहना पड़ा है, परन्तु धीरे-धीरे इस काव्य ने अपना व्यक्तित्व विकसित कर लिया जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है हिंदी काव्य में कितने ही वर्षों से इसकी रूढ़ियाँ चल रही हैं। कवियों ने धीरे-धीरे कवि-कार्य में कुशलता प्राप्त कर ली है और उन्होंने जनता में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सारे हिन्दी साहित्य में किसी भी युग के कवियों को जनता तक पहुँचने के लिए इतना कठिन प्रयत्न कभी नहीं करना पड़ा, न उन्हें इतना समय लगा। स्पष्ट है कि जनता इस लगभग शत-प्रतिशत परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थी।

हमारी काव्य-परम्परा इतनी पीछे छूट गई थी कि इस काव्य को समझने के लिए उससे सहारा नहीं लिया जा सकता था। नये मूल्यों का सृजन करना पड़ा। आलोचना के नये मापदंड बने। तब कहीं वह काव्य जनता तक पहुँचा।

कोई भी काव्य अपने युग से बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। छायावाद-काव्य पर अस्पष्टता, अमौलिकता, अव्यावहारिकता, अनैतिकता, ईमानदारी की कमी और अशरीरीपन—ये कितने ही दोष लगाये जाते हैं, परन्तु यदि सच पूछा जाय तो यह अपने युग का श्रेष्ठ प्रतिबिंब है। मध्यदेश का मध्यवर्ग जिन बौद्धिकता के ह्रास, भावुकता के प्राबल्य और मन-वाणी के सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रणों में से गुजर रहा था, उसी के दर्शन इस काव्य में भी मिलेंगे। गांधीवाद में दुःख, कष्ट-सहन और पराजय को राष्ट्रीय साधना के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। समाज में प्रेम कहना पाप था। मध्यवर्ग में साकार उपासना पर से विश्वास उठ रहा था, परन्तु वैष्णव भावना को बिलकुल अस्वीकार करना असंभव था। आर्थिक और राजनैतिक संकटों ने कमर तोड़ दी थी। महायुद्ध (१९१४-१८) के आरंभ के प्रभात के स्वप्न युद्ध-समाप्ति पर कुहरे के धरोहर बन गये। ऐसे समय काव्य का रूप ही क्या हो सकता था? रवीन्द्र के काव्य ने इस प्रदेश की मनोवृत्ति के अनुकूल हो उसकी काव्य-चिंता को यह विशिष्ट रूप दिया। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' की कितनी ही कविताओं पर और 'साधना' के गद्य-गीतों पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है, परंतु बाद के काव्य के विकास का अपना अलग इतिहास है।

आज समाज और राष्ट्र की परिस्थितियाँ बदल गई हैं। हृदय का स्थान बुद्धि ने ले लिया है। छायावाद का आध्यात्मिक आधार—अद्वैतवाद—ही ढह सा रहा है, कम से कम नये कवियों का उस ओर विशेष आग्रह नहीं है। जो कवि दो दशाब्द पहले छंद, भाषा

और अभिव्यंजना के नये प्रयोग करता हुआ लड़खड़ा रहा था, आज इनका कुशल अधिकारी है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण ही बदल गया है या तेजी से बदल रहा है। ऐसे समय में जो कवि पहले कहता था—

अब न अगोचर रहो सुजान !
निशानाथ के प्रियवर सहचर
अंधकार, स्वप्नों के यान
किसके पद की छाया हो तुम ?
किसका करते हो अभिमान ?
तुम अदृश्य हो, दृग अगम्य हो
किसे छिपाये हो, छविमान ?
मेरे स्वागत-भरे हृदय में
प्रियतम आओ, पाओ स्थान

वह अब कहता है—

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव संस्कृति

युग-युग से रच शत-शत नैतिक बंधन,
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु-तन
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नवयुग में गर्हित

अथवा—

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ' सुन्दर लगते मन को केवल कुत्सित
संस्कृति, कला, सदाचारों से भव-मानवता पीड़ित
स्वर्ण-पिंजरों में बंदी है मानव-आत्मा निश्चित

आज असुन्दर लगते सुन्दर, प्रिय पीड़ित शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर, हरता मानव-मुख मन

स्पष्ट है कवि अध्यात्म की ऊँचाइयों से उतर कर दैनिक जीवन की तलैटियों में आ गया है। उसने सुन्दरता के लिए नए मूल्य ढूँढने का प्रयत्न शुरू कर दिया है। छायावाद काव्य के मूल्य उसे आज अति-भावुकता से ग्रसित जान पड़ते हैं। जो कवि पहले सौन्दर्य को इस रूप में देखता था—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि,
कैसे तूने पहचाना
कहाँ कहाँ हे वाल विहंगिनि
पाया तूने यह गाना ?
शशि-किरणों से उतर-उतर कर
भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे। मुसकाना
तूने ही पहले, बहुदर्शिनि,
गाया जाग्रति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का, नभ-चारिणि,
गूंथ दिया ताना-वाना

अब वह उसे इस रूप में ग्रहण कर रहा है—

सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर
वने नीमदल
लंबे, पतले, चंचल,
श्वसन स्पर्श से

रोम-हर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल

या

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिलबिल
एक दूसरे से मिल,
मित्रों से हैं खड़े,—
मौन, मनोज्ञ।
दोनों पादप
सह वर्षातप
हुए साथ ही बड़े
दीर्घ, सुदृढ़तर!
पतझर में सब पत्र गए झर
नग्न, धवल शाखों पर
पतली, टेढ़ी, टहनी अगणित
शिराजाल-सी फैली अविकल
भू पर कर छायांकित,
नील निरभ्र गगन पर
चित्रित दोनों तरुवर
आँखों को लगते हैं सुन्दर,
मन को सुखकर!

जिस जीवन से दूर भाग कर या जिससे ऊपर उठ कर कवि अपनी ही कल्पना का संसार और अपनी ही संवेदना के व्यापारों में खो जाता था, उसी जीवन ने आज उसके नक्षत्र-भवन पर धावा बोल दिया है। आज कवि जीवन की वास्तविकता के साथ फ़ौजी कदम रखता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस अग्रभूमि से देखने पर हम छायावाद के महत्व को अधिक अच्छी तरह ग्रहण कर सकेंगे।

४

कुछ प्रसिद्ध छायावादी कवि

(क) 'प्रसाद'

छायावादी कवियों में 'प्रसाद' का नाम सबसे पहले आता है। वास्तव में इस नये काव्य की अनेक प्रवृत्तियों के जन्म और विकास में उनका ही हाथ सबसे अधिक रहा है। प्रसाद ने अधिक नहीं लिखा—कम से कम काव्य की मात्रा अधिक नहीं है। परंतु जो लिखा, उसने हिंदी कविता को नई गति-विधि दी, इसमें कोई संदेह नहीं। प्रसाद की कविता की कहानी बड़ी लंबी है। लगभग ३० वर्ष तक उन्होंने कवि-कर्म में योग दिया। १६०६ के लगभग (१७ वर्ष की आयु में) उनकी पहली कविता प्रकाशित हुई और तबसे मृत्यु-शय्या (१६३८) तक वे बराबर रचना करते रहे। निराला और पंत से उनका काव्य मात्रा में बहुत कम है, परंतु वह आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रगति का अन्य कवियों के काव्य की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व करता है। काल-क्रम के अनुसार उनकी काव्य-रचनाएँ इस तरह हिन्दी के सम्मुख आईं—करुणालय (गीतिनाट्य, १६१२ कविता की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है), काननकुसुम (१६१२), प्रेमपथिक (१६१३), महाराणा का महत्व (१६१४), आँसू (१६२६), झरना (१६२७), लहर (१६३५), और कामायनी (१६३७)। इस बड़े रचना-काल को हम तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं:

१—प्रारंभिक प्रयोगात्मक काल (१६०६-१६१४)

२—आँसू-काल (१६१४—२६)

३—प्रौढ़ कविता-काल (१६२६—३८)

'प्रसाद' के प्रारंभिक प्रयोगात्मक काव्य का संबंध 'इन्दु' (१६०९—१९१६, १६२७) से है। यह एक मासिक पत्र था और इसे स्वयं कवि के आग्रह से उनके भांजे अंबिकाप्रसाद गुप्त ने काशी से निकाला था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में नई कविता और कहानी के क्षेत्र में इसने इतना महत्वपूर्ण काम किया है कि साहित्य के इतिहास में इसका नाम सदा के लिए सुरक्षित है। इस पत्रिका के संपादकीय प्रसाद ही लिखते थे, अतः काव्य के संबंध में प्रसाद की प्रारंभिक विचारधारा भी हमें यहीं मिल जाती है। इनसे प्रसाद के काव्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नई कविता के विषय में कवि के मन में कुछ निश्चित धारणाएँ हैं। यही आगे चलकर उनके काव्य में पल्लवित हुई हैं। ये इस प्रकार हैं—

(१) साहित्य का कोई लक्ष्य नहीं होता।

(२) साहित्य के लिए कोई विधि या बंधन नहीं है।

(३) साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण है साहित्यकार या कवि का व्यक्तित्व। इसी से काव्य-कर्म कवि की साधना बन जाता है।

(४) साहित्य के विषय हैं सत्य और सुन्दर।

(५) पाश्चात्य साहित्य और शिक्षा ने कविता के विषय में लोगों के मानदंड ही बदल दिये हैं। अब उसी के अनुरूप कविता होनी चाहिये।

(६) शृङ्गार-रस-पूर्ण कविता (रीतिकाव्य) ने जनता की मनोवृत्तियों को शिथिल कर दिया। अतः नये काव्य को रीतिकाव्य का अनुकरण करना ठीक नहीं होगा।

(७) नई कविता के ये गुण होंगे :

(क) भावमयता, (ख) उत्तेजना (ओज), (ग) आत्म-विस्मरण, (घ) संगीतमयता (ङ) आह्लादकता, (च) शांतिमयता। भारतीय काव्य-परंपरा से परिचित आलोचक यह समझ लेगा कि

यह व्याख्या शत-प्रति-शत क्रांतिकारी है। कम-से-कम रीतिकाव्य के वातावरण में इस नई कविता का बिगुल बजा देना बड़े साहस का काम था। वास्तव में मूल रूप से यह कविता रीतिकाव्य और द्विवेदी युग के काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में सामने आती है। रीतिकाव्य का एक विशेष लक्ष्य था—

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई
न तु राधा-कन्हाई सुमिरन को बहानो है

मुख्य लक्ष्य था कविताई (कविकर्म)। इसमें असफलता रही तो उसने उसे भक्ति-भावना कह दिया। 'एक पंथ दो काज'। द्विवेदी-युग की कविता का लक्ष्य था सुधार। अनेक नैतिक विषयों को कविता का जामा पहना दिया गया था। अतः कविता आह्लादिनी न रहकर 'जड़'-मात्र रह गई थी। रीतिकाल के कवि के लिए बंधन ही सब कुछ थे। वह तो सारा साहित्य और शास्त्र अध्ययन कर तब इस क्षेत्र में आता था। पग-पग पर वह नियमों और परंपराओं से बँधा हुआ था। कवि-समय, कवि-प्रसिद्धियाँ, गुण-दोष—सैकड़ों बंधन थे। द्विवेदी युग ने इन बंधनों को तोड़ा, परन्तु उनकी जड़ता स्वयम् उनका सबसे बड़ा बंधन बन गई। इसी से 'साहित्य के लिए कोई विधि या नियम नहीं है, सोलह-सत्रह वर्ष के युवक की बड़ी क्रांतिकारी खोज हुई। इसमें भी बड़ी क्रांतिकारी खोज थी कवि के व्यक्तित्व के विषय में। रीतिकाल और द्विवेदी-युग में कवि का व्यक्तित्व मर गया था। अंतिम चरण में अपना उपनाम धर कर कवि जैसे अपने सारे व्यक्तित्व का बोझ भी सिर से उतारकर फेंक देता था। कोई भी उपनाम रख दीजिये, कविता की 'स्पिरिट' में कोई अंतर नहीं आएगा। इतना व्यक्तित्वहीन (Impersonal) यह काव्य था। धीरे-धीरे कविता लिखना 'कर्म'-मात्र रह गया। कवि उस कविता को अपनी कहे, उसमें अपना व्यक्तित्व भर दे, अपने सुख-दुःख की बात करे, राधा-कृष्ण के प्रतीकों को हटा दे, यह नई बात हुई। जहाँ नया

(छायावादी) कवि शृंगार-रसपूर्ण कविता (रीतिकाव्य) का विरोधी था, वहाँ उसे द्विवेदी युग की कविता की जड़ता में प्राणहीनता दिखलाई पड़ती थी। इसके विरुद्ध उसने भाव (रस), उत्तेजना (ओज), संगीत-मयता, शांति और आह्लाद को अपना लक्ष्य बनाया। रीति-काव्य में तो इन प्रवृत्तियों के दर्शन भी नहीं होंगे।

तीन और महत्वपूर्ण बातें इस कविता के विषय में कही गई हैं :

(१) कविता का विषय—सत्य और सुन्दर। ये दोनों शब्द इतने अस्पष्ट, इतने भ्रामक हैं कि इनके कारण नया कवि सुन्दर रूपों और दार्शनिक गुत्थियों में उलझ कर रह गया।

(२) कविता का आदर्श—पश्चिमी साहित्य और उस साहित्य की मान्यताएँ। स्पष्ट ही कवि का तात्पर्य अंग्रेजी स्वच्छन्द काव्य (Romantic Poetry) से है। कवि ने अपने ऊपर एक महान आदर्श को ओढ़ लिया है—"सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करना।" वास्तव में सत्य को प्रतिष्ठित करना दार्शनिक का आदर्श है, कवि का आदर्श नहीं। इसी तरह सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करना कवि का आदर्श होते हुए भी बड़ा कठिन काम है। यह तो संत की तपस्या हुई।

(३) इस नई कविता की परख—प्रसाद ने इसके दो मापदंड माने हैं : (क) आनन्दमय हृदय (सहृदय रसिक) पर इस काव्य का जो प्रभाव पड़े, (ख) स्वतंत्र आलोचना (काव्यपरिपाटियों और काव्यसिद्धांतों को अलग कर दिया जाय, मुक्तहृदय से, निर्बंध रूप से कवि या आलोचक उसके प्रभाव की विवेचना करे।) १६०६—१० में कविता के संबंध में इतने स्वतंत्र, इतने प्रगतिशील विचार कदाचित् किसी के न रहे होंगे।

अतः स्पष्ट है कि अपनी काव्य-रचना के ३-४ वर्ष बाद ही प्रसाद ने काव्य-संबंधी कुछ अत्यंत प्रगतिशील सिद्धांत बना लिये थे और इन्हीं के आधार पर उन्होंने नए काव्य की नींव डाली। पता नहीं, ये नए

विचार उन्हें कहाँ से मिले। अंग्रेज़ी-बँगला साहित्य से इनका परिचय अवश्य था, परन्तु जिस स्पष्टता से ये विचार सामने रखे गये हैं, उनसे यह लगता है कि इन्होंने वासनामूलक रीतिकाव्य और गद्यात्मक नए द्विवेदी-काव्य के विरुद्ध अपने संस्कारों द्वारा इन्हें प्राप्त किया।

परन्तु कविता के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचारक की दृष्टि से कुछ निश्चित सिद्धांत गढ़ लेना एक बात है। उसके अनुरूप काव्य-निर्माण बड़ी कठिन बात है। यह बात उस समय और भी कठिन हो जाती है जब इस नए काव्य की न कोई परंपरा थी, न कोई नमूना। इसी से १९०९ ई० से १९१४ तक हम कवि को प्रयोग करता पाते हैं। 'इन्दु' की कविताएँ (१९०९-१६), काननकुसुम (१९१२), प्रेम-पथिक (१९१३) और महाराणा का महत्व (१९१४) उसके प्रारंभिक प्रयोग मात्र हैं।

सबसे पहले प्रसाद ने भाषा ब्रजभाषा ही रखनी चाही। उस समय काव्य की लोकप्रिय भाषा वही थी। खड़ीबोली की कविता गद्यात्मक थी, रस का संचार वह नहीं कर पाई थी, अतः यह स्पष्ट था कि वह काव्य-भाषा के रूप में उतनी सफल नहीं जितनी ब्रजभाषा। उस समय का रसिक वर्ग यही सोचता था। 'इन्दु' और 'काननकुसुम' की अधिकांश रचनाएँ ब्रजभाषा में ही हैं। 'इन्दु' (१९०९) की दूसरी किरण में 'प्रेमपथिक' प्रकाशित हुआ। यह ब्रजभाषा में ही था। कुछ दिनों बाद इसे परिवर्द्धित करके स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार छापा गया। तब भी यह ब्रजभाषा में ही रहा। फिर इसे परिवर्तित और परिवर्द्धित कर खड़ीबोली में १९१३ ई० में सामने लाया गया। १९०५ के लगभग मूलरूप में ब्रजभाषा में लिखा जाकर यह इतना महत्वपूर्ण नहीं, परन्तु १९१३ में जब यही खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ तो इसने समसामयिक काव्य में एक युग परिवर्तन की सूचना दी। यह कथात्मक काव्य था। शायद अंग्रेज़ी कवि गोल्डस्मिथ के Hermit से प्रभावित था,

परन्तु विषय और उसकी निबंधता (Treatment) दोनों मौलिक होने के कारण जनता का ध्यान उसकी ओर गया। इसमें कवि ने 'प्रेम' की एक अभिनव परिभाषा उपस्थित की—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है
श्रांत भवन में टिक रहना,
किंतु चले जाना उस हद तक
जिसके आगे राह नहीं

केवल इन्हीं दोनों पंक्तियों को सारे रीति-काव्य के वासना-मूलक शृंगार के समक्ष रखा जा सकता था। कहाँ मृत्य, कहाँ स्वर्ग ! आदर्श-शिथिल युग के लिए प्रसाद का 'प्रेमपथिक' नया संदेश लाया।

'प्रसाद' के प्रारंभिक काव्य से हमें उन विशेष प्रवृत्तियों का पता लगता है जो उनके काव्य की विशेषताएँ हैं :

(१) प्रकृति के संबंध में नया दृष्टिकोण—'प्रसाद' के प्रारंभिक काव्य की प्रगति प्रकृति की ओर थी, यह 'इन्दु' कला १, किरण ३ में प्रकाशित उनकी 'शारदीय शोभा' कविता से प्रकट होता है। 'कानन-कुसुम' की अनेक कविताओं का विषय प्रकृति है जैसे 'प्रभातिक कुसुम', 'इन्द्रधनुष', 'चंद्रोदय', 'संध्यातारा'। ये सब कविताएँ ब्रजभाषा में हैं, परन्तु इनमें नये स्वर स्पष्ट रूप से बोल रहे हैं। उदाहरण के लिए हम 'संध्यातारा' को ले सकते हैं—

कामिनी चिकुर भार अति घन नील
तामें मणिसम तारा सोहत सलील
अनन्त तरंग तुङ्ग माला विराजित
फेनिल गंभीर सिंधु निनाद वोहित
हरि कूहू में नाविक जिमि भयभीत
पीय-पथ दर्शकहिं लखत सप्रीत

संसार तरंग लखि भीत तिमि जन
निराश हृदय धारि संतापित मन
शांति निशा महिषी को राजचिन्ह रूप
तुमहिं लखात संध्यातारा शुभ भूप

इसमें जो कल्पना-जन्य विलास है, वह न रीतिकाव्य में मिलेगा, न द्विवेदी-युग की वृत्तात्मक जड़ कविता में। परन्तु प्रकृति-संबंधी भावना का विशेष विकास इन्हीं दोनों की प्रारम्भिक कविताओं में हुआ है। 'इन्दु', कला ४, खंड १, कि० १, १९१३ में 'भरत' शीर्षक कविता में प्रसाद 'हिमालय' का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

हिमगिरि का उत्तुङ्ग शृङ्ग है सामने।
खड़ा बताता है भारत के गर्व को।

पड़ती इस पर जब माला रवि-रश्मि की।
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में।
बनता है हिमलता, कुसुम मणि के खिले,
पारिजात का ही पराग शुचि धूल है।
सांसारिक सब ताप नहीं इस भूमि में।
सूर्यताप भी सदा सुखद होता यहाँ।
हिमसर भी हैं खिले विकल अरविन्द हैं।
कहीं नहीं है शोच, कहाँ संकोच है?
चंद्रप्रभा में भी गलकर बनते नहीं।
चंद्रकांत से ये हिमखंड मनोज्ञ हैं।

'प्रसाद' ने पहली बार प्रकृति को हृदय की स्वच्छंद भावनाओं के भीतर से देखा। अब तक प्रकृति प्रेमी-प्रेमिकाओं की क्रीड़ा-भूमि थी। वह विलास-उपवन बनी हुई थी। उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का वर्णन कवियों का प्रिय विषय था। परन्तु प्रेम के अतिरिक्त भी मनुष्य में कोई प्रवृत्ति हो सकती है, रीतिकाव्य के कवि इस बात

को भूल गये थे। द्विवेदी-युग के कवियों ने प्रकृति को वस्तु-नामवर्णन मात्र समझ लिया। उनके हृदय से प्रकृति का मेल नहीं हो पाया। 'प्रसाद' में हम पहली बार मानव-हृदय और प्रकृति को अनेक परिस्थितियों में एकाकार होते पाते हैं। 'काननकुसुम'-संग्रह की 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता में इस नई प्रवृत्ति का आभास मिलता है। कवि प्रकृति को अपने अन्यतम भावों के माध्यम से देखता है—

मनोवृत्तियाँ खगकुल-सी थीं सो रहीं
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में
नील गगन-सा शांत हृदय भी हो रहा
वाह्य आंतरिक प्रकृति सभी सोती रही

स्पंदनहीन नवीन मुकुल मन तुष्ट था
अपने ही प्रच्छन्न विमल मकरन्द से
कहा अचानक किस मलयानिल ने तभी
(फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ)

आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें,
खुली आँख, आनन्द दृश्य दिखला गया
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूँज से
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा

वर्षा होने लगी कुसुम मकरन्द की
प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में
कैसी छवि ने बाल अरुण की प्रकट हो
शून्य हृदय को नवल राग रंजित किया

सद्यः स्नात हुआ फिर उसी सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया
विश्व विमल आनन्द भवन-सा हो गया
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था

'झरना' (१६२८) में प्रसाद की १६१४—१७ की कविताएँ संग्रहीत हैं। 'कानन-कुसुम', 'झरना', 'लहर' तीनों नाम कवि के प्रकृति-प्रेम का आग्रह करते हैं। 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता इसमें भी है। कई नई प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ भी हैं। जैसे 'पावस-प्रभात'—

म्लान तारकागण की मद्यप-मण्डली
नेत्र निमीलन करती है, फिर खोलती
रिक्त चषक-सा चंद्र लुढ़क कर है गिरा
रजनी के आपानक का अब अन्त है
रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये
घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी

इस कविता में कवि ने 'मद्यपमण्डली' का रूपक बाँध कर प्रभात में चंद्र-तारा की अस्त-व्यस्तता का वर्णन किया पर वहाँ उर्दू-फ़ारसी काव्य का प्रभाव खुल पड़ा है। दूसरे पद में कवि ने उषा-प्रसंग को सुन्दर युवती के रूप में मूर्तिमान किया है जो रजनी के उपकरण देखकर प्रसन्नता और ईर्ष्या से गर्वीली है। यह मूर्तिमत्ता (Imagery) नये काव्य का प्राण है। धीरे-धीरे कवि की प्रकृति-प्रेम की कविताओं में ऐश्वर्य और विलास का समावेश हो जाता है, परन्तु रीतिकाव्य से अलग ढंग पर। 'होली की रात' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

चाँदनी धुली हुई है आज
बिछलते हैं तितली के पंख,
सम्हल कर मिलकर बजते साथ
मधुर उठती है तान असंख्य

तरल हीरक लहराता शान्त
सरल आशा-सा पूरित ताल
सिताबी छोड़ रहा विधु कांत
बिछा है सेज कमलिनी जाल

इस कविता में अभिधा से अधिक लक्षणा का प्रयोग है। कवि कहना चाहता है—"आज चाँदनी रात इतनी उज्वल हैं कि लगता है नहा कर आई हो, जैसे धुली हुई हो। यह चाँदनी ऐसी सुचिक्कण है कि तितली के पंख भी फिसल जायें। इस रात की नीरवता में गीत-वाद्य-ध्वनि की लहरें गूँज रही हैं। लगता है जैसे यह विश्व एक बड़ा-सा हीरा हो और उसमें उज्ज्वल, पारदर्शी लहरें उठ रही हों। ताल जलपूरित है जैसे (कवि का) हृदय आशा से भरा हुआ है। चाँद से किरनों की फुलझड़ी छूट रही है। तल में कमलिनी का 'जाल' बिछा है, जैसे सेज बिछी हो।" कुछ अन्य कविताओं में कवि प्रकृति के पीछे छिपे हुए किसी रहस्य को भी खोलना चाहता है। 'झरना' में वह कहता है—

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी
मनोहर झरना
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारंभिक काव्य में कवि ने प्रकृति-संबंधी दृष्टिकोण में एक महान क्रांति उपस्थित कर दी है।

(२) नये विषय

(अ) अध्यात्म

नया युग आध्यात्मिक साधना का युग नहीं था, परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अध्यात्म इस युग की कविता का अत्यन्त

लोकप्रिय विषय रहा। युग की साधारण प्रवृत्ति के यह बात इतनी विपरीत थी कि वर्षों तक नई कविता साधारण पाठकों की समझ में नहीं आती थी। कवि ईश्वर-जीव के संबन्ध में जो कुछ कहता था, वह युग-प्रवृत्ति के इतना दूर पड़ता था कि उसकी खिल्ली उड़ाई जाने लगी। 'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'रवि बाबू की जूठन', 'थोथा अध्यात्म' इत्यादि कहला कर इस प्रकार का काव्य लांछित बना और लगभग एक युग तक यह लांछा बनी रही। थोड़ा-बहुत अध्यात्म तो हिन्दू जीवन के साथ लगा हुआ है ही। परन्तु जिस रूप में यह अध्यात्म पहले प्रकाशित हुआ था, उसमें अध्यात्म जीवन-साधना था, वाग्छल नहीं। सिद्ध, सन्त, सूफ़ी और भक्त पहले साधक थे, फिर कवि। उनकी साधना ने उनके काव्य को विश्वास की दृढ़ भित्ति दी थी। उसे अस्वीकार करना असम्भव था। छायावादी कवि के जीवन के पीछे अध्यात्म-साधना नहीं हो सकती थी, यह स्पष्ट था। १६-१७ वर्ष की आयु के कवियों से अध्यात्म-साधना की आशा भी नहीं की जा सकती थी। फिर यह अध्यात्म, यह जीव-ब्रह्मवाद, यह रहस्यवाद कहाँ से आया? 'प्रसाद' के प्रारम्भिक काव्य से इसकी बहुत कुछ गुत्थियाँ खुल जाती हैं।

रविबाबू की गीतांजलि (अंग्रेज़ी संस्करण, प्रकाशन तिथि १९११ ई०) ने सारे संसार को चकित कर दिया था और वह सारे देश के अध्ययन और प्रशंसा का विषय बन रही थी। १९१३ के लगभग 'प्रसाद' के काव्य पर गीतांजलि का प्रभाव पड़ने लगा। इससे पहले की कविताओं में प्रेम और प्रकृति के संबंध में कवि का नया दृष्टिकोण मिलता है, परन्तु अध्यात्म कभी कवि का विषय नहीं रहा। १९१३ की जुलाई और अगस्त की संख्याओं में 'नमस्कार' शीर्षक दो कविताएँ प्रकाशित हुईं। अंग्रेज़ी 'गीतांजलि' की अंतिम कविता से इनको प्रेरणा मिली जान पड़ती है। जिस बंगला गीत का यह रूपांतर है, वह है—

एकटि नमस्कारे

प्रभु, एकटि नमस्कारे

'प्रसाद' ने इस कविता के अध्यात्म-भाव को ग्रहण कर लिया, इसे हिंदी-चिन्तना की भित्ति दे दी :

१ जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मन्दिर में रंक नरेश समान रहा है
जिसका है आराम प्रकृति का कानन सारा
जिस मन्दिर के दीप इन्दु, दिनकर औ' तारा
उस मन्दिर के नाथ को
निरुपम निरमम स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

२ तप्त हृदय को जिस उशीरगृह का मलयानिल
शीतल करता शीघ्र दान कर शांति को अखिल
जिसका हृदय पुजारी है रखता न लोभ को
स्वयं प्रकाशानुभव मूर्ति देती न क्षोभ को
प्रकृति सुप्रांगण में सदा
मधुक्रीड़ा कूटस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

'गीतांजलि' का एक गीत है—

जीवन जखन शुकाय जाय
करुना धाराय ऐसो

इससे यह कविता मिलाइये—

जब प्रलय का हो समय ज्वालामुखी मुख खोल दे
सागर उमड़ता आ रहा हो, शक्ति-साहस बोल दे

ग्रहगण सभी हों केन्द्रच्युत लड़कर परस्पर मग्न हों
उस समय भी हम हे प्रभो, तव पद्मपद में लग्न हों
जब शैल के सब शृंग विद्युतवृन्द के आघात से
हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात-से
जब घिर रहे हों प्रलयघन अवकाश गत आकाश में
तब भी प्रभो! यह मन खिंचे तब प्रेमधारा-पाश में

(इन्दु, फरवरी, १९१४)

'काननकुसुम' और 'झरना' की कितनी ही कविताओं पर स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में गीतांजलि का प्रभाव है। ऐसा कहने में हम 'प्रसाद' की मौलिकता पर कोई आक्षेप नहीं करते। गुजराती, मराठी, पंजाबी, सिंधी और दक्षिण भारत की भाषाओं पर भी गीतांजलि का प्रभाव पड़ा है। 'गीतांजलि' की प्रसिद्धि ही ऐसी थी, उसकी शैली में कुछ ऐसा चमत्कार था कि उसके प्रभाव से उस समय बच सकना असम्भव था। कहीं-कहीं तो रवि बाबू की विचारधारा को उसी तरह अपना लिया गया। जैसे—

जब मानते हैं व्यापी जल, भूमि में, अनिल में,
तारा-शशांक में भी आकाश में अतल में
फिर क्यों ये हठ है प्यारे मन्दिर में वह नहीं है
यह शब्द जो नहीं है उसके लिये नहीं है

इसकी तुलना अंग्रेज़ी गीतांजलि के ११वें गीत से की जा सकती है। इसी तरह इसी गीत के भाव को 'आदेश' शीर्षक कविता में कवि रख देता है—

प्रार्थना और तपस्या क्यों?
पुजारी किसकी है यह भक्ति,
डरा है तू निज पापों से,
इसी से करता निज अपमान!

दुखी पर करुणा क्षण भर ही,
प्रार्थना पहरों के बदले,
हमें विश्वास है कि वह सत्य
करेगा आ कर तब सम्मान

इन कविताओं में जो भावधारा बही है वह इस प्रकार है—"पूजा-तपस्या सब व्यर्थ है। जो इस सृष्टि में व्याप्त है वही मनुष्य में भी व्याप्त रहा है। इससे सबसे बड़ी पूजा-तपस्या यह है कि दीन-दुखियों की सेवा की जाय। वह केवल मन्दिर में हो, यह बात नहीं।

फिर 'वह' (परमात्मा) मनुष्य (जीवात्मा) से भिन्न भी तो नहीं है, बहुत दूर भी तो नहीं है। जब लोग कहते हैं कि मनुष्य वंचक है, अपदार्थ है, कंगाल है तो वे यह भूल जाते हैं कि 'गुप्तनिधियों' का रक्षक यक्ष उनके पास खड़ा है, उनकी मूर्खता पर हँस रहा है ('कुछ नहीं') जब परमात्मा पास है, तो उसके धन से आत्मा धनी बनी रहेगी। परन्तु उस यक्ष के नैकट्य का परिचय पाना तो कठिन है। जब तक मन में 'कामना' है, तब तक उसे कैसे पाया जा सकता है। कवि प्रार्थना करने बैठता है, परन्तु कामना के नूपुर की झंकार कान में गूँज जाती है और वह चमत्कृत हो जाता है ('अव्यवस्थित')। जब जीवात्मा इस 'कामना' के बंधन से ऊपर उठ जाता है, तो वह दिव्य मिलन के आनन्द को पाने लगता है।" कानन-कुसुम की अधिकांश प्रम की कविताएँ लौकिक प्रेम की कविताएँ हैं, परन्तु रवि बाबू के प्रभाव से कवि कितनी ही कविताओं में लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने की प्रवंचना में पड़ गया है। अतः दो पक्षों में घटाने के प्रयत्न के कारण अध्यात्म-संबंधी कितनी ही कविताएँ अस्पष्ट हो गई हैं। यहीं से "रहस्यवाद" का आरंभ होता है। प्रसाद ने अपने निबंध में रहस्यवाद को 'भंगिमा' या शैली-मात्र माना है। इन कविताओं के अध्ययन से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। वे मूलतः

'रहस्य' या 'आत्मा-परमात्मा' के कवि नहीं हैं। परन्तु जब इस रूप में उनकी प्रसिद्धि हो गई तो ये चुपचाप इसे निभाते गये। प्रसाद मूलतः प्रेम, विलास और सौन्दर्य के कवि हैं। उन्होंने आनन्द के आधार पर मानव-जीवन के सुखों-दुखों की व्याख्या की है। वे कलाकार कवि हैं। परंतु वे इस अर्थ में रहस्यवादी कवि नहीं जिस अर्थ में हम कबीर, मीरा और महादेवी को रहस्यवादी कवि कहेंगे।' 'झरना' की एक कविता में आधुनिक रहस्यवाद का सर्वोत्तम चित्र है। कबीर, दादू और मीरा प्रभृति के काव्य में ऐसे चित्र मिलेंगे। आध्यात्मिक आनंद के सुख का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये
यह अलस जीवन सफल सब हो गया
कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिंधु है
इस हमारे और प्रिय के मिलन से
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा;
कोकिलों का स्वर विपञ्ची नाद भी,
चंद्रिका, मलयज - पवन, मकरंद औ'
मधुप माधविका कुसुम-से कुञ्ज में
मिल रहे सब साज, मिलकर बज रहे
आज इस हृदयाब्धि में, बस क्या कहूँ,
तुङ्ग तरल तरंग कैसी उठ रही —'मिलन'

यह स्पष्ट है कि यह आध्यात्मिक साधना की कविताएँ 'गीतांजलि' का प्रभाव ही सूचित करती हैं। इनके पीछे साधना का बल नहीं है। वैसे उपनिषदों और संतकाव्य में इस प्रकार की भावनाएँ थीं। परंतु उपनिषदों का प्रभाव ब्रह्मसमाज के माध्यम से 'गीतांजलि' पर पड़ चुका था। संतकाव्य (विशेषतः कबीर और दादू

के काव्य) की ओर हिन्दी प्रदेश का ध्यान एक दशक बाद गया। वास्तव में छायावाद काव्य के कई अंग हैं। उसके अध्यात्म पक्ष के काव्य का अपना विशेष स्थान है और उसकी परंपरा 'गीतांजलि' से पहले नहीं जाती। श्री राय कृष्णदास ने 'प्रसाद' के संस्मरणों को लिखते हुआ लिखा है कि 'गीतांजलि' के प्रकाशन के कुछ दिनों बाद उसी से प्रभावित होकर उन्होंने कुछ गद्यगीत लिखे। बाद को ये गीत 'साधना' (१६१६) में प्रकाशित हुए। एक दिन वह प्रसाद जी से मिलने गये। उन्होंने इन्हें बहुत आग्रह के साथ उसी प्रकार के कुछ गद्यगीत सुनाये। राय कृष्णदास ने कहा—"इसी तरह के गद्य-गीत मैंने लिखे हैं। संभव है, तुम्हें सुनाये हों, यह मित्रों पर ही हाथ सफ़ा।" प्रसादजी अत्यन्त सहृदय व्यक्ति थे। मित्र के बीच में उन रचनाओं को उन्होंने नहीं पड़ने दिया। कुछ रचनाओं को उन्होंने नष्ट कर दिया। शेष रचनाओं को उन्होंने पद्य का रूप दे दिया। यह कविताएँ 'काननकुसुम' ओर 'झरना' की कविताएँ हैं। इस उद्घाटन के बाद 'छायावाद' के अध्यात्म-पक्ष की कविताओं और 'रहस्यवाद' के संबंध में विशेष उलझन नहीं रह जाती। बाद की रहस्यात्मक कविताओं पर चाहे और-और प्रभाव पड़े हों इसमें संदेह नहीं कि प्रारंभ में इस प्रकार की रचनाओं का सूत्रपात 'गीतांजलि' के कारण हुआ। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य को रवि बाबू का ऋण स्वीकार करना पड़ा।

(ख) करुणा

जीव-ब्रह्म के रहस्यात्मक मिलन-वियोग के बाद भी छायावाद के कई नए विषय रह जाते हैं। इनमें एक महत्त्वपूर्ण विषय है करुणा या वेदना। प्रारंभ में इसका संबंध अध्यात्म-भावना से ही था। करुणा के द्वारा ही भगवान भक्त के समीप आता है। एक ओर भक्त की विपद है, भक्त की हीनता है, दूसरी ओर भगवान की निःसीम करुणा। प्रसाद कहते हैं—

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश
बना करके मनमोहन वेश
दीनता को अपनाया
उसी से स्नेह बढ़ाया
अलसता लता बढ़ चली साथ
मिला था करुणा का शुभ हाथ

यह तो हुआ आधुनिक काव्य के करुणावाद या वेदनावाद का अध्यात्म पक्ष। परन्तु स्वयम् कवि के व्यक्तिगत दुःख-क्लेश और युग की पराजयपूर्ण मनोस्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी है। प्रसाद को होश सँभालते ही दुःखों से पाला पड़ा। १२ वर्ष की आयु (१६०१) में वह पितृहीन हो गये। चार वर्ष बाद (१६०४) उनकी स्नेहमयी माता की भी मृत्यु हो गई। दो वर्ष बाद (१६०६) में उनके ज्येष्ठ भ्राता भी गोलोक को प्राप्त हुए। सारा व्यापार चौपट हो गया। सारा घर उजड़ गया। अनेक परिस्थितियों से लड़ते-झगड़ते अस्तित्व बनाये रखने का प्रश्न था। जब हम देखते हैं कि प्रसाद को तीन बार विवाह करना पड़ा, दो पत्नियों की मृत्यु उन्हें देखनी पड़ी, तो हम यह स्पष्ट देखते हैं कि कवि के जीवन का एक बड़ा भाग विपरीत भाग्य-चक्र के बीच में से गुज़रा। इसी से बुद्ध के क्षणिकवाद (या दुःखवाद) से उन्हें प्रेम हो गया और अपने नाटकों में उन्होंने बार-बार इसी करुणा को समाधान के रूप में देखा। १६१३ ई० में मानसिक संकटों से घबड़ा कर 'प्रसाद' कहते हैं—

ये मानसिक विप्लव प्रभो जो हो रहे दिन-रात हैं
(करुणा क्रदन, अप्रैल १६१

अगली ही संख्या में हम उन्हें वेदनात्मक काव्य
झुका पाते हैं। 'दलित कुमुदिनी' एक उदाहरण

वेदना', 'निशीथमयी', 'एकांत में' आदि कविताएँ अन्य उदाहरण हो सकती हैं। दुःख में भरे हुए कवि को सारा संसार ही छलावा दिखलाई दिया। सब कुछ मृग-मरीचिका। 'करुणा-पुंज' कविता में वह कहता है—

> क्लांत हुआ सब अंग शिथिल क्यों वेष है
> मुख पर श्रमसीकर का भी उन्मेष है
> भारी बोझा लाद लिया, न संभार है
> छल-छालों से पैर छिले, न उबार है
> चले जा रहे वेग भरे किस ओर को
> मृगमरीचिका तुम्हें दिखाती छोर को
> किन्तु नहीं है पथिक! वहाँ जल है नहीं
> बालू के मैदान सिवा कुछ भी नहीं

यहाँ 'छल-छालों' और भारी बोझ का जो उल्लेख है वह कवि के जीवन की परिस्थिति का फल है, उसमें अध्यात्म-साधना की कोई बात नहीं है। परन्तु हिन्दी काव्य में अपनी बात कहने की तो परंपरा थी ही नहीं। फिर इतने अन्यतम ढङ्ग से तो अपनी बात किसी ने कही भी नहीं थी। फल यह हुआ कि इस प्रकार की वेदनामयी कविताओं के पीछे भी अध्यात्म की प्रेरणा ढूँढी जाने लगी और कवि को अस्पष्टता के दोष से लांछित माना गया।

(ग) प्रेम : लौकिक

अध्यात्म का अर्थ है पारलौकिक प्रेम। परन्तु लौकिक प्रेम भी कविता का महत्वपूर्ण विषय है। रीतिकाव्य में सामान्य रूप से प्रेम की चर्चा है। उसे प्रेम नहीं, 'रति' कहना चाहिये। उसमें स्त्री-पुरुष के अन्यतम सम्बन्ध को शास्त्र के माध्यम से देखा गया है। प्रसाद ने पहली बार लौकिक प्रेम का काव्य लिया। अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों में इस तरह के काव्य की परंपरा थी और पंत और प्रसाद इस परंपरा

से प्रभावित हुए। वास्तव में प्रसाद सौन्दर्य, प्रेम और विलास के कवि हैं। विनोदशंकर व्यास ने इशारा किया है कि अपनी तरुणाई के दिनों में प्रसाद किसी को प्यार करते थे, जीवन भर वे उपेक्षित रहे और इस व्यक्तिगत असफलता का वेदनावाद के गढ़ने में महत्वपूर्ण हाथ रहा है। जान पड़ता है १९१३ के लगभग यह प्रेमचक्र आरम्भ हुआ। 'इन्दु' कला ४, खंड १, किरण ५ में उनकी एक ग़ज़ल 'भूल' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इसमें उर्दू ढग से प्रेमी की असफलता और प्रेमिका की निष्ठुरता का वर्णन है—

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं

उन्हें अवकाश ही रहता कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं

जो ऊँचे चढ़के चलते हैं वे नीचे देखते पर हम
प्रफुल्लित वृक्ष ही यह भूमि कुसुमागार करते हैं

न इतना फूलिये तरुवर, सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरन्द के मधुकर नहीं गुञ्जार करते हैं

'प्रसाद' उसको न भूलो तुम, तुम्हारा जो कि प्रेमी है
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं

इसके बाद 'आँसू' (१९२६) तक इन प्रेम-कविताओं की परम्परा बराबर चलती है। यही नहीं, लहर (१९३५) में भी इस प्रकार की कविताओं के दर्शन हो जाते हैं। प्रेम के साथ निराशा का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। अतः 'काननकुसुम' में ही प्रेम की पीड़ा के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति प्रगट होती है। प्रेम की पीड़ा छाया-वादी काव्य का प्रिय विषय है और वह लौकिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों पर घटाई जा सकती है। कवि कहता है—

मैं तो तुमको भूल गया हूँ
पाकर प्रेममयी पीड़ा

उर्दू-कवियों के काव्य में इस दुःखवाद की परम्परा है। प्रेमी को वियोग की घड़ियाँ मिलन से अधिक प्रिय होती है। सच तो यह है कि प्रसाद के प्रेमकाव्य पर शैली और विचारधारा दोनों के विचार से उर्दू-फारसी की कविता का गहरा प्रभाव है। इस प्रभाव को समझे बिना उसे भली भाँति ग्रहण ही नहीं किया जा सकता। 'झरना' में वियोग-भावना अत्यन्त बलवती है। कवि-प्रेमिका की निष्ठुरता का वर्णन करता हुआ नहीं थकता—

सुधा में मिला दिया क्यों गरल
पिलाया तुमने कैसा तरल
माँगा होकर दीन
कण्ठ सींचने के लिए
गर्म झील का मीन
निर्दय तुमने यह क्या किया ?
सुना था, तुम हो, सुन्दर, सरल।
('सुधा में गरल')

एक अन्य कविता में कवि बताता है कि अतिथि रूप में प्रेम चुप-चुप हृदय में घुस गया, परन्तु जान पड़ा, वह 'नाहर' था, अतिथि नहीं था—

उसको कहते 'प्रेम'
अरे, अब जाना—
लगे कठिन नखरेख
तभी पहचाना

कभी वह यह कहकर आश्वासन पा लेता है—'रे मन, न कर तू

कभी दूर का प्रेम' कभी प्रियतम को अपने हृदय की शुद्धता परखने का दावा करता है—कभी मिलन क्षण की याद करता है —

शुद्ध सुवर्ण हृदय है, प्रियतम,
तुमको शंका केवल है। (कसौटी)

कभी मिलन-क्षण की याद करता है—

नियत था—पर हम दोनों थे शांत
वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दांत
कहा जब व्याकुल हो उनसे
"मिलेगा कब ऐसा एकांत ?"

'होली की रात' शीर्षक कविता में कवि व्यंग करता है—उसके हृदय में जो होली जल रही है—

उड़ा दो मत गुलाल-सी हाय
अरे अभिलाषाओं की धूल,
और ही रंग नहीं लग जाय
मधुर मञ्जरियाँ जावें भूल—
विश्व में ऐसा शीतल खेल
हृदय में जलन रहे, क्या बात !
स्नेह से जलती होली खेल
बना ली, हाँ, होली की रात
(होली की रात)

एक अन्य कविता (उपेक्षा करना) में कवि स्पष्ट ही इस लौकिक प्रेम की बात कहता है—

किसी पर मरना यही तो दुख है
'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है

'आँसू' भी विरहजन्य वेदना का खंडकाव्य है। हिन्दी प्रेम-काव्य में इसका स्थान प्रमुख रहेगा, परन्तु यह प्रारम्भिक काव्य में नहीं

आता। यह स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम प्रसाद की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति थी। उनकी प्रारम्भिक आध्यात्मिक कविताएँ 'गीतांजलि' से प्रभावित हैं। परन्तु उनका प्रेमकाव्य उनकी अपनी चीज़ है। वह कवि का जीवन-इतिहास है। परन्तु पहले कुछ आध्यात्मिक गीतों से प्रभावित होकर जनता उनके लौकिक काव्य में पारमार्थिक अर्थ ढूँढ़ने लगी। फल यह हुआ कि कविता समझ में ही नहीं आई। इसमें प्रसाद का कोई दोष नहीं था। परन्तु इस अस्पष्टता ने नई कविता को उपहास का विषय बना दिया।

परन्तु प्रसाद के काव्य में विषय की नवीनता ही नहीं थी, विचार की नई रेखाएँ ही उन्होंने नहीं गढ़ी, उन्होंने इन विचारों के प्रकाशन के लिए नई शैलियों और नए छन्दों का निर्माण किया। इस विषय में उनके प्रारम्भिक काल की कविताएँ और भी प्रयोगात्मक हैं। शैली के विषय में दो विशेषताएँ हैं : १ कल्पना का आग्रह और २ लाक्षणिक प्रयोग

१ कल्पना का आग्रह—

१६०६ के लगभग प्रसाद ने 'कल्पना' शीर्षक एक कविता लिखी है। कविता ब्रजभाषा में है। कवि कल्पना के खेलों का वर्णन करता हुआ कहता है—

हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवनप्रान
तुम विशद व्योम समान
तव अंत नर नहिं जान

अंत में वह कल्पना के आनन्द का आह्वान करता हुआ कह रहा है—

तव शक्ति लहि अनमोल
कवि करत अद्भुत खेल

कहि दृग स्वविन्दु तुपार
गुहि देत मुक्ताहार
तुम दान करि आनन्द
हिय को करहुँ सानन्द
नहिं यह विपय संसार
तहँ कहाँ शांति बयार
(कला १, किरण ५)

इसके बाद ही 'सांध्यतारा' कविता में हम कवि के कल्पना-जन्य विलास का अद्भुत चमत्कार देखते हैं। इस कविता में संध्यातारा को वेणी में ग्रथित मणि, अनंत तरङ्गसागर पर तैरता हुआ जहाज़, और निशा-महिषी का राजचिह्न कहा है। पंत की 'पल्लव' की कविताओं में छायावादी कवियों के कल्पना प्रेम का सब से उत्कृष्ट प्रमाण पाते हैं। वहाँ तो कवि कल्पनाजन्यचित्रों का ढेर पर ढेर लगाता चला जाता है। इतना बड़ा यह ढेर लग जाता है कि मन थक जाता है। इन चित्रों के चमत्कार में मन भले ही खो जाये, आलंबन का रूप इतना धुँधला पड़ा जाता है कि उसके संबंध में कोई जिज्ञासा शांत नहीं होती। कवि 'बापू' (गांधीजी) पर लिखे, या 'सांध्यतारा' पर, या 'शरद' पर, एक ही तरह की उपमाएँ, एक ही तरह का कल्पना-छल, एक ही शब्दकोप। कल्पना के इस अतिरेक ने छायावाद-काव्य को खिलवाड़ बना डाला। अनुकरण करने वालों को यही चीज़ सबसे सरल लगी। फल यह हुआ कि छायावाद-काव्य में जितने कल्पना-चित्र हैं, उतने एक हज़ार वर्ष तक चलते हुए सारे हिन्दी काव्य में नहीं मिलेंगे।

(२) लाक्षणिक प्रयोग—

'प्रसाद' के प्रारम्भिक काव्य से ही विशिष्ट भंगिमा की ओर उनका आग्रह झलकता है। वास्तव में प्रसाद 'छायावाद' की व्याख्या

करते हुए उसे अभिव्यंजना का एक रूप मान लेते हैं। उनके लिए यही उसका सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। वे लिखते हैं—"ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यन्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यान्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद-योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी।" इस प्रकार प्रसाद 'छायावाद' को प्रधानतः शब्द, शब्द-भंगिमा और शैली के क्षेत्र में एक क्रांति मानते हैं। इसे कविता का बाह्यांग कहें तो भी कुछ अनुचित नहीं होगा। इसके चार अंग थे :

(१) नई पद-योजना

(२) नई शैली

(३) नया वाक्यविन्यास जिसमें सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भावों में एक तड़प उत्पन्न कर दे।

(४) आभ्यन्तर भावों के लिये शब्दों की नवीन भंगिमा। 'प्रसाद' ने छायावाद के इसी बाह्यपक्ष की ओर अधिक बल दिया है। वे कहते हैं—"बाह्य उपाधि से हटकर अन्तरहेतु की ओर कवि-कर्म प्रेरित हुआ। इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई, हिंदी में वे पहले कम समझे जाते थे; किन्तु शब्दों में भिन्न प्रयोग से स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष का नवीन अर्थ-द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का बड़ा हाथ होता है। अर्थ-बोध व्यवहार पर निर्भर है, शब्दशास्त्र में पर्याय-वाची और अनेकार्थवादी शब्द इसके प्रमाण हैं। इसी अर्थ-चमत्कार का महात्म्य है कि कवि की वाणी में अभिधा से विलक्षण अर्थ साहित्य में मान्य हुए। ध्वनिकार ने इसी पर कहा है : प्रतीयमानं पुनरन्य

देववस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्' । अभिव्यक्ति का यह ढंग निराला है और अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। इसीलिए प्राचीनों ने कहा है—

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदंगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥

मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया है। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित से कहा है—

प्रतिभा प्रथमोद्भेद समये यत्र वक्रता ।
शब्दाभिधेययोरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते ॥

शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छिति, छाया और कांति का सृजन करती है। इसके वैचित्र्य का सृजन करना ही विदग्ध कवि का काम है।"

अभिव्यक्ति के इस नये ढंग की प्रसाद ने प्राचीनों की उक्तियों के सहारे व्याख्या की है। उन्होंने बताया है, "यह कोई नई वस्तु नहीं। भारतीय काव्य-परम्परा में बराबर इसका प्रयोग रहा है और आनन्द-वर्द्धन और कुन्तक जैसे आचार्यों ने साहित्यशास्त्रों में इसकी व्याख्या की है । कवि अर्थ से कुछ अधिक प्रगट करना चाहता है । इसके लिए वह एक नई शैली पकड़ता है। अर्थ से अधिक जो है, इसे प्राचीनों ने 'लावण्य', 'छाया', 'विच्छित्ति', 'वक्रता', 'वैदग्ध मैत्री' नाम से प्रगट किया है। इसे ध्वनि भी कहते हैं। यह ध्वनि प्रबन्ध, वाक्य, पद और वर्ण में दीप्त रहती है । कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा के भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी-सुलभ श्री की बहिन 'ह्री' है, घूँघट वाली

लज्जा नहीं । संस्कृत साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है । इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष-काल में अधिक महत्त्व था । आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की थी, किन्तु आंतर अर्थ-वैचित्र्य को प्रगट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था । इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं । उन्होंने उपमाओं में भी आंतर सारूप्य खोजने का प्रयत्न किया है । 'निरहंकार मृगांक', 'पृथ्वी गतयौवना', 'संवेदन मिवाम्बरं,' मेघ के लिए 'जनपदवधू लोचनैः पीयमानः' या कामदेव के कुसुमशर के लिए 'विश्वसनीयमायुधं'—ये सब प्रयोग बाह्य सादृश्य से अधिक आन्तर सादृश्य को प्रगट करने वाले हैं ।" "इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है । अलंकार के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक हैं ।" "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं ।"

इस प्रकार के लाक्षणिक काव्य का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण 'आँसू' (१९२५, ३३) है यद्यपि 'झरना' की कविताओं में १९१७-१९ के आस-पास प्रसाद ने अपनी इस नई शैली का प्रयोग आरम्भ कर दिया था । ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रसाद ने इस लाक्षणिक शैली के ये उपकरण माने हैं—

(१) शब्दों के नवीन सार्थक प्रयोग

(२) (छायामयी वक्रता के लिए) सर्वनामों का प्रयोग जैसे "वे आँखें कुछ कहती हैं ।"

(३) वैदग्ध्यमय वाग्भंगी (शब्द और अर्थ की वक्रता) जिसके द्वारा अर्थ-वैचित्र्य और चमत्कार की सृष्टि हो ।

(४) आन्तर स्वरूप-प्रधान उपमाओं का प्रयोग । अलंकार के भीतर आने पर भी ये उपमाएँ उनसे कुछ अधिक हैं ।

(५) प्रतीकों का प्रयोग। 'गीतिका' की भूमिका में निराला के काव्य की व्याख्या करते हुए प्रसाद ने लिखा है कि प्रत्येक युग की कविता अपने लिए अलग प्रतीक चुन लेती है। छायावाद-काव्य में प्रतीकों का प्रयोग इतना अधिक हुआ कि वह इस पृथ्वी की चीज़ नहीं रहा। अनेक नए प्रतीक आयें। कुछ पुराने प्रतीक भी रहे। जैसे अभिसार, मिलन, विरह। संतकाव्य में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। आत्मा-परमात्मा के मिलन-वियोग का वर्णन करते हुए कवि इसी प्रतीक-शैली का सहारा लेता है। 'इन्दु' (१९१४) में 'खोलो द्वार' शीर्षक प्रसाद की कविता प्रकाशित हुई है—

शिशिर कणों से लदी हुई कमली के भीगे हैं सब तार
चलता है पश्चिम का मारुत लेकर भी बरफ़ों का भार
भीग रहा है रजनी का भी सुन्दर कोमल कवरी-भार
गर मकिरण-सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार
धूल लगी हैं काँटे जैसी पग-पग पर था दुःख अपार
किसी तरह से भूला-भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार
डरो न प्रियतम धूल-धूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार
धो डाले हैं इनको प्रियवर इन आँखों के आँसू धार

'संतकाव्य', 'भक्तकाव्य' और 'रीतिकाव्य' तीनों में इस अभिसार की परम्परा है। सन्तकाव्य में आत्मा परमात्मा के प्रति अभिसार करती है। भक्तिकाव्य में राधा-कृष्ण का अभिसार प्रिय विषय रहा है। रीति-काव्य की केन्द्रीय भावना ही अभिसार है :

दृगन में भाले परै पगन में छाले परै
तऊ लाल लालै परै रावरे दरस के

यह भाव बार-बार रीति-कविता में आता है। परन्तु प्राचीन काव्य में इस भाव को समझने में कोई दुविधा नहीं है। नए कवियों से इस अभिसार की आशा नहीं की जाती थी। वे तो रीतिकाल के विरोध में

एक नई काव्य-रीति खड़ी कर रहे थे। इसीसे जनता इस 'अभिसार' की बात को समझ नहीं सकी।

छंदों में नवीन प्रयोगों की बात कहना ही नहीं है। खड़ी बोली हिन्दी की कविता का प्रारम्भ हरिश्चंद ने किया, श्रीधर पाठक ने कवित्त-सवैया के अतिरिक्त कुछ नये छंद इस काव्य में जोड़े, मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध ने अनेक प्रयोग किये। परन्तु १९१३-१४ तक (जब प्रसाद क्षेत्र में आये) छंदों की जड़ता बनी हुई थी। नये भावों के प्रकाशन के लिए नये-नये छंदों का आयोजन नहीं हो रहा था। इन्दु-काल (१९०९—१६) में प्रसाद ने जितने नये छन्दों का प्रयोग किया है, उतने नये छन्दों का प्रयोग किसी अन्य छायावादी कवि ने नहीं किया। उन्होंने विदेशी छन्दों को भी अपनाया। ग़ज़ल, चतुष्पदी (सॉनेट), संबोधनात्मक गीति (Ode), त्रिपदी (बंगला छन्द), अतुकांत (Verse Libre), भिन्नतुकांत, पयार (बंगला छन्द)—न जाने कितने छन्द हैं। 'चौपाई' (१६ मात्रा) के तो अनेक नये प्रयोग हमें मिलते हैं। असम मात्रिक और विषम मात्रिक छन्दों के बहुत-से प्रयोग हमें 'झरना' (१९१४—१७) में मिल जायेंगे। सच तो यह है कि 'छायावादी' कवियों ने पहली बार खड़ी बोली के छन्दों को प्राण दिये। उन्हें जीवन-रस से सिद्ध किया। कहाँ द्विवेदी-युग के जड़, गतिहीन उल्लास-शून्य छन्द, कहाँ नये कवियों की संगीतमयी पद-योजना !

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९२६ ('आँसू' के प्रकाशन की तिथि) तक प्रसाद नये काव्य (छायावाद) की रूपरेखा स्थिर कर चुके थे। इस नये काव्य की विशेषताएँ थीं :

(१) विषय-जन्य विशेषताएँ

(क) आध्यात्मिक प्रेम की तितीक्षा

(ख) प्रेम की रहस्यमयता

(ग) पीड़ा का महत्वगान
(घ) कथाकाव्य के प्रति प्रेम
(ङ) प्रकृति-प्रेम
(च) वेदना की प्रधानता

(i) जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण
(ii) लघु और उपेक्षित जीवों और व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति
(iii) दुःख और वेदना की अनुभूति
(iv) व्यक्तिगत जीवन के दुःखों और अभावों का वास्तविक उल्लेख
(v) संकीर्ण संस्कारों के प्रति विद्रोह
(vi) मनुष्य की दुर्बलताओं का सहानुभूति-पूर्ण चित्रण
(vii) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों की परख
(viii) स्त्रियों के संबंध में नारीत्व की दृष्टि

(२) शैलीजन्य विशेषताएँ

(क) स्वानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति (व्यक्तिवाद)
(ख) भावों की सूक्ष्म व्यंजना
(ग) काव्य में नाटकीयता का प्रयोग
(घ) लाक्षणिकता (आभ्यंतर वर्णन के लिए शब्दों की नई भावभंगिमा)
(ङ) कल्पना का उद्रेक
(च) नया वाक्य-विन्यास जिसमें सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भाव में एक तड़प उत्पन्न कर दे।

(३) छन्दगत विशेषताएँ

(क) अनेक नये छन्दों का प्रयोग

(ख) गीतात्मकता

ये सब विशेषताएँ प्रसाद के प्रारंभिक काव्य (१६०६-१४) में ही पुष्ट हो जाती हैं। इसके बाद उनका 'आँसू' काल (१६२४-२६) आरम्भ होता है। 'आँसू' इस विकास का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। १६२६ ई० में 'आँसू' पहली बार प्रकाशित हुआ। छायावाद-काव्य की यह पहली लोकप्रिय चीज़ है। १६३३ के दूसरे और १६३६ के तीसरे संस्करणों में यह काव्य नई पंक्तियों के साथ फिर-फिर प्रकाशित हुआ। जिस रूप में यह आज प्राप्त है, वह इसका प्रौढ़तम रूप है। कवि बार-बार परिवर्तन-परिवर्द्धन करता गया है। 'आँसू' में कोई कहानी नहीं, केवल कहानी का आभास मिलता है। इसलिए अर्थ अस्पष्ट ही रह जाते हैं। जहाँ काव्य की वीथिका और लेखक की मनोभूमि के संबंध में भी अटकल लगानी पड़ती है, वहाँ यही दशा होती है। कवि ने किसी से प्रेम किया है। यह प्रेम-व्यापार अनेक परिस्थितियों में अनेक दिनों तक चलता रहता है। परतु सहसा यह समाप्त हो जाता है। कदाचित् किसी कारण से प्रेमपात्र ने 'प्रेमी' को अपनाना छोड़ दिया। जहाँ मिलन सुख की तरंगें थीं, वहाँ विरह की तप्त झंझा चलने लगी। 'आँसू' काव्य इसी विरह-कथा का आधुनिक रूप है।

पहले संस्करण में 'आँसू' विशुद्ध प्रेमकाव्य है। उसका विषय है लौकिक प्रेम। परन्तु दूसरे-तीसरे संस्करणों में अनेक नये छन्द जोड़कर उसे आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है जिससे पाठक की उलझन और भी बढ़ जाती है। 'प्रसाद' के इस प्रेमकाव्य को समझने के लिए बड़ी कठिनाई यह है कि वे उर्दू-फ़ारसी के काव्य से काफ़ी प्रभावित हैं और उनकी संस्कृत-गर्भित भाषा और लक्षणा से प्रभावित पाठक यह बात जान नहीं पाता। इसका फल यह होता है कि सारा काव्य ही अस्पष्ट हो जाता है। उर्दू साहित्य के इस प्रभाव ने

'आँसू' को अस्पष्ट बना दिया है। बात कहने की लाक्षणिक शैली में जो अस्पष्टता आ जाती है, उसे हटा देने पर इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश काव्य उपालम्भ मात्र है। प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-दिन कितने सुख के दिन थे। विरह के दिनों में उनकी स्मृति उठती है और प्रेमी कवि आकुल हो उठता है। वे प्रभात, वे सायं, वे चाँदनी की धुली हुई रातें। अब तो एकाकी जीवन बिताना है, अकेले तारे गिनना है। अंत में उपालंभ देते-देते कवि थक जाता है। इस विचार से उसे शांति मिल जाती है कि समय आयेगा, तब यह दुःख भी भुला दिया जायगा। वह सोचता है—यह तो मानव-जीवन है। इसमें विरह-मिलन का परिणय चलता रहता है। सुख-दुःख, विरह-मिलन ये दोनों तो मन के खेल हैं। अतः हताश होना कैसा ! समय का प्रवाह दुःख-सुख के आवर्तों-विवर्तों के ऊपर एक महान शांति-चक्र की भाँति बहता रहता है। यह दार्शनिक निस्पृहता उसे शक्ति देती है। वह निश्चेतन रहकर उस दिन की प्रतीक्षा करने लगता है जब मन निःस्पृह भाव से सुख-दुःख के ऊपर उठ जायेगा। उस समय प्रेमी के मन को शांति प्राप्त होगी, वेदना की झंझा रुक जायेगी और तब यही विच्छेद अनन्त मिलन में बदल जायेगा।

'लहर' (१६३५) और 'कामायनी' (१६३७) प्रसाद की अंतिम रचनाएँ हैं। 'आँसू' ने एक नई मूर्तिमत्ता, एक नये कल्पना-विलास, एक नूतन स्वातन्त्र्य दिशा की ओर संकेत किया था। 'लहर' और 'कामायनी' इन्हीं प्रवृत्तियों की श्रेष्ठतम परिणति हैं। 'लहर' में जयशंकरप्रसाद की प्रौढ़तम प्रगीतियों और कुछ मुक्त छन्दों का संग्रह है। यह संग्रह कवि को प्रौढ़तम रूप में हमारे सामने रखता है। इस समय कवि 'कामायनी' को समाप्त कर रहा था। इस संग्रह की कविताओं को भली-भाँति समझ लेने पर हमें प्रसाद की सभी प्रवृत्तियाँ सुन्दर ढङ्ग से समझ में आती हैं। 'लहर' की कविताओं की चार दिशाएँ हैं—(१) रहस्यवाद, (२) प्रकृतिवाद, (३) करुणा, (४) कथा। 'अशोक की

चिता', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेरसिंह का आत्मसमर्पण' और 'प्रलय की छाया' चार कथात्मक कविताएँ हैं। इन सब कथाओं का मूलस्रोत ऐतिहासिक है। इस श्रेणी की कविताएँ आधुनिक हिन्दी साहित्य में विरल हैं। निराला की 'शिवाजी का पत्र' इसी श्रेणी की कविता है। इन कविताओं की विशेषता उनके विषय से सम्बन्धित नहीं है। वे मानसिक और कलात्मक चित्रण के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं का हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान रहेगा। यह तो हुई नई प्रवृत्ति। शेष तीनों प्रवृत्तियाँ प्रारम्भिक काल से बराबर पुष्ट, बराबर स्वस्थ होती चली आ रही हैं। कहीं कवि शुद्ध रहस्यवादी भूमि पर प्रतिष्ठित होकर जीव-ब्रह्म की लुका-छिपी को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में रखता है, कहीं प्रियतम की आँखमिचौनी और उसकी आतुर अपलक प्रतीक्षा उसे पागल बना देती है। कहीं करुणा और वेदना को ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य मानकर कवि उन्हीं में लीन हो जाता है। "आँसू" के बाद "लहर" प्रसाद का सबसे सुन्दर काव्यग्रन्थ है। इसकी प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ विलास और ऐश्वर्य की वह झांकी सामने रखती हैं जो प्रसाद ने अपने बचपन में देखी थी। कवि पाता है, उसका सोने का संसार खो गया है। उसे लगता है, प्रकृति का वैभव उसके लिए सुख का वरदान नहीं लाता। लगता है जैसे प्रसाद का व्यक्तित्व इन रचनाओं में तद्रूप हो गया हो। प्रसाद विलास, ऐश्वर्य और मादकता के कवि हैं। उन्होंने अतीत के टूटे हुए स्वप्न और विलासमय रङ्गों में रँगी सायं-प्रात का विशद चित्रण किया है। स्वयं अपने में निमज्जित हो, कालिदास और रवीन्द्रनाथ के प्रेमविलास और रहस्य की मादक कल्पना को उन्होंने अपनाया है और उसे सोने के पत्रों में सजा कर रखा है। कला की ये विलास से सँवारी रूपरेखाएँ जन-काव्य की श्रेणी की चीज़ नहीं, परन्तु एक विशेषवर्ग की एक विशेष श्रेणी के काव्य का अन्यतम रूप हैं।

अन्त में, हम देखते हैं कि इन्दु (१९०९) से लेकर 'कामायनी'

(१६३६) तक प्रसाद ने जो काव्य लिखा वह अधिक नहीं, परन्तु जब हम उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों को देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने काव्य को बड़ी सावधानी से बनाया-सँवारा है। इतनी बड़ी साधना कदाचित् किसी आधुनिक कवि को नहीं करनी पड़ी। 'साधना' से हमारा तात्पर्य कला और विचार (चिंतन) की साधना से है। कहाँ 'भारतेन्दु' में प्रकाशित व्रजभाषा की वह तुकबंदियाँ और कहाँ कामायनी का हिमचुंबी ऐश्वर्य। इस कवि ने नई भाषा गढ़ी, नई शैली का आविष्कार किया, अनेक नये छन्द बनाये और नये भावों, नये विचारों, नये दृष्टिकोणों को रस देकर काव्यभूमि में उतारा। उपन्यास, कहानी और नाटक के क्षेत्र में भी प्रसाद की सार्वभौमिक प्रतिभा ने बहुत कुछ दिया—सच तो यह है कि उन्होंने नये साहित्य के प्रत्येक अंग में क्रांति को जन्म दिया। परन्तु इन क्षेत्रों में और-और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। काव्य के क्षेत्र में तो वे अकेले थे। पंत और निराला कुछ बाद में आये। उन्होंने इतनी नई प्रवृत्तियाँ नहीं चलाईं; प्रसाद द्वारा चलाई हुई प्रवृत्तियों को ही अपनी प्रतिभा का बल दिया। निराला में विद्रोह का तेज अधिक है, पंत में अलंकृत सज्जा अधिक है, परन्तु नये काव्य के प्राण तो 'प्रसाद' हैं। उनमें बंगलापन नहीं है, अंग्रेज़ीपन नहीं है, वे नये काव्य के विष्णु हैं। निराला ने रुद्र की तरह तीक्ष्ण प्रहार कर जो पुराना था उसे तोड़-फोड़ कर जनता को चकित कर दिया, पंत ने अनेक नये काव्य-लोकों को जन्म दिया, परंतु पच्चीस वर्ष तक नई प्रवृत्तियों का पोषण प्रसाद की प्रतिभा को ही करना पड़ा।

इस आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा का चमत्कार कामायनी (१६३६) में देखने को मिलता है। यह महाकाव्य जहाँ एक ओर रामचरितमानस के बाद महाकाव्य-परम्परा को फिर से स्थापित करता है, वहाँ दूसरी ओर छायावाद-काव्य की गीतिप्रधान, लाक्षणिक कविता का भी प्रतिनिधित्व करता है। पूर्व के काव्य में तो इस तरह

की कोई चीज़ है ही नहीं, पश्चिम के काव्य में भी इस श्रेणी की चीज़ें कम मिलेंगी। गेटे (Goethe) का 'फ़ास्ट' (Faust) और हार्डी (Hardy) का 'डाइनेस्ट' (Dynast) शैली और विचारधारा के प्रौढ़ता की दृष्टि से इस रचना से समानता अवश्य रखते हैं। स्वयंम् प्रसादजी के काव्य में 'कामना' (१६२७) इसी श्रेणी का नाटकीय प्रयोग है। 'कामना' में प्रसाद ने आधुनिक वित्त-प्रधान मशीनी सभ्यता पर व्यङ्ग किया है। इस मशीनी सभ्यता के के विरुद्ध उन्होंने कृषिप्रधान सभ्यता (Pastoral Civilisation) की आवाज़ उठाई। 'एक घूंट' में उन्होंने औपनैषदिक आश्रमों की सभ्यता की ओर इशारा किया। परन्तु इन समाधानों से उनकी तुष्टि नहीं हुई जान पड़ती। आधुनिक मशीनी सभ्यता इतनी हलकी नहीं कि उसे सहज में ही उड़ाया जा सके। इसीलिये 'कामायनी' में प्रसाद को और ऊपर उठकर चिंतन के आधार पर नया समाधान उपस्थित करना पड़ा। उन्होंने आधुनिक विज्ञानवाद को 'कर्मवाद' माना। उन्होंने ज्ञान, कर्म और भाव के समन्वय में ही जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि संभव समझी। इसी से 'कामायनी' लिखने की आवश्यकता उन्हें जान पड़ी। तीन सौ वर्ष पहले तुलसी ने रामाश्रित भक्तिमय जीवन के आदर्श को हिन्दी प्रदेश की जनता के सामने रखा था तब से भारतीय जीवन पर अनेक प्रभाव पड़े। पश्चिम की सक्रिय कर्मप्रधान ऐहिकता से संपर्क बढ़ा। एक नये जीवन-दर्शन की पुकार हुई। आधुनिक युग में दयानन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, गांधी और जवाहरलाल प्रभृति महापुरुषों ने नई परिस्थितियों के अनुसार नये जीवन-दर्शन गढ़ने के प्रयत्न किये। अपने साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द और प्रसाद इस ओर अग्रसर हुए। 'कामायनी' की महत्ता यही नया जीवन-दर्शन है। प्रसाद का सारा काव्य इस नये दर्शन की भूमिका है।

'कामायनी' के नायक मनु हैं। इन्हीं देवसंतान को लेकर कथा

चलती है। जलप्रलय में सारी देवसृष्टि जलमग्न हो गई। केवल कुछ देव-संतान बच रहे। मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि इसी प्रकार की देव-संतान थे। जलप्रलय से संतप्त मनु पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर बैठकर जल-मग्न पृथ्वी का धीरे-धीरे निकलना देखते थे। देव-संतान के मन में पहली बार चिन्ता का जन्म हुआ। उषा का उदय हुआ। प्रकृति एक बार फिर हँसने लगी। मनु के मन में भी आशा का संचार हुआ। उन्होंने एक गुहा में अपना स्थान बनाया और अग्निहोत्र प्रारंभ कर एक बार फिर कर्ममयी देवसंस्कृति का आवाहन किया। एक दिन यों ही समुद्रतट पर अकस्मात् श्रद्धा से भेंट हो गई। श्रद्धा उन्हें तपमय जीवन से हटा कर दया, माया, ममता-संपन्न मानव-जीवन की ओर अग्रसर करती है। श्रद्धा मनु के साथ रहने लगी। उधर धीरे-धीरे काम के स्वर मनु के हृदय में बोलने लगे। जीवन के अनेक उपकरण इकट्ठे होने लगे। काम-बाला श्रद्धा के प्रति उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। मनु यज्ञ और कर्म में लग गये। जल-विप्लव से बचे हुए असुर पुरोहित किलात और आकुलि यज्ञ के लिए प्रस्तुत होते हैं। मनुपशु-यज्ञ करते हैं। परन्तु श्रद्धा इस पशुबलि से कुण्ठित हो जाती है। परन्तु श्रद्धा को मानते देर नहीं लगती। मनु जीवन में एक नये सुख का अनुभव करते हैं। इस नारी-विजय के बाद मनु का जीवन बदल जाता है। उनमें उच्छृङ्खल कर्मठता जा उठती है। उधर श्रद्धा आसन्न-प्रसव की चाह में अधीर है। वह एक सुन्दर लता-कुञ्ज बनाती है। मनु नहीं चाहते कि श्रद्धा का प्रेम इस तरह बँट जाय। वह स्वच्छन्द बने रहेंगे। उसमें ईर्ष्या का उदय होता है और वह श्रद्धा को छोड़ कर चला जाता है। हृदय में तर्क-वितर्क का माया-जाल लिये अंतः-संघर्ष में तपते हुए मनु सरस्वती के किनारे घूमते हैं। वहीं उन्हें सारस्वत प्रदेश की अधिष्टात्री देवी इड़ा का अकस्मात् परिचय होता है। सारस्वत प्रदेश उजड़ चुका है—इड़ा मनु का स्वागत करती है और शासन-सूत्र उसके हाथ में दे देती है।

उधर श्रद्धा प्रतीक्षा में है। उसकी आकुल विरह-वेदना का अत्यंत स्पष्ट चित्र उपस्थित किया गया है। इस सारे दुखी वातावरण में उसका एकमात्र सहारा है उसका बालक मानव (मनु-पुत्र) जो पिता का मुख नहीं देख पाया है। श्रद्धा (कामायनी) स्वप्न देखती है—मनु किसी दूर प्रदेश में किसी सुकुमारी (इड़ा) के संयोग से एक नई देवसृष्टि की रचना करते हैं, परन्तु प्रजा असंतुष्ट होकर विरोध पर तुल जाती है। वास्तव में श्रद्धा का स्वप्न सत्य का आभास मात्र है। सारस्वत प्रदेश में प्रजापक्षी किरात और आकुलि (असुर) और राजपक्षी मनु (देव) में भीषण युद्ध हुआ जिसमें मनु आहत होकर गिर पड़े। युद्ध के बाद सारस्वत प्रदेश जैसे उजड़ गया और मनु को भीषण पश्चात्ताप ने घेर लिया। इड़ा तर्क-वितर्क करती बैठी थी कि श्रद्धा की पुकार कानों में आई जो 'मानव' का हाथ पकड़े मनु को खोजती हुई आ पहुँची थी। वेदी-ज्वाला के प्रकाश में घायल मनु को देखकर श्रद्धा का हृदय उमड़ पड़ा। मनु ने आँखें खोलीं। बिछुड़े मिले। श्रद्धा के स्नेहोपचार ने मनु की आँधी को शांत किया, परंतु प्रातःकाल सबने देखा, मनु नहीं है। शांति की खोज में वे श्रद्धा, इड़ा और मानव को छोड़कर हिमालय-प्रदेश में कहीं दूर चले गये। सारस्वत प्रदेश को त्याग इड़ा, मानव और श्रद्धा मनु की खोज में निकले और मंदाकिनी के किनारे एक पर्वत प्रदेश में तप करते हुए मनु मिल गये। श्रद्धा मनु को ज्ञान, कर्म और भावलोक (त्रिपुर) का दर्शन कराती है और दोनों प्राणी इसी संधिभूमि में आनंद की साधना करते हैं। इड़ा और मानव इन संसार-त्यागी महान् आत्माओं से मिलने आते हैं। मनु मानव को उपदेश देते हैं। प्रकृति के मादन दृश्य के साथ पटाक्षेप। इस प्रकार कामायनी की कथावस्तु समाप्त होती है।

इस कथावस्तु में कोई विशेषता नहीं है। इसके नीचे जो दर्शन और काव्य की फल्गु बहती है, वही अधिक महत्त्वपूर्ण है। कवि का

संदेश है कि तर्क (इड़ा), श्रद्धा (श्रद्धा) और मनन (मनु) पूर्ण कर्म-निरत मानव ही नये संसार की नींव डालेगा। दार्शनिक परिभाषा में इसे ज्ञान, भाव और कर्म की त्रिमूर्ति का एकीकरण कहेंगे। इसी एकीकरण में आनन्द का चिर विलास है। तांडवनृत्य पर नटेश (शंकर) सत्ता में व्याप्त महानन्द के प्रतीक हैं। इस सत्य तक पहुँचने वाली श्रद्धा ही है जो मनु का नेतृत्व करती है और उन्हें इच्छा (इड़ा), ज्ञान (मनु) और भाव के त्रिकोण के बीच में आनन्दपिंड (जीव की चिदानन्दमयी सत्ता) का दर्शन कराती है। श्रद्धा आनन्द की प्रेरणा-शक्ति है। इसी के इंगित से ज्ञान, इच्छा और कर्म में समन्वय स्थापित होता है। ज्ञान, कर्म और भाव (इच्छा) के अप्रतिहत आलिंगन को ही अमृत-तत्त्व (जीवन की पूर्णता) कहेंगे। तीनों का अलग रहना मृत्यु है, दुःख है। इसी त्रिपुर को वध करने के कारण शिव त्रिपुरारी हैं। आनन्द (शिव) में ज्ञान, भाव और कर्म के त्रिगुणों का परिहार है। आनन्द शिव (कल्याणमूर्ति) है। इसी आनन्द की प्राप्ति भावी जीवनदर्शन होगा। इसके लिए हृदय-बुद्धि का सामंजस्य आवश्यक है। इड़ा (बुद्धि) और श्रद्धा के सहयोग से मानव (मननशील प्राणी) सच्चे स्वर्ग-सुख की प्राप्ति कर सकेगा। ध्येय न इड़ा है, न श्रद्धा, आनन्द है। इस विश्व के मूल में आनन्द ही है, जिसके प्रतीक-रूप में ऋषियों ने शंकर के तांडवनृत्य की कल्पना की है। प्रत्येक जीव इस महानन्द का प्रतीक है, स्फुलिंग है। जिस प्रकार ज्वाला अरणि द्वारा प्रगट होती है, इसी प्रकार श्रद्धा-बुद्धि के समन्वय से मुक्त जीवन में आनन्द की अग्नि स्वतः फूट पड़ेगी। जीवन के भीतर का आनन्द बाहर प्रगट होगा और वह इस विश्वप्रपंच में शिव (कल्याण) के तांडवनृत्य (आन्दोल्लास) का दर्शन करेगा। इस जीवन-दर्शन को प्रगट करने की प्रसाद को हिन्दी भाषा की नई संस्कृति गढ़ना पड़ी। विश्व के आनन्दरूप का वर्णन कवि इस तरह करता है:—

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
यह रूप बदलता है शत शत
कण विरह-मिलन-मय नृत्य निरत
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत
तल्लीनपूर्ण है एक राग
झंकृत है केवल जाग जाग

जीवन की रहस्यमयता का चित्रण करते हुए वह लिखता है—

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा प्रवाह-सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर
ले साथ विकल परमाणु पुंज नभ, अनिल अनल क्षिति और नीर
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन
प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक हीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
संघर्ष कर रहा सा सब से, सबसे विराग, सबसे पर ममता
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर
किस लक्ष्यभेद को शून्य चीर ?

परन्तु दर्शन ही नहीं प्रेम, जीवन, मानवीय मनोभाव (लज्जा, ईर्ष्या, क्षमा, करुणा इत्यादि), प्रकृति सभी को नई रूपरेखा में बाँधा गया है। प्रलय का एक दृश्य देखिये—

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी
चली आ रही फेन उगलतीं
फन फैलाये व्यालों सी
धँसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निःश्वास

और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास
तरल तरंगाघातों से उस
क्रुद्ध सिंधु के, विचलित सी
व्यस्त महाकच्छप-सी धरणी
ऊर्मि चूमती विचलित सी
उड़ने लगा विलास वेग सा
वह अति भैरव जलसंघात
तरल तिमिरमय प्रलय पवन का
होता आलिंगन प्रतिघात

प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता के पीछे कवि एक अनिर्वचनीय महान की झाँकी देखता है—

महानील उस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्वान
ग्रह-नक्षत्र और विद्युतकण करते हैं किसका संधान
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए
तृण-वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस से सिंचे हुए
सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ
सदा मौन से प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ

प्रेम के आत्मसमर्पण का एक सुन्दर चित्र है—

मधुर व्रीड़ा मिश्र चिंता साथ ले उल्लास
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास
गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदंब-सा था भरा गद्गद् बोल

एक पुरुष-चित्र लीजिये—

तरुण तपस्वी सा वह बैठा
साधन करता सुर श्मशान
नीचे प्रलयसिंधु लहरों का
होता था सकरुण अवसान
उसी तपस्वी से लंबे थे
देवदारु दो चार खड़े
हुए हिम-धवल जैसे पत्थर
बनकर ठिठुरे रहे अड़े
अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएँ, लाल रक्त का
जिनमें होता था संचार
चिंता-कातर बदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओतप्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत

फिर गर्भिणी श्रद्धा का नारी चित्र है—

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँधे रहे पयोधर पीन आज
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज

सोने की सिकता में मानों
कालिंदी बहती भर उसास
स्वर्गंगा में इन्दीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास

सच तो यह है कि कामायनी का साहित्य-पक्ष भी उतना ही शक्तिशाली है जितना उसका दार्शनिक पक्ष। कामायनी छायावाद की श्रेष्ठतम निधि है। "उसमें एक नई कल्पनाशीलता, नूतन जागरूक चेतना, मानस-वृत्तियों की सूक्ष्मतर और प्रौढ़तर पकड़, एक विलक्षण अवसाद, विस्मय, संशय और कौतूहल जो नई चेतना का सूक्ष्म प्रभाव है, प्रगट हो रहा है। ये ही काव्य में छायावाद के उपकरण बनकर आये। इस नवीन प्रवर्त्तन के मूल में एक स्वातंत्र्य लालसा, शक्ति की अभिज्ञता और सांस्कृतिक द्वन्द की अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है।" सब जगह वह बराबर सफल नहीं है, परन्तु अपने क्षेत्र में उसकी सफलताएँ भी कम नहीं हैं। उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं का तो कामायनी भांडार ही है। कल्पना का इतना प्राचुर्य यहाँ है कि कहीं-कहीं इससे काव्य ही दुर्भेद्य बन जाता है। कहीं-कहीं इन नवीन उत्प्रेक्षाओं-उपमाओं के कारण काव्य इतना ऊपर उठ गया है कि हम संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य के सम्मुख उसे निःसंकोच भाव से उपस्थित कर सकते हैं। 'चिंता' और 'मृत्यु' पर प्रसाद की ये पंक्तियाँ अमर हैं—

ओ चिंता की पहली रेखा
अरी विश्ववन की व्याली
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण
प्रथम कंप सी मतवाली!
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल रेखा
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जलमाया की चल रेखा

इस ग्रहकक्षा की हलचल री
तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन को, और न
कुछ सुनने वाली, बहरी।
अरी व्याधि की सूत्रधारिणी
अरी आधि, मधुमय अभिशाप
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप
आह! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों में करका-घन सी
छिपी रहेगी अंतरतम में
सब के तू निगूढ़ धन सी

(चिंता)

मृत्यु, अरी चिर निद्रे! तेरा अंक हिमानी सा शीतल
तू अनन्त में लहर बनाती काल-जलधि की-सी हलचल
महानृत्य का विषम सम, अरी अखिल स्पंदनों की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है सृष्टि सदा देकर अभिशाप
अंधकार के अट्टहास-सी मुखरित सतत चिरंतन सत्य
छिपी सृष्टि के कण कण में तू यह सुन्दर रहस्य है नित्य
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घनमाला में
सौदामिनी-संधि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में

(मृत्यु)

इस प्रकार के शतशः नवीन और सुन्दर उपमानों की मदिर मादकता से कामायनी का पृष्ठ-पृष्ठ सुरभित है। जान पड़ता है, 'प्रसाद' ने स्वयं इस रचना में छन्द-छन्द पर रुक कर आनन्द प्राप्त किया है

और प्रत्येक छवि को कल्पना और कला की कूंची से सँवार-सँवार कर देखा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद-काव्य में 'प्रसाद' की देन सबसे महत्त्वपूर्ण है। इन्दुकाल (१६०६-१६) में प्रसाद ने जिन प्रवृत्तियों का श्रीगणेश किया वे ही आगे विकसित हुई। पंत और निराला का कविताकाल १६१६ के आस-पास आरम्भ होता है। तब तक प्रसाद अपना मार्ग निश्चित कर चुके थे। उन्होंने अधिक नहीं लिखा, परन्तु उन्होंने अपने युग के काव्य को एक निश्चित दिशा दी, इसमें कोई संदेह नहीं। 'आँसू' (१६२६) और 'कामायनी' (१६३६) प्रसाद की दो अमूल्य रचनाएँ हैं। वे सदैव हिंदी भारती का कंटहार बनी रहेंगी। 'आँसू' ने जिस नई शैली, नई वाग्भंगिमा, नये जीवनदर्शन को जन्म दिया उसकी पूर्ण परिणति 'कामायनी' में मिलती है। 'मानस' के बाद इतनी विशाल चित्रपटी लेकर, सारे मानव-जीवन को आत्मसात कर कोई अन्य काव्य नहीं लिखा गया। छायावाद-काव्य की सारी दुर्बलताएँ और उसकी सारी शक्ति केवल इस एक रचना में प्रतिबिंबित हो उठी हैं। जो हो, इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक हिन्दी काव्य को क्रांति के मार्ग पर अग्रसर करने वालों में प्रसाद सबसे आगे हैं। वे इस पथ पर आगे-आगे बढ़े, पंत और निराला उनके पीछे आए। उन्होंने इस क्रांति को और भी उग्र बना दिया रूढ़ियों पर नए-नए प्रहार किये, नई भाषा, नई शैलियाँ, नए छन्द गढ़े, परन्तु १६०६ में जिस नवयुवक ने धीमे स्वर में, अभिजात्य के सारे संयम के साथ रीतिकाल की कविता और द्विवेदी-युग के गद्य (काव्य) का विरोध किया, वह आज हमारी श्रद्धा की सब से श्रेष्ठ निधि है।

(ख) 'निराला'

छायावाद की कविता में सबसे क्रान्तिकारी, सबसे परुष व्यक्तित्व

'निराला' का है। अनामिका (१६२३) के साथ उन्होंने हिन्दी काव्य संसार में प्रवेश किया और 'मतवाला' (साप्ताहिक पत्र, कलकत्ता) में प्रकाशित होने पर उनकी कविताओं ने धूम मचा दी। परिमल (१६३०), गीतिका (१६३६), अनामिका (नया संग्रह, १६३६), तुलसीदास (१६३८) निराला के प्रसिद्ध काव्यसंग्रह हैं। १६३९ के लगभग निराला ने नई साहित्य-धारा (प्रगतिवाद) में योग देना आरम्भ किया और इसके बाद ही उनके काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए— कुकुरमुत्ता (१६४२), अणिमा (१६४३), बेला और नये पत्ते (१६४६)। इन संग्रहों में कवि का स्वर बदल गया है। नई भाषा, नए भाव। परन्तु कहीं-कहीं उस काव्य-परम्परा की झाँकी देखने को मिल जाती है जिसे हम छायावाद कह कर पुकारते हैं। निराला के विद्रोही, युगप्रवर्तक रूप की अभ्यर्थना पंत ने भी की है—

छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि तेरी कविता-धारा
मुक्त अबाध, अमंद, रजत-निर्झर-सी निःसृत—
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष अविजित !
स्फटिक शिलाओं से तूने वाणी का मन्दिर,
शिल्पि, बनाया—ज्योतिकलश निज यश का धर चिर

(युगवाणी, ६२)

चाहे काव्यकला की दृष्टि से प्रसाद और पंत निराला से आगे निकल गये हों, नई लीक पर निराला ही अधिक चले हैं। अपने विद्रोह से, अपनी प्रतिभा की शक्ति से उन्होंने छायावाद को बली बनाया है।

निराला का सबसे पहला संग्रह 'अनामिका' (१६२३) है। अनामिका में 'निराला' की वे कविताएँ संग्रहीत हैं जो 'नारायण', 'मतवाला' और 'समन्वय' में पहली बार प्रकाशित हुई थीं और जिन्होंने हिन्दी कविता में एक विशेष परिवर्तन की सूचना दी थी। उस समय इन

कविताओं की विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई, परन्तु साहित्य-समालोचकों और हिन्दी कविता की गतिविधि समझनेवालों का ध्यान उनकी ओर अवश्य गया। निराला का सबसे क्रान्तिकारी प्रस्ताव यह था कि काव्य की मुक्ति छंद-बन्धन से मुक्ति है। उत्कृष्ट काव्य के लिये छन्द का बन्धन अच्छी चीज़ नहीं है। वे कहते हैं—

माँ, जिस तरह चाहो बजाओ इस वीणा को,
यंत्र है;
सुनो तुम्हीं अपनी सुमधुर तान;
बिगड़ेगी वीणा तो सुधारोगी बाध्य हो।

कदाचित् मुक्तछन्द की प्रेरणा निराला को बँगला कवि गिरीशचंद्र घोष से मिली जिन्होंने अपने नाटकों में मुक्तछन्द का प्रयोग किया। अपने बँगला प्रवास में निराला गिरीशचन्द्र घोष के कुछ नाटक रंगमंच पर खेल भी चुके हैं। जो हो, यह क्रांतिकारी चीज थी। 'अनामिका' की प्रारंभिक कविताओं में कवि की प्रतिभा खुली नहीं है—वह मार्ग ढूंढ़ रहा है। 'अनामिका' (नई पुस्तक, १९३८) में उन्होंने अपनी वे कुछ प्रारम्भिक कविताएँ प्रकाशित कराई हैं जो पहले संग्रह में संग्रहीत नहीं हो सकी थीं। वे विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ के अनुवाद हैं। यदि मौलिक हैं तो इन दोनों का प्रभाव उनपर स्पष्ट रूप से लक्षित है। 'अनामिका' (१९२३) की तीन कविताएँ ही विशेष महत्वपूर्ण हैं—'जूही की कली', 'तू और मैं' और 'पंचवटी प्रसंग'। इन कविताओं के पीछे कवि की दर्शनचिंता का बल है। इन दिनों कवि का सम्बन्ध कलकत्ते के रामकृष्ण मिशन से था। वह स्वामी शारदानन्द प्रभृति सन्यासियों के साथ रहकर धर्म और दर्शन का अध्ययन कर रहा था। 'पंचवटी-प्रसंग' दर्शन की निकुञ्ज-वीथियों में उलझ गई है परन्तु उसकी महत्ता यह है कि इस कविता में कवि पहली बार लयात्मक मुक्त छन्द लेकर उपस्थित हुआ है। यह छन्द एक क्रांतिकारी नई प्रवृत्ति

के रूप में हिन्दी में आया है। अन्य दो कविताओं में हमें कवि की प्रतिभा के पहले दर्शन होते हैं। यहीं वह पहली बार उत्कृष्ट कवि के रूप में हमारे सामने आता है। 'परिमल' (१९३०) में इन तीनों कविताओं को स्थान दिया गया है। 'अनामिका' (१९३८) में पहली बार जो प्रारम्भिक कविताएँ प्रकाशित हुई हैं उनमें कवि बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करता है। इन कविताओं में कवि के प्रिय विषय हैं कविता, प्रेम, देशप्रेम, और सुख-दुख की अनुभूतियाँ। कवि अपने लिए काव्य-पथ प्रशस्त करता जान पड़ता है। 'प्रगल्भ प्रेम' शीर्षक एक कविता में कवि अपनी कविता-प्रेयसी से 'बन्धनमय छन्दों की छोटी राह' छोड़कर नये भावों के प्रशस्त राजपथ पर आने की प्रार्थना करता है—

> आज नहीं है मुझे और कुछ चाह,
> अर्ध विकच इस हृदयकमल में आ तू
> प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह!
> गजगामिनि, यह पथ तेरा संकीर्ण,
>
> कंटकाकीर्ण,
> कैसे होगी पार?
> काँटों में अंचल के तेरे तार निकल आयेंगे
> और उलझ जायेगा तेरा हार
> मैंने अभी-अभी पहनाया
> किंतु नज़र भर देख न पाया—कैसा सुन्दर आया।
> मेरे जीवन की तू, प्रिये, साधना,
> प्रस्तरमय जग में निर्झर बन
> उतरी रसाराधना।
>
> मेरे कुञ्ज कुटीर द्वार पर आ तू
> धीरे-धीरे कोमल चरण बढ़ाकर

ज्योत्स्नाकुल सुमनों की सुरा पिला तू
प्याला शुभ्र करों का रख अधरों पर।
वहे हृदय में मेरे, प्रिय, नूतन आनंद प्रवाह,
सकल चेतना मेरी होवे लुप्त
और जग जाये पहली चाह।

यह प्रारम्भिक कविताएँ अधिकांश में १९१३ से १९२७ तक की कविताएँ हैं। अधिकांश कविताओं में कवि असम तुकांत छन्द का प्रयोग कर रहा है। सम-तुकांत छन्द में लिखी कविताएँ दो चार ही मिलेंगी। 'चुम्बन' (१६२३) और 'अनुताप' इसी श्रेणी की कविताएँ हैं। इन प्रारम्भिक कविताओं की विशेषता यह है कि कवि सीधे सरल ढंग से, प्रसादपूर्ण रीति से अपनी भावनाओं को हमारे सामने रख देता है। द्विवेदी-काव्य से यह कविताएँ बहुत दूर नहीं जातीं। यह आश्चर्य की बात है कि जिस कवि ने इस सरल, प्रवाहमयी हिन्दी से लिखना शुरू किया था, वह बाद में 'कूटकाव्य' लिखने लगा। सामान्य पठन-पाठन की हिन्दी को काव्य में दैनिक जीवन के पुट के साथ पहली बार निराला के काव्य में ही देखा गया। भाषा में कोई बड़ी नवीनता थी। द्विवेदी की 'सरस्वती' की हिन्दी मॉडिल के रूप में कवि के सामने थी। परन्तु प्रारम्भिक काल की यह कविताएँ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनसे हमें छायावाद पर पड़ने पर प्रभावों का पता चलता है, इन कविताओं में रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द के अनुवाद ये हैं—ज्येष्ठ ('वैशाख', रवीन्द्रनाथ १६२४), कहाँ देश है (निरुद्देश यात्रा, रवीन्द्रनाथ, १६२४), क्षमाप्रार्थना (रवीन्द्रनाथ, १६२४), सखा के प्रति (सखा प्रति, विवेकानन्द, १६२६), नाचे उस पर श्यामा (नाचुक तरहाते श्यामा, विवेकानन्द १६२४), गाता हूँ गीत मैं तुम्हीं को सुनाने को (गाइ गीत सुनाते तोमाय, विवेकानन्द, १६२४)। इन दोनों कवियों के काव्य का प्रभाव निराला के काव्य पर बराबर बना रहा है, परन्तु निराला ने उस प्रभाव को आत्मसात कर

लिया। ऐके स्थल बहुत कम मिलेंगे जहाँ उनके शब्द उपरोक्त कवियों की प्रतिध्वनिमात्र हैं। 'राम की शक्ति-उपासना' (१९३६) पर माइकेल मधुसूदनदत्त का प्रभाव भी लक्षित है। इस प्रकार छायावाद-काव्य में बंगला का सीधा प्रभाव निराला की कविताओं द्वारा आया। मौलिक कविताओं में प्रमुख हैं 'यहीं' (१९२४) दिल्ली (१९२४) और 'रेखा' (१९२७)। ये निराला की पहली प्रौढ़ कविताएँ हैं। इन प्रारम्भिक कविताओं में हम कवि को साधना के पहले चरण में देखते हैं। अभी उसका अपना रूप सुस्पष्ट नहीं हो पाया है। वह रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द के काव्य की छाँह में आगे बढ़ रहा है। स्वयं उसने अभी अपना मार्ग भली-भाँति ढूँढ़ नहीं निकाला है। जब निराला ने इस प्रारम्भिक काव्य की रचना की तब वे रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द से तो प्रभावित थे ही, 'सरस्वती' के सम्यक् अध्ययन के कारण उत्तर द्विवेदी-युग के उन कवियों (पं० रामचन्द्र शुक्ल, लोचनप्रसाद पांडेय, मुकुटधर पांडेय, राय कृष्णदास, जयशंकरप्रसाद) से भी परिचित थे जिन्होंने द्विवेदी-युग की कविता की जड़ता को दूर किया और जो द्विवेदी-युग और छायावाद-युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं।

इसके बाद 'परिमल' (१९३०) आया। इस समय हिन्दी-काव्य के क्षेत्र में परिस्थिति बड़ी विचित्र थी। प्रसाद और पंत का नया काव्य हिन्दी में आ गया था, उसकी एक वर्ग में प्रशंसा भी हुई थी, परन्तु यह प्रशंसा महत्वपूर्ण नहीं थी। इन कवियों के साथ काव्य में किसी नई शक्ति का प्रवेश हुआ, पुरोगामी इसे मानने के लिए तैयार नहीं थे। हाँ, विरोधियों का दल प्रबल हो रहा था। दो दशाब्दी तक कविता के नाम पर द्विवेदी-कविता का गद्य पढ़ते-पढ़ते हिन्दी के काव्य-रसिकों की रस की परख नष्ट हो गई थी। इस बार जो सामने आया, वह प्राचीन परम्परा से एकदम अलग था। इन कारणों से यह नई छायावाद की कविता जनता के गले उतनी सरलता से नहीं

उतरी। मासिक पत्रों और साप्ताहिकों में समय-समय पर 'हाला-प्याला' लिये, लम्बे बाल बुरे हवाल, आकाश के तारों की ओर ताकते या किसी सुन्दरी से प्रणय-निवेदन करते नए छायावादी के चित्र निकलने लगे। परन्तु अंग्रेज़ी और बंगला काव्य संस्कृत आचार्यों के अभिव्यंजनावाद और उर्दू की व्यंजनात्मक शैली के अध्ययन के सहारे इन नये कवियों ने छाया और प्रकाश के जो नये मार्ग हिन्दी कविता में खोले वे अत्यंत आकर्षक सिद्ध हुए।

परिमल (१९३०) की रचनाएँ प्रसाद गुण, सीधी-सादी अभिव्यंजना, साधारण बोलचाल के ढंग पर वाक्य-विन्यास इत्यादि अनेक विशेषताओं से युक्त थीं। गीतिका (१९३६) और अनामिका (१९३८) में ये गुण दब गये हैं और 'तुलसीदास' को इने गिने हिन्दी-प्रेमी ही पढ़ते हैं। 'परिमल' में निराला पंत और प्रसाद की अपेक्षा अधिक विस्तृत काव्यभूमि पर खड़े हैं। अनेक विषय और अनेक शैलियों से यह संग्रह संपन्न है। इन कविताओं में जो प्रार्थनात्मक कविताएँ हैं, वह अत्यंत सरस हैं जैसे—

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन खेवनहार ?
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है,
डोले पग जल पर
डगमग डगमग
फिरती है,
छूट गई पतवार—
जीवन खेवनहार !

अथवा

जीवन प्रातसमीरण सा लघु
विचरण निरत करो ।
तरु-तोरण-तृण-तृण की कविता
छवि-मन-सुरभि भरो ।

इन कविताओं में संगीत और भावना का ऐसा सुन्दर सामञ्जस्य है कि सगुण भक्तों के काव्य की याद आ जाती है। कहीं-कहीं रहस्यात्मक उक्तियाँ अत्यंत मोहक बन सकी हैं, जैसे—

प्रतिपल तुम ढाल रहे ज्योतिसुधा मधुर धार
मेरे जीवन पर प्रिय यौवन बन के बहार

'गीतांजलि' (बंगला) के पहले गीत से इसकी तुलना की जा सकती है। कवि कहता है—हे अनन्त, हे महान, हे प्रिय ! तुम मेरे जीवन पर प्रतिपल जो प्रेम की अविरल वर्षा कर रहे हो, वह इतनी मधुर है, इतनी प्रकाशवान है कि हृदय को विह्वल कर देती है। तुम्हीं तो मेरे यौवन की सर्वोत्तम स्थिति हो, यौवन बन की बहार हो। देखता हूँ, दूर वह तुम्हारा ज्योतिमान है। किरणें तुमसे फूट कर वह रही हैं। वे किरणें न जाने गुप-चुप क्या बात करती हैं। मैं समझ नहीं पाता। परन्तु वे तुम्हारी अनुकंपा को इस पृथ्वी पर ला रही हैं, यह बात मैं जानता हूँ। तुम्हारे पास से, तुम्हारे स्पर्श से शीतल हो जो परिमल बह रहा है, वह हमारी इस पृथ्वी तक भी छन-छन कर आ रहा है मुक्तकुन्तला वायु उसे ढो रही है। इससे मेरा यह हृदय स्वतः ही अर्पण हो रहा है। जीवन की सारी विजय, सारी पराजय, सारे सुख, सारे दुःख, आशा, भय सब तुममें एकाकार हो गये। जो तुम्हारा नहीं है—जो तुम्हारे करस्पर्श को नहीं पाता, वह सब व्यर्थ है। असार है। इन कविताओं में सबसे महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं इनका संगीत और कवि का व्यक्तित्व। मध्ययुग के कवियों के बाद हमारा साहित्य संगीतशून्य हो गया था। आत्मपरक, भावात्मक भक्तकाव्य के बदले परोक्षपरक,

रूढ़िवादी, बुद्धिवादी शृङ्गार (रीति) काव्य की प्रतिष्ठा हुई। धीरे-धीरे काव्य से व्यक्तित्व का एकदम लोप हो गया—सारा काव्य एक ही निश्चित परिपाटी में बँध गया। द्विवेदी-युग के काव्य ने रीतिकाल की अनैतिकता और वासना प्रवृत्तियों का विरोध तो किया, परन्तु वह विरोध बुद्धि का विरोध था, अतः हृदय के तत्त्व उसमें अधिक नहीं मिल गये। इसीसे इस युग के काव्य में न हृदय है, न संगीत, न व्यक्तित्व की झलक। इसीलिए पुरानी कविता के प्रशंसक ठीक-ठीक इस काव्य को समझ नहीं सके। सच तो यह है, हमारे देश के काव्य में व्यक्ति के स्वर बहुत नहीं है। अधिक से अधिक विनय की कविताओं (विनयपदों) में उनके दर्शन होते हैं। कवि अपनी बात न कहकर वर्गविशेष या सामान्य मानव-हृदय की बात कहता है। हिन्दी का अधिकांश प्राचीन काव्य या तो विशेष-विशेष धार्मिक आन्दोलनों की छाया है, या विशेष साहित्यिक परिपाटी का पालक है। उसमें व्यक्ति का किंचित भी स्थान नहीं है। छायावाद काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है। वह कवि के व्यक्तित्व को उभार कर हमारे सामने लाता है। कवि क्या चाहता है, क्या समझता है, प्रकृति, नारी, जीवन, प्रेम के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या है, यह इस काव्य में उसी तरह स्पष्ट है जिस तरह दिन के साथ प्रकाश का प्रकृत्यः संबंधों।

छायावादी कवियों ने जीवन की कटुता के प्रति भावुक विद्रोह किया और अपनी भावनाप्रिय प्रवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करके उन्होंने उसे आँख की ओट करना चाहा। उन्होंने वर्डस्वर्थ की तरह कहा—Back to Nature (प्रकृति की ओर लौटो)। परन्तु उनके काव्य में सहज प्रकृति के दर्शन नहीं होते। उनके रोमांटिक (स्वच्छंदवादी) और रहस्यवादी दृष्टिकोण के कारण उनके प्रकृति चित्र अतिरंजित हैं। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वे प्रत्येक दिन के दृश्यों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। द्विवेदी-युग के जड़

प्रकृति-चित्रों को कल्पना और कला के द्वारा पहली बार जीवित, स्पंदित बनाने का श्रेय इन्हीं छायावाद-कवियों को है।

निराला के 'परिमल' में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलेंगे। प्रभाती, यमुना के प्रति, वासंती, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति, वसन्त समीर, प्रथम प्रभात, संध्या सुन्दरी, शरदपूर्णिमा की बिदाई, वनकुसुमों की शय्या, रास्ते के फूल से, प्रपात के प्रति, बादलराग, शैफालिका और जागो फिर एक बार जैसी कविताएँ हिन्दी प्रकृति काव्य के लिए एकदम नई चीज़ें थीं। निराला के अध्यात्म और उनके दर्शन के प्रति लोगों में चाहे जितना मतभेद रहा हो, चाहे जितना कोलाहल हुआ हो, प्रकृति सम्बन्धी ये कविताएँ प्रारंभ से ही लोकप्रिय रहीं। 'शेफालिका' और 'जुही की कली' जैसी कविताओं के कवि ने प्रकृतिक्रीड़ा के रूपक से आत्मा का परमात्मा में शाश्वत क्रीड़ा-विलास का चित्रण किया है। परन्तु इन प्राकृतिक रूपक-चित्रों से अधिक महत्त्वपूर्ण कवि की वे कविताएँ हैं जिनमें उसने प्रकृति के स्वच्छंद (Romantic) रूप को अनेक वर्णच्छटा में सँवार कर हमारे सामने उपस्थित किया है। संध्या का यह वर्णन कैसा ऐश्वर्यशाली है—

अस्ताचल ढले रवि,
शशि-छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनीगंधा जगी,
एकटक चकोर-कोर दर्शन प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहु भावमयी
घेर रहा चन्द्र को चाव से
शिशिर-भार व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए,
आया कलियों में मधुर

मद-उर यौवन-उभार।
पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह विदग्ध वधू
याद कर बीती बातें
रातें मन-मिलन की
मूँद रही पलकें चारु,
नयनजल ढल गये
लघुतर कर व्यथा भार

कहीं-कहीं कवि नई मूर्त्तिमत्ता की भी स्थापना करता है और अमूर्त प्रकृति-विलास को मूर्त रूप दे देता है शरद और शिशिर दो आह्लादक ऋतुएँ हैं और इतनी आसपास आती हैं कि कब शरद गया, कब शिशिर आया यह जानना कठिन है। शरद और शिशिर को दो बहनें बना कर निराला ने हिंदी काव्य-जगत के समक्ष एक नई रूढ़ि का विस्तार किया। 'वनकुसुमों की शय्या' शीर्षक कविता में कवि लिखता है—

सोती हुई सरोज अंक पर
शरत्-शिशिर दोनों बहनों के,
सुख विलास मद शिथिल अंग पर
पद्मपत्र पंखे झलते थे,
मलती थी कर-चरण समीरण धीरे धीरे आती—
नींद उचट जाने के भय से थी कुछ कुछ घबराती।
बड़ी बहन वर्षा ने उन्हें जगाया—
अंतिम झोंका बड़े जोर से एक,
किंतु क्रोध से नहीं, प्यार से,
अमल कमल-मुख देख
झुक हँसते हुए लगाया—सोते से उन्हें उठाया।

वे उठीं सेज मुरझाई,
एक दूसरी का थीं पकड़े हाथ,
और दोनों का ऐसा ही था अविचल साथ,
कभी कभी लेती थीं अँगड़ाई,
क्योंकि नींद वह उचटी,
थी मदमाती आँखों में उनकी छाई।

यही नहीं, प्रकृति के व्यापक, विस्तृत गंभीर रूपों का चित्रण भी निराला की सिद्ध लेखनी ने किया है। जहाँ पंत हाथीदाँत पर मीनाकारी करते हैं, वहाँ उनके विपरीत निराला, महान चित्रकार निकोलस रोरिक की तरह, दो-चार सीधे-टेढ़े स्पर्शों से ही प्रकृति के अनन्त रूपों और उन रूपों की अनन्त पटभूमि का आभास देते हैं। इस दृष्टि से उनकी 'संध्यासुन्दरी' कविता बेजोड़ है। व्यापक चित्रपटी पर कला के सारे रंग लेकर कवि ने एक विशाल चित्र खड़ा किया है—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्यासुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किंतु गंभीर—नहीं है उनमें हास-विलास—
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदयराज की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की वह लता
किंतु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अंबर पथ से चली।

नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन रुनझुन रुनझुन नहीं;
सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं—
व्योम-मण्डल में—जगतीतल में—
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी दल में
सौन्दर्यगर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षस्थल में—
धीर-वीर-गंभीर शिखर पर हिमगिर अटल अचल में—
उत्ताल तरंगाघात प्रलय घन गर्जन जलधि प्रबल में—
क्षिति में, जल में, नभ में, अनिल-अनल में—
सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं—

'यमुना के प्रति' और 'वसंत समीर' कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं। 'गीतिका' में प्रकृति-सौन्दर्य को लेकर कुछ बड़े सुन्दर कलात्मक गीत लिखे हैं जैसे वर्षा ऋतु की प्रकृति का यह चित्र—

रही आज मन में
वह शोभा जो देखी थी वन में
उमड़े ऊपर नव घन, घूम-घूम अंबर,
नीचे लहराता वन, हरित-श्याम सागर,
उड़ा पवन बहती रे पवन तेज क्षण में –
नदी तीर, श्रावण, तट नीर छाप। बहता
नील छोर का हिंडोल चढ़ी पैंग रहता
गीत मुखर तुम नवस्वर विद्युत ज्यों घन में
साथ साथ नृत्यपरा कलि-कलि की अप्सरा

ताल लताएँ देतीं करतल पल्लव धरा
भक्त मोर चरणों के नीचे नत तन में

वास्तव में निराला के काव्य का सबसे उज्ज्वल अंग उनका प्रकृति सम्बन्धी काव्य है। छायावादी कवियों ने नई भाषा, नई शैली, नए छंद ही नहीं गढ़े, उन्होंने मनुष्य, जीवन, प्रकृति और परमात्मा को देखने के लिए अपना एक नया दृष्टिकोण ही विकसित किया। उनकी कविता को अंग्रेज़ी की उन्नीसवीं शताब्दी की कविता की नक़ल मात्र कहकर टाला नहीं जा सकता। इन छायावादी कवियों ने वर्जित प्रदेशों में प्रवेश किया और प्रकृति-चित्रण ऐसा ही एक प्रदेश था। निराला इन छायावादी कवियों में अग्रगण्य हैं।

'परिमल' के प्रेम-सम्बन्धी कविताएँ अधिक नहीं। परिमल की कविताओं की रचना से पहले ही निराला भरी तरुणाई में विधुर हो गये थे। केवल स्वर्गीया पत्नी की स्मृति से सम्बन्धित कुछ कविताएँ हैं। 'उसकी स्मृति', 'स्वप्न स्मृति', 'शेष'-और 'एक बार भी यदि अजान के अंतर से उठ आ जातीं तुम'—इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं :

वह कली सदा को चली गई दुनिया से
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त

(उसकी स्मृति)

कह कर कवि संतोष कर लेता है। इसी से नारी-सौन्दर्य के चित्र निराला में अधिक नहीं मिलेंगे। केवल 'पंचवटी प्रसंग' में उन्होंने रीतिकालीन ढंग से शूर्पनखा के सौन्दर्य का चित्रण अवश्य किया है। नारी के प्रति जो रहस्यमयता, ऐन्द्रियता और वासना का लांछन छायावादी कवियों पर लगाया जाता है, उससे निराला मुक्त हैं। इन कवियों की कल्पना पर नारी छाई हुई है। छायावादी कवियों की उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ, उनके रूपक, उनके भावविलास सब इसी बात के

प्रमाण के रूप में उपस्थित हो सकते हैं। परन्तु नारी-कल्पनाजीवी होते हुए भी ये कवि न साधारण प्रेमविकास के चित्र उपस्थित कर सके, न नारी का सहज स्वाभाविक चित्रण ही इन्होंने किया। पंत, निराला, प्रसाद के काव्य में नारी अतिमानवीय है। जो हो, निराला के काव्य में तो नारी अधिक है ही नहीं। हाँ, प्रकृति और परमात्मसत्ता में उसका बराबर आरोप मिलता है। निराला मूलतः अपने व्यक्तित्व, प्रकृति, देशप्रेम और दर्शन-मनोविज्ञान को लेकर ही सफल कवि बन सके हैं। उनका देशभक्ति का काव्य अन्य छायावादी कवियों के काव्य से अधिक प्रौढ़ है। 'जागो फिर एक बार' और 'शिवाजी का पत्र' प्रमाण है।

कवि गर्जना करता है—

जागो फिर एक बार।
सिंहनी की गोद से
छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान ?
एक मेष-माता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है—
किन्तु क्या,
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं—
गीता है, गीता है—
स्मरण करो बार बार

पंत, प्रसाद और महादेवी का सारा काव्य राजनैतिक चेतना-हीन है,

परन्तु निराला ने राजनीति, धर्मनीति और सामान्य मानव-भूमि को भी अपना विषय बनाया है। 'विधवा', 'रास्ते के धूल से', 'भिक्षुक' आदि कविताएँ प्रमाण हैं। भिक्षुक निराला की प्रसिद्ध कविता है—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटियाँ टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को—
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।
भूख से ओंठ सूख जब जाते
दाता—भाग्यविधाता—से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं की पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए।
और झपट लेने को उनके कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

'परिमल' की दार्शनिक कविताएँ विशेष रूप से कठिन हैं और इन्हीं के कारण निराला कठिन काव्य के 'प्रेत' के रूप में प्रसिद्ध हुए।

इन कविताओं में कुछ तो अत्यंत सुन्दर और व्यंजक हैं जैसे 'तुम और मैं' में जीव ब्रह्म का निरूपण—

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक कल-कूजन-तान
तुम मदन पंच शर हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान !

तुम अंबर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार घनपटल श्याम,
मैं तड़ित तूलिका रचना !
तुम रणतांडव उन्माद नृत्य
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद वेद ओंकार सार
मैं कवि शृङ्गार शिरोमणि !
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,
तुम कुंद इन्दु अरविंद शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

और कुछ कूटकाव्य जैसे 'परलोक'

नयन मुँदेंगे जब, क्या देंगे ?
चिर प्रिय दर्शन ?
शत सहस्र जीवन पुलकित, प्लुत
प्यालाकर्षण ?
अमरण-रणमय मृदु-पद-रज ?
विद्युतवन चुम्बन ?
निर्विरोध, प्रतिहत भी
अप्रतिहत आलिङ्गन ?

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि परिमल (१६३०) में अनेक नई प्रवृत्तियाँ हैं और आधुनिक काव्य के इतिहास में उसका स्थान महत्वपूर्ण रहेगा।

१६३६ में निराला का गीतसंग्रह प्रकाशित हुआ। 'गीतिका' नाम। वैसे परिमल में भी कई सुन्दर गीत हैं। परंतु गीतिका सचमुच बड़ी सुन्दर गीतमाला है। जीव-ब्रह्म के अभिसार को लेकर 'परिमल' में बहुत कुछ लिखा गया था। गीतों में इस भाव की व्यंजना बड़ी

सुन्दर हुई है—आत्मा का अनन्त (प्रिय) की वीन सुनाई पड़ती है। यह प्रिय का बुलावा है। कितनी आकर्षक है यह ध्वनि—

कैसी बजी वीन ?
सजी मैं दिन-दीन।
हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी ;
लीन स्वर सलिल में मैं बन रही मीन।
स्पष्ट ध्वनि—'आ धनि, सजी यामनी भली।
मन्दपद आ बन्द कुंज-उर की गली,
मञ्जु, मधु-गुञ्जरित कलिदल समासीन।
'देख, आरक्त पाटल पटल खुल गए,
माधवी के नये खुले गुच्छे नये,
मलिन-मन, दिवस-निशि तू क्यों रही क्षीण ?

इस वीन की ध्वनि सुनकर आत्मा चुप नहीं बैठ पाती। वह अभिसारिका बन जाती है। इसी भाव का प्रकाशन इस गीत में है—

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती
सब कहते शृङ्गार।
कण-क्वण कर कंकण, प्रिय,
किण्किण रव किङ्किणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी;
और मुखर पायल स्वर करें बारबार,
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार ?
शब्द सुना हो तो अब
लौट कहाँ जाऊँ ?

उन चरणों को छोड़
और शरण कहाँ पाऊँ?
बजे सजे उर के उस सुर
के सब तार—
प्रियपथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार

इस प्रकार के न जाने कितने गीत 'गीतिका' की अमर संपत्ति हैं। गीतों का इतना वैभव किसी भी छायावादी कवि ने हिन्दी को नहीं दिया। जीवन के अनेक उड़ते-भागते क्षणों को कवि ने हिन्दी भारती की काव्यमाला में गूँथ दिया है। हमें आज उन पर गर्व है।

'अनामिका' (१६३८) और 'तुलसीदास' निराला की प्रौढ़तम रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में कालिदास-प्रभृति क्लासिकल कवियों का प्रभाव उसने स्वीकार कर लिया है। महान् आकांक्षा के साथ वह अपनी एक नितांत अभिनव सृष्टि में प्रवेश कर रहा है। सच तो यह है कि 'अनामिका' और 'तुलसीदास' निराला की अन्य रचनाओं की श्रेणी में नहीं आते। इन दोनों ग्रन्थों में कवि ने अपने ऊपर विजय प्राप्त कर ली है। वह श्रेष्ट कलाकार-कवि के रूप में हमारे सामने आता है। जो कुछ कहता है, वह विचार की दृष्टि से ही पुष्ट नहीं है, शैलीगत प्रौढ़ता के भी दर्शन प्रत्येक रचना में हो जाते हैं। 'परिमल' की कविताएँ कवि का पहला काव्योच्छ्वास है। अनामिका तक पहुँचते-पहुँचते भाषा, शैली और विचार सब में उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है। जहाँ शैली का सम्बन्ध है, वह तुलसीदास और कालिदास की प्रौढ़ रचनाओं से प्रभावित है। एक महान् कला-साधना को लेकर वह एक नये काव्यजीवन में प्रवेश कर रहा है। इसी कारण 'अनामिका' की कुछ कविताएँ और 'तुलसीदास' आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक विशेष श्रेणी की चीज़ें हैं। अधिकांश कविताएँ लम्बी हैं और आश्चर्य की बात यह है कि उसमें कहीं ज़रा भी शिथिलता नहीं आई है।

लगता है, जैसे सब पूर्ण हो, कहीं भी कुछ एक दो शब्द जोड़ने को शेष नहीं रह गया। कवि ब्रिटिश साम्राज्य के वैभव का वर्णन कर रहा है—

वैभव विशाल
साम्राज्य-सप्त सागर-तरङ्ग दल दत्त माल,
है सूर्य छत्र
मस्तक पर सदा विराजित
लेकर आतपत्र
विच्छुरित छटा—
जल, स्थल, नभ में
विजयिनी वाहिनी—विपुल घटा,
क्षण क्षण भर पर
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से
उस दिशि सत्वर
वह महासद्म
लक्ष्मी का शत-मणि-लाल जटित
ज्यों रक्त पद्म
बैठे उसपर
नरेन्द्र-वन्दित, ज्यों देवेश्वर।

'राम की शक्ति उपासना' में राम के दो चित्र देखिये—

१— × × नमित मुख सांध्य कमल
लक्ष्मण चिंता-पल पीछे वानर-वीर सकल,
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बन्ध स्रस्त, तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार,
२—है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल
स्थिर राघवेन्द्र का हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह रह उठता जगजीवन में रावण-जय-भय

इसी प्रकार 'तुलसीदास' में मुसलमानों के शासन का उल्लेख करता हुआ कवि कहता है—

शत शत अब्दों का सांध्यकाल
यह आंकुचित भ्रू कुटिल भाल
छाया अम्बर पर जलद जाल ज्यों दुस्तर
आया पहले पंजाब प्रांत,
कोशल विहार तदनन्त क्रांत,
क्रमशः प्रदेश सब हुए भ्रांत घिर घिर कर
मोगल दल बल के जलद-यान,
दर्पित पद उन्मत नद पठान,
है बहा रहे दिग्देश ज्ञान, शर खर तर
छाया ऊपर घन-अन्धकार—
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय धार ध्वनि हर हर

स्पष्ट है। इन प्रौढ़ कविताओं में निराला का स्वर ही बदल गया है। उन्होंने कालिदास, वाल्मीकि और तुलसीदास से कलागत्र संयम का पाठ सीख लिया है। इन कविताओं में वह श्रेष्ठ क्लासिकल कवि के रूप में हमारे साथ आते हैं। 'तुलसीदास' में तुलसी की मनोभमि

के विकास को काव्य का रूप दिया है । यहाँ पहली बार युग के अनुरूप भाषा-शैली में मनस्तत्त्व के श्रेष्ठतम आदर्शों को सामने रखकर तुलसी के परिवर्तन की भूमिका स्पष्ट की गई है। छायावाद काव्य में 'कामायनी' और 'तुलसीदास' नये ढंग के ऐसे कथा-काव्य हैं जो सदैव हिंदी के गौरव रहेंगे । 'कामायनी' का क्षेत्र अधिक व्यापक है, परन्तु 'तुलसीदास' के सौ दल, अपने में पूर्ण, कथा के संकुचित क्षेत्र में उतनी ही पुष्ट सौन्दर्य-सृष्टि उपस्थित करते हैं ।

परन्तु 'अनामिका' (१६३८) में ऐसी कविताएँ भी हैं जो कवि की एक नितांत नई दिशा की सूचना देती है। 'तोड़ती पत्थर', 'किसान की नई बहू की आँखें', 'खुला आसमान', 'ढूँढ' और 'सहज' नई कविताएँ हैं। कवि युग की पुकार सुनकर अपनी कविता को कल्पनालोक से नीचे उतार कर गाँव-नगर के प्रतिदिन के जीवन के पास आकर खड़ा हो जाता है । कुकुरमुत्ता (१६४०), अणिमा (१६४३) वेला और 'नये पत्ते' (१६४६) इस नये काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। इन संग्रहों में भाषा, छंद और प्रतीक-विधान की इतनी नवीनता है कि ये नई कविताएँ कवि के पहले काव्य के समक्ष व्यंग-सी जान पड़ती हैं। १६२४ ई० में जब पुच्छल तारे की भाँति निराला साहित्य-क्षितिज पर एकाएक उदित हुए, तो उन्हें अपने युग के सबसे बड़े क्रांतिकारी कवि माने जाने का श्रेय मिला। काव्य की परम्परागत रूढ़ियों और नये-पुराने बन्धनों पर जितने प्रहार उन्होंने किये उतने प्रहार कदाचित् किसी कवि ने नहीं किये। पूरे एक युग तक वह कल्पना, कला और व्यक्तित्व की साधना में लीन रहे। १९३५ के बाद समाज में समाजवादी और साम्यवादी (कम्यूनिस्ट) विचारधारा ने बल प्राप्त कर लिया । नये आलोचकों ने छायावादी कवियों के प्रति यह लांछा लगाई कि उनका काव्य जीवन से दूर भागता है । उन्होंने अपील की कि साहित्य को जीवन के समीप लाया जाये। इन नये दृष्टिकोणों से प्रभावित होकर जो धारा चली उसे

'प्रगतिवाद' कहा गया। स्वच्छंदवाद के कई प्रधान कवियों (निराला, पंत, भगवती बाबू) ने इस नई साहित्यधारा में योग दिया। परन्तु ये कवि अपनी एक युग की काव्यसाधना को एकदम भुला नहीं सके। इसी से निराला के नये काव्य-संग्रहों में ऐसी कविताएँ भी मिल जाती हैं जिन्हें छायावाद के काव्य के साथ रखा जा सकता है।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि छायावाद-काव्य को निराला की प्रतिभा, उनके व्यक्ति, उनकी कला का सर्वश्रेष्ठ उपहार मिला है।

(ग) पंत

छायावाद के कवियों में सबसे अधिक लोकप्रियता पंत को मिली और उनका अनुकरण भी सबसे अधिक हुआ। उनका कविताकाल १६१६ के लगभग आरंभ होता है। कालक्रम के अनुसार उनकी रचनाएँ हैं उच्छ्वास (१९२२), पल्लव (१६२७), वीणा (१६२७), ग्रन्थि (१६३०), गुञ्जन (१६३२), ज्योत्स्ना (१६३७) और युगांत (१९३७)। 'युगांत' से उनकी कविता का नया युग आरम्भ होता है और वह प्रगतिवादी काव्य के नेता के रूप में आगे आते हैं। युगवाणी (१६३९), ग्राम्या (१६४०) और स्वर्णकिरण (१६४७) पंत की नई साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्थायित्व प्रदान करती हैं, परन्तु कहीं-कहीं उनमें छायावाद की परम्परा भी मिल जाती है, अतः छायावाद के इतिहासकार को उनकी विवेचना भी करनी पड़ती है। वास्तव में युगांत (१६३७) के बाद पंत ने एक अभिनव काव्यक्षेत्र में प्रवेश किया है। कालक्रम के अनुसार रचनाओं की जो तालिका ऊपर दी गई है उसमें थोड़ा सा उलट-फेर है। उच्छ्वास (१९२२) पल्लव (१६२७) का एक अंग बना दिया गया है और वीणा (१६२७) की कविताएँ 'पल्लव' की रचनाओं से पहले लिखी गईं। वीणा की भूमिका में कवि कहता है—"इस संग्रह में दो एक को छोड़ अधिकांश सब रचनाएँ सन् १६१८—१६ की लिखी हुई हैं। उस कवि-जीवन

के नव-प्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर-ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो, मेरा मंद कवि-यशः—प्रार्थी निर्बोध, लज्जाभीरु कवि वीणावादिनी के चरणों के पास बैठ, स्वर-साधन करते समय, अपनी आकुल उत्सुक हृत्तन्त्री से, बार-बार चेष्टा करते रहने पर, अत्यन्त असमर्थ अँगुलियों के उलटे-सीधे आघातों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट झंकारें जाग्रत कर सका है, वे इस वीणा के रूप में उपस्थित हैं।" वीणा की रचनाओं में कवि की सुकुमार अनुभूति ही अधिक प्रकाशित हो सकी है। अधिकांश कविताएँ 'गीतांजलि' से प्रभावित होने के कारण प्रार्थनात्मक हैं। उनमें रवीन्द्र बाबू के बंगला गीतों की स्पष्ट छाप है, भाव में ही नहीं, भाषा में भी। रवीन्द्र बाबू की भाषा ने इन कविताओं को इस प्रारम्भिक काल में ही एक अद्‌भुत प्रौढ़ता दे दी है। कवि कहता है—

मेरे चंचल मानस पर—
पादपद्म विकसा सुन्दर
बजा मधुर वीणा निज, मात !
एक गान कर मम अंतर

या

तुहिन-बिन्दु बनकर सुन्दर
कुमुद किरण से सहज उतर
माँ, तेरे प्रिय पद-पद्मों में
अर्पण जीवन को कर दूँ

× × ×

कुमुद कला बन कलहासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ !
जग का तिमिर-त्रास हर दूँ

आज यह भाषा चाहे नवीन नहीं जान पड़े, परन्तु १९१८-१९ में इसमें कम नवीनता नहीं थी। एक नई स्निग्धता, एक नया भाव-विलास, एक नई कोमलता के दर्शन वीणा की कविताओं में होते हैं। इस कोमलता की सीमा उन कविताओं में मिलती है। जिनमें कवि अपने को 'कुमारी' (अबोध बालिका) के रूप में रख लेता है। इन कविताओं में रहस्यात्मक जिज्ञासा भी बराबर मिलती है। कवि कहता है—

वैसे ही तेरा संसार—
अति अपार यह पारावार
नहीं खोलता है मा! अपने
अद्भुत रत्नों का भंडार;
प्रत्युत, अपने ही शृंगार
'तुलसीमाला या मणिहार'
मा! प्रतिबिंबित होकर इसमें
दिखलाई देते निस्सार!

चला प्रेम की दृढ़ पतवार,
इसके जल को हिला अपार
दिखलाई देगी तब इसकी
विश्व-मूर्ति अति सदय उदार।

सरिता को देखकर कवि सोचने लगता है—

यह न कभी पीछे फिरती है—
कैसा होगा इसका वत्त—
एक ग्रन्थि भी नहीं पड़ी है
उसके तरल मृदुल उर में

कभी अध्यात्म के गहरे प्रश्नों पर विचार करता हुआ वह 'माया' के भुलावे की बात उठाता है—

उस छवि के मंजुल उपवन को
इस मरु से पथ जाता है,
पर मरीचिका से मोहित हो
मृग मन में दुख पाता है।
वालू का प्रतिकण इस मरु का
मेरु सदृश हो उच्च अपार,
भीरु पथिक को भटकाता है
दिखला स्वर्ण-सरित की धार !

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन प्रारंभिक कविताओं में कवि की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं—

(१) 'गीतांजलि' के प्रभाव से अज्ञात रहस्यात्मक सत्ता के प्रति प्रार्थना भाव

(२) रहस्यात्मक दार्शनिक जिज्ञासा

(३) प्रकृति के संबंध में अद्भुत-भाव

(४) नई भाषा और नई मूर्तिमत्ता के सतर्क कलापूर्ण प्रयोग कवि धीरे-धीरे कल्पना की भूमि पर उतर रहा है। यही उसकी आगे की रचनाओं (पल्लव, १९१९-२७) की भूमि है। 'विहगवन के ओ राजकुमार' शीर्षक कविता से यह स्पष्ट है—

है स्वप्न नीड़ मेरा भी जग उपवन में
मैं खग सा फिरता नीरव-भाव-गगन में
उड़ मृदुल कल्पना-पंखों में, निर्जन में
चुंगता हूँ गाने बिखरे तृन में, कन में

इस स्वप्नजगत में उसे सबसे बड़ी प्रेरणा प्रकृति से मिलती है। वह कहता है—

छवि की चपल अँगुलियों से छू
मेरी हृततंत्री के तार

कौन आज यह मादक अस्फुट
राग कर रहा है गुंजार

'पल्लव' की प्रतिभा का पहला उद्रेक 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि का आना' शीर्षक कविता में सुनाई पड़ता है। इस कविता में पहली बार हिंदी को अनुभूति, कल्पना, सूक्ष्म भाव-विन्यास, अंतर्दृष्टि और संगीतमय प्रवाह के दर्शन होते हैं। भाषा के प्रयोग में तो इस संग्रह की कविताएं पल्लव की पूर्ववर्तिनी हैं ही। हिन्दी कविता में इतनी सार्थकता, इतनी लाक्षणिकता से तत्सम शब्दों का प्रयोग कभी नहीं हुआ था—

मारुत ने जिसकी अलकों में
चञ्चल चुम्बन उलझाया

जैसा चित्र सारे हिंदी साहित्य में नहीं मिलेगा। इसी प्रकार

सौरभ-वेणी खोल रहा था
तेरी महिमा की पवमान

प्रकृति और परमात्मसत्ता का इतना सुन्दर सम्बन्ध स्थापित कर देता है कि मन मुग्ध हो जाता है। कवि की प्रमुख प्रवृत्ति 'कला' है यह 'वीणा' की कविताओं से स्पष्ट हो जायेगा। 'अलसित अंचल', 'चंचल चुम्बन' जैसे प्रयोग बंगला और अंग्रेज़ी काव्य की पदावली हिन्दी में लाये। उस समय के पाठकों को यह छू नहीं सके। हिन्दी में जो था, उसकी आत्मा इन शब्दों में पकड़ी नहीं जा सकती थी। उनमें विदेशीपन अधिक था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनमें अभिव्यक्ति की कला थी, अभिधा से अधिक व्यंजना से सहारा लिया गया था और एक नई भाषा के संस्कार गढ़ने का स्पष्ट प्रयत्न था। जो हो, इसमें संदेह नहीं कि वीणा (१६१६-२७) की रचनाएँ हिन्दी काव्य में नई दिशा सूचित कर सकीं।

'ग्रंथि', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' पंत की एक ही प्रेम-कविता के तीन भाग समझे जा सकते हैं। तीनों का रचना-काल १६२२ के

लगभग है यद्यपि 'ग्रंथि' (१६२७) पाँच वर्ष बाद पुस्तक रूप में सामने आई। पहले-पहले यह तीनों काव्य 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए और उसी के द्वारा पंत को पहली बार हिंदी-संसार से साधुवाद प्राप्त हुआ। 'ग्रंथि' जनवरी १६२० में लिखी गई थी। इसमें कथा-वस्तु बहुत थोड़ी है। एक बार संध्याविहार के समय नायक की नौका किसी ताल में डूब गई। आँखें खुलीं तो देखा, एक सुन्दर बालिका उसका सिर अपनी जंघा कर रखे उसे कातर दृष्टि से देख रही है। यहीं से प्रणय-कहानी आरंभ होती है। कहानी कुछ आगे बढ़ती है। संयोग और वियोग के चित्रों से पाठक परिचित होता है, परन्तु अंत में समाज बीच में आ जाता है और नायिका किसी अन्य की परिणीता बन जाती है। निराशा और वेदना के साथ इस प्रेम-कहानी का पटाक्षेप हो जाता है। 'गुंजन' की

'रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाश
मृगेक्षिणि, सार्थक नाम!'

से यह पता चलता है कि कदाचित् इस लड़की का नाम 'तारा' था। 'युगांत' की एक कविता में कवि ने उन प्रथम दिनों के मिलन-दृश्य का भी चित्रण किया है—

मंजरित आम्र की छाया में
हम, प्रिये मिले थे प्रथम बार

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अविवाहित कवि ने सारे जीवन भर इस प्रथम प्रणय की थाती सँभाल रखी है। पंत ने अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख को काव्य का विषय नहीं बनाया। आजकल के नवयुवक कवियों की तरह वे जीवन भर टूटे प्रेम के गीत नहीं गाते रहे। यह कवि की उदात्त मनोभूमि का प्रमाण है। जो हो, 'प्रेम' कवि के जीवन के प्रथम प्रेरणा था, यह निस्सन्देह सच्ची बात होगी। इसलिए 'ग्रंथि' का ऐतिहासिक महत्व है।

'ग्रंथि' की महत्ता उसकी भाषा-शैली है। यहाँ शैली का बनाव-सिंगार नहीं मिलेगा। सहज, प्रवाहमयी भाषा में कवि कथा के सूत्र जोड़ता चलता है—

बैठ वातायन निकट उत्सुक नयन
देखती थी प्रियतमा उद्यान को,
पूछता था कुशल फूलों से जहाँ
मधुर स्वर में मधुप सुख से फूलकर ?
मन्द मुस्काती, चपल भ्रू-वीचि में
हृदय को प्रतिपल डुबाती, आज भी
संगिनी सखियाँ वहाँ आईं सहज
हास औ' परिहास-निरता, दोलिता।

परन्तु कहीं-कहीं इस प्रवाहमयता के साथ वे विशिष्ट गुण भी मिलेंगे जो 'पल्लव' के साथ जुड़ गये हैं। 'पल्लव' में उपमाओं की झड़ी लगी रहती है, यहाँ भी देखिये—

जब अचानक अनिल की छवि में पला
एक जलकण जलद-शिशु-सा पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न सा

वास्तव में सारे काव्य में कल्पना का जाल गूंथा हुआ है। अनेक चमत्कार-प्रधान अलंकार पंक्ति-पंक्ति में मिलते हैं। यद्यपि यह कवि की प्रारम्भिक कृति है, परन्तु चमत्कार-प्रतिष्ठा, उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-सौन्दर्य की कला में कवि ने पूर्णता प्राप्त कर ली है। कहीं कहीं ऐसी पंक्तियाँ भी मिल जाती हैं जिनमें कवि की पूर्ण शक्ति प्रस्फुटित हो उठी है, जैसे

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से, डर से, मृगेक्षणि ने उठा,

एक पल निज स्नेह-श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी

या

इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में

जो हो 'वीणा' और 'ग्रंथि' कवि की प्रारम्भिक रचनाएँ हैं। पहली में कविवर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव है, दूसरी में अंग्रेज़ी कवि 'शेली' का। इन दोनों ग्रंथों का मुख्य महत्व ऐतिहासिक है।

कवि की प्रतिभा का पहला प्रौढ़ प्रकाश पहली बार 'पल्लव' (१९२७) में मिलता है। वह एक प्रौढ़ कलाकार बन चुका है। 'पल्लव' की पंक्ति-पंक्ति पर उसके चिंतन, उनकी मननशीलता, उनकी कला की छाप है। 'पल्लव' की भूमिका में बालकवि के स्वर नहीं बोलते। कवि ने अलंकृत भाषा में, कहीं सहज ही, कहीं व्यंग में रीतिकाव्य, भक्तिकाव्य और द्विवेदी-काव्य की आलोचना कर डाली है। तुलसी और सूर जैसे प्राचीनों का युग उसने स्वीकार किया है, परन्तु वह नये युग के अनुरूप नया काव्य गढ़ने का आग्रह कर रहा है। छायावाद के इतिहासकार के लिए यह भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। 'पल्लव' (संग्रह की पहली कविता) में कवि बड़ी विनम्रता से अपने काव्य को जनता के सामने उपस्थित करता है—

न पत्रों का मर्मर संगीत
न पुष्पों का रस-राग पराग;
एक अस्फुट अस्पष्ट अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुसकान।

सरल शिशुओं के शुचि अनुराग
वन्द विहगों के गान
× × ×

हृदय के प्रणय कुञ्ज में लीन,
मूक-कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन-मन बंधन हीन
मधुरता से अपनी अनजान।
खिल उठी रोओं-सी तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल।

उच्छ्वास (१६२२) और 'आँसू' 'ग्रंथि' काल की दो रचनाएँ इस संग्रह में हैं, परन्तु अन्य रचनाओं से वे थोड़ी भिन्न हैं। कल्पना की बड़ी सुकुमारता इन कविताओं में मिलेगी। 'संदेह' पर कवि की पंक्तियाँ देखिये—

मर्म पीड़ा के हास!
रोग का है उपचार,
पाप का भी परिहार
है अदेह सन्देह, नहीं है इसका कुछ संस्कार!
हृदय की है यह दुर्बल हार!
खींच लो इसको, कहीं क्या छोर है?
द्रौपदी का यह दुरंत दुकूल है!
फैलता है हृदय में नभ-वेलि-सा
खोज लो, इसका कहीं क्या मूल है?

प्रेयसी की स्मृति में कवि कितना भावविभोर हो जाता है, उसकी भावना का कितना चित्रमय अंकन इन पंक्तियों में हुआ है—

कभी कुहरे-सी धूमिल घोर
दीखती भावी चारों ओर!

तड़ित सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान !

परन्तु इस सुकुमारता के साथ-साथ 'शेली' का प्रभाव भी गूढ़ होता जाता है। 'स्काईलार्क' की पंक्तियाँ

Our sweetest songs are those
that tell of saddest things

इन पंक्तियों में ध्वनित हैं—

कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है

इसी शेली के छोटे से गीत—'O World, O Life, O Time' को कवि ने निश्चितता से 'जीवनयान' शीर्षक कविता में गूँथ दिया है—

अहे विश्व ! ऐ विश्व व्यथित-मन !
किधर बह रहा है यह जीवन ?
यह लघु-पोत, पात, तृण, रजकण,
अस्थिर—भीरु वितान,
किधर ? किस ओर ? अछोर-अजान
डोलता है यह जीवनयान

'बादल' शीर्षक कविता भावना में ही नहीं, उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं और शैली में भी 'शेली' (Shelley) की The Cloud कविता से

मिलती-जुलती है। 'छाया', 'अनंग', 'नक्षत्र', 'स्वप्न' कुछ ऐसी कविताएँ हैं जिनमें कवि पंक्ति-पंक्ति में उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा देता है। कल्पना ने उसे आक्रांत कर लिया है। नक्षत्र को वह 'शुचि उलूक' कह सकता है। कविता में ध्वन्यात्मकता (नादसौन्दर्य) की इतनी प्रचुरता है कि वह चित्रकाव्य बन गई है। बादल का चित्र देखिये—

धूम धुआरे काजल कारे
तुम ही बिकरारे बादर
मदनराज के वीर बहादुर
पावस के उड़ते फणिधर
चमक झमकमय मन्त्र वशीकर
छहर लहरमय शशिसीकर
स्वर्गसेतु से इन्द्रधनुपधर,
कामरूप घनश्याम अमर।

इस प्रकार की कविताओं में अंग्रेज़ी अलंकार Onomatopoeia (ध्वनिसाम्य) का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इन कुछ कविताओं में जहाँ शैली का चमत्कार है, वहाँ कवि का दार्शनिक चिंतन भी स्पष्ट है। 'अनंग' शीर्षक कविता में कवि सृष्टि के आदि में मादन-भाव की जागृति का बड़ा सुन्दर चित्र खेंचता है—

आदि काल में बाल प्रकृति जब
थी प्रसुप्त, मृतवत, हत-ज्ञान
शस्य शून्य वसुधा का अंचल,
निश्चल जलनिधि, रवि शशि म्लान,

प्रथम हास-से, प्रथम अश्रु-से
प्रथम पुलक-से, हे छविमान!

स्मृति-से, विस्मय से तुम सहसा
विश्व स्वप्न से खिले अजान।

तब

प्रथम कल्पना कवि के मन में,
प्रथम प्रकम्पन उडुगन में,
प्रथम प्रात जग के आँगन में,
प्रथम वसंत विभा बन में

प्रथम वीचि वारिधि-चितवन में,
प्रथम-तड़ित-चुम्बन घन में,
प्रथम गान तव शून्य गगन में,
फूटा नव यौवन तन में,

परन्तु 'निर्झरगान', 'वीचि-विलास', 'मोह', 'विनय', 'याचना', 'विसर्जन', 'मधुकरी', 'मुस्कान', 'स्मृति', 'सोने का गान' शीर्षक कुछ कविताएँ ऐसी हैं जहाँ अंग्रेज़ी काव्य का प्रभाव नहीं है। कवि 'वीणा' की सरस परंपरा को ही आगे बढ़ा रहा है। कल्पना यहाँ भी है, पर भावुकता के साथ। कल्पनातिरेक से काव्य दूषित नहीं हो गया है। 'वीचि-विलास' की कुछ पंक्तियाँ देखिये —

छुई-मुई सी तुम पश्चात
छूकर अपना ही मृदु गात
मुरझा जाती हो अज्ञात!

स्वर्ण स्वप्न सी कर अभिसार,
जल के पलकों में सुकुमार,
फूट आप ही आप अजान
मधुर वेणु की-सी झंकार

'पल्लव' की सबसे प्रौढ़ कविता 'परिवर्तन' है। कदाचित् स्वयं पंत के

काव्य में इतनी सुन्दर कोई एक अन्य कविता नहीं है। इस कविता पर भी शेली का प्रभाव स्पष्ट है जैसे—

Unfathomable Sea! whose waves are years,
Ocean of time whose waters of deep woe
Are brackish with salt of human tears!
Thou shoreless flood, which in the ebb and flow
Claspest the limits of mortality
And sick of prey, yet howling on for more
Vomitest thy wrecks on its inhospitable shore,
Treacherous in calm and terrible in storm
Who shall put forth on thee
Unfathomable sea—

अहे महाम्बुधि! लहरों से शत लोक चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,
तुङ्ग तरंगों से शतयुग, शतशत कल्पान्तर
उगल महोदर में विलीन करते तुम सत्वर;
शत सहस्र रवि-शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडुगण
जलते बुझते हैं स्फुलिङ्ग से, तुम में तत्क्षण;
अचिर विश्व में अखिल दिशावधि, कर्म, वचन, मन
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्तनहीन विवर्तन।

परन्तु यहाँ भी जहाँ कवि की प्रतिभा भारतीय साहित्य का सहारा लेकर ऊपर उठी है वहाँ अत्यंत शक्तिशाली, अत्यंत ओजपूर्ण साहित्यिकता का जन्म हो चुका है—

अहे वासुकि सहस्र फन!
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर

शतशत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयङ्कर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र-कुण्डल,
दिङ्मंडल ।

यह शोक का विषय है कि कवि ने 'परिवर्तन' की कला का फिर प्रयोग नहीं किया। 'पल्लव' की अंतिम कविता में उन्होंने 'विदा मेरे कवि बाल' कहकर 'पल्लव' के कल्पनालोक को पीछे छोड़ दिया। 'पल्लव' में किशोर का स्वप्न था, किशोर का कंठ था। अगली रचना 'गुंजन' (१९३२) में कवि में तरुण के चिंतन और संयमित कला का विकास हुआ है। कुछ वर्ष पहले कवि को कठिन रोग का सामना करना पड़ा। जीवन-मृत्यु के हिण्डोल पर महीनों झूलने के बाद वह केवल कल्पना-विलास तक सीमित नहीं रह सकता था। जिस साहस से वह नये जीवन में प्रवेश कर रहा था, उसने उसमें आशावाद का संचार किया। 'भूमिका' में पंत ने 'गुंजन' को अपनी आत्मा का 'उन्मन गुंजन' कहा है। इसका कारण है इसका संयम, आवेश की न्यूनता एवं चिंतन और मनन की प्रधानता। सारी कविताएँ गीतात्मक हैं। आत्मा की गूँज गीत में ही प्रकाशित हो सकती है।

'गुञ्जन' में सुख-दुख, जीवन-मरण, प्रकृति के हास-विलास और मन के अतल स्रोत को कवि ने अपना विषय बनाया है। वह दार्शनिक ढंग से सुख-दुःख का समन्वय करना चाहता है—

जग पीड़ित रे अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव-जग में बँट जाये
दुख सुख से औ' सुख दुख से

परन्तु सदैव तो यह संभव नहीं है। यह तो कवि की Utopian अभिलाषा मात्र होगा। अतः वह अपने मन को सुख-दुख से ऊपर उठने का आग्रह करता है—

अस्थिर है जग का सुख-दुख
जीवन ही नित्य, चिरन्तन
सुख दुख से ऊपर मन का
जीवन है रे आलम्बन

आगे बढ़कर वह कवि-साधना में लीन हो जाना चाहता है। न, सुख के क्षणों में भी 'साधना' को भूलना नहीं होगा—

पुलकों से लद जाता तन
मुँद जाते मद से लोचन
तत्क्षण सचेत करता मन—
ना, मुझे इष्ट है साधन

कवि विश्व के सुख-दुख से ऊपर उठ कर, अपनी सौन्दर्य और कविता की साधना में लीन रह मानव के प्रति मंगलाकांक्षी हो उठता है। यह जगजीवन क्रमशः अधिक सुन्दर जीवन की ओर बढ़ रहा है—

सुन्दर से अति सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जगजीवन

'ज्योत्स्ना' (१९३४) के गीतों में बार-बार यह मंगलाशा फूट पड़ी है—

मङ्गल चिर-मङ्गल हो
मङ्गलमय सचराचर,
मङ्गलमय दिशिपल हो।

तमस-मूढ़ हों भास्वर,
पतित क्षुद्र, उच्च प्रवर,
मृत्यु-भीत नित्य अमर
अग जग चिर उज्ज्वल हो

इस मङ्गलाशा में सारा विश्व ही नवीन दिखलाई पड़ता है। 'ग्रन्थि' 'उच्छ्वास' और 'परिवर्तन' के दुःखवाद का चिह्न भी नहीं रह गया। प्रेम, सौन्दर्य, नारी, प्रकृति सब इस मंगल के प्रकाश में इन्द्रधनुष के सात रंगों से रँग उठे हैं।

हिन्दी के काव्य में 'गुंजन' एक नितान्त नई दिशा की सूचना देता है। जीवन की उज्ज्वलता, जीवन के शाश्वत विकास, जीवन के मंगल गान से यह संग्रह भरा है। कवि कहता है—

हे जगजीवन के कर्णधार,
चिर जन्म-मरण के आरपार
शाश्वत जीवन नौका विहार?
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान
जीवन यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान।

यह जीवन क्या है—

क्या यह जीवन? संसार में
जल-भार मुखर भर देना।
कुसुमित पुलिनों की क्रीड़ा—
व्रीड़ा से तनिक न लेना

कवि जीवन के उल्लास का अनुभव तो करता है, परन्तु उसको इस व्यापक उल्लास में भाग लेना नहीं है। वह साधना का पथ पकड़ना चाहता है। वह 'हिलोर' (लहर) नहीं बनेगा। वह तो 'बुद्बुद' बनेगा—

कँप कँप हिलोर रह जाती—
रे मिलता नहीं किनारा!
बुदबुद विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा।

इस प्रकार जीवन के प्रति एक नई जिज्ञासा, एक नई रहस्य-भावना एक नई सौन्दर्य-दृष्टि 'गुंजन' ने जाग्रत की।

इस मङ्गलाशी आशावादी स्वर ने प्रेम और प्रकृति के संबंध में नया दृष्टिकोण ग्रहण किया। पंत के प्रकृतिकाव्य का पूर्ण विलास यहाँ मिलेगा। पल्लव में उपमा-उत्प्रेक्षाओं के घने आवरण ने प्रकृति की सुषमा को छिपा लिया है। 'गुंजन' की कविताओं में प्रकृति का सारा वैभव नये आशावाद से जी उठा है। 'मधुवन' और 'नौकाविहार' और 'सांध्यतारा' जैसी कविताएँ किसी भी साहित्य को महत्व दे सकती हैं। मधुवन में कवि प्रेम और प्रकृति को एक साथ देखता है—

'आज उन्मद मधुप्रात
गगन के इन्दीवर से नील
झर रही स्वर्ण मरंद समान
तुम्हारे शयन-शिथिल-सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण।

'भावी पत्नी के प्रति' कविता में रवीन्द्रनाथ की उर्वशी की मादकता मिलेगी—

मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार
प्रणय का सा नवगान;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण;

स्वप्न सा, विस्मय सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण।

प्रेम के तो अनेक सहज सुन्दर गीत हैं। कवि प्रेयसी की प्रतीक्षा कर रहा है—

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातावन से
संध्या उदास फिर जाती
सूने नभ के आँगन से।
लहरें अधीर सरसी की
तकती हैं तुमको उठकर,
फिर-फिर समीर रह जाता
प्रेयसि, ठंडी साँसें भर
तुम आओगी, आशा में
अपलक हैं उर के लोचन
आओगी, अभिलाषा में
पुलकित-पुलकित यौवन-मन

या प्रेयसी की नीलिमा-जड़ित आँखों का चिंतन करता दिखलाई देता है—

तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश!
गूढ़, नीरव, गंभीर प्रसार,
बसाएगा कैसे संसार,
प्राण, इनमें अपना संसार!
न इनका ओर छोर रे पार,
खो गया वह नव पथिक अजान

कभी प्रियतमा को गृहकाज से विरत करता है—

आज रहने दो यह गृहकाज,
प्राण ! रहने दो यह गृहकाज !
आज जाने कैसी वातास;
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास

यह नहीं कि वेदना और अवसाद के स्वर गुंजन में नहीं हैं। 'चाँदनी' 'एकतारा' इत्यादि कविताओं में कवि के विषण्ण स्वर जाग उठे हैं, परन्तु वे कवि के चिंतन से पुष्ट हैं। अत्यंत निर्वैयक्तिकता से कवि अपने जीवन की असफल आकांक्षाओं की वेदना और अपने सूनेपन को व्यक्त करता है—

अविरत इच्छा ही में नर्तन
करते अबाध रवि, शशि, उडुगण,
दुस्तर आकांक्षा का बंधन।
रे उडु, क्या जलते प्राण विकल,
क्या नीरव, नीरव नयन सजल,
जीवन निसंग के व्यर्थ विफल !
एकाकीपन का अंधकार
दुस्सह है, इसका मूक भार
इसके विषाद का रे न पार !

परन्तु इस तरह की कविताएँ अधिक नहीं हैं। कवि आशा और उल्लास के झूले में झूल रहा है। 'ज्योत्स्ना' (नाटक, १९३४) में यही मङ्गलाशा नाटकीय रूप में प्रस्फुटित हुई है। शेली का Prometheus Unbound इसका आधार है। वही शैली, वही भावना। केवल कथा नई है। कदाचित् गेटे (Goethe) के फास्ट (Faust) से भी कवि थोड़ा प्रभावित हुआ है। इस रूपक (allegory) में कवि जातिभेद, वर्णभेद, देशभेद और आर्थिक बन्धनों से ऊपर उठकर एक जाति-वर्ण-देश-भेदहीन संपन्न स्वर्ग (Utopia)

का चित्र उपस्थित करता है। 'ज्योत्स्ना' इसकी प्रधान पात्री है और कवि का व्यक्तित्व उसी में समाहित है। साधारण आशावाद और थोथी मंगलाकांक्षा से बाहर निकल कर कवि संसार के सामने आता है। प्रकृति के सारे उपकरण (लहरें, तितलियाँ, मछलियाँ, फूल, विहग) उसे मानव-स्वातंत्र्य का संदेश देते हैं। वह पुकार उठता है—

गूँजे जयध्वनि से आसमान
सब मानव मानव हैं समान।
निज कौशल मति इच्छानुकूल
सब कर्मनिरत हो भेद भूल
बन्धुत्व-भाव हो विश्व मूल
सब एक-राष्ट्र के उपादान

अगली रचना 'युगांत' (१९३४-३५) में कवि सारे मानव-जीवन को एक नई दृष्टि देने का प्रयत्न करता है। "मैं सृष्टि एक रच रहा नवल" कहकर वह नये जीवन का संदेश देने के लिए उन्मुख होता है। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं पर कविता के कल्पना-विलास सौन्दर्य-प्रेम, और रोमांस की छाया है—परन्तु कवि नये पथों पर बढ़ चला है, इसमें कोई संदेह नहीं। मानव-जीवन में नवीन आदर्शों का प्रभात लाने के लिए वह कोई भी बलिदान करने को तैयार है—

मैं झरता जीवन डाली से
साह्लाद शिशिर का शीर्ण पात
फिर से जगती के कानन में
आ जाता नव मधु का प्रभात।

मानव के दुःखों से वह पीड़ित है। उसके अपने सुख-दुःख उसे भूल गये हैं। वह सामाजिक व्यवस्था को संदेह की दृष्टि से देखने लगा है—

है पूर्ण प्राकृतिक सत्य ! किंतु मानव जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुञ्ज, कुसुम, आतप खग ?

इस समस्या का समाधान वह करना चाहता है। परन्तु अभी यह सामाजिक समाधान नहीं है—समाधान दार्शनिक है—

जो एक, असीम, मधुर व्यापकता
खो गई तुम्हारी वह जीवन सार्थकता

परन्तु धीरे-धीरे वह सत्य बात जान जाता है—

मानव-जग में गिरकारा-सी
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बन्दी की हैं मानवता को
रच देश-जाति की भित्ति अमर।

और आशा करता है—

ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकास,
हँस देगा स्वर्णिम वज्र लौह
छू मानव-आत्मा का प्रकाश

इस संग्रह की अधिक कविताएँ आशीःवचन हैं, या काव्यात्मक आदर्शवाद से प्रभावित हैं। इस समय 'बापू' कवि की सारी मङ्गलाकांक्षा के प्रतीक हैं, अतः स्पष्ट है, भौतिकवाद ने कवि को अधिक नहीं छुआ है। वह मानववाद की ओर बढ़ रहा है। इस संग्रह की 'मानव' कविता इसका प्रमाण है। 'युगांत' (१९३७) पंत की अंतिम छायावादी रचना है। उसका मानववाद शेली से उधार लिया गया है या कवि के स्वतंत्र चिंतन की उपज है, यह कहना कठिन है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि पल्लव (१९२७) से युगांत (१९३७) तक की सारी रचनाओं में शेली की विचार-धारा, उसकी कविता, उसकी प्रतिभा की

छाप दिखलाई पड़ती है। परन्तु यह छाया इतनी गहरी नहीं है कि कवि की मौलिकता ढँप जाये। युगवाणी (१६३६) और ग्राम्या (१६४०) में कवि ने नई विचारधारा का सूत्रपात किया है। यह मार्क्सवाद के अध्ययन में लगा जान पड़ता है। रूस में जिस नई संस्कृति का उजाला फैल रहा है, वह उसे आदर्श संस्कृति लगती है। अपने मार्क्सवाद के अध्ययन के प्रकाश में वह जीवन को नए सिरे से देखने लगा है। उसमें थोथा आदर्शवाद नहीं रहा है। अब उसमें सामाजिकता का प्रवेश हो गया है और राजनीति की नई भूमि उसे मिल गई है। इन नई रचनाओं में अपनी पुरानी भाषा से वह चिपटा है, परन्तु शैली और अभिव्यंजना में क्रांतिकारी परिवर्तन वह ला सका है। 'गुंजन' में प्रकृति का एक चित्र है—

अब हुआ सांध्य स्वर्णाभ लीन,
सब वर्ण वस्तु से विश्व हीन।
गंगा के चल जल में निर्मल,
कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्णरेख सुन्दर,
पड़ गई नील ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर!
तरु-शिखरों से वह स्वर्णविहग,
उड़ गया खोल निज पंख सुभग।
किस गुहा-नीड़ में रे किस मग,
मृदु मृदु स्वप्नों से भर अंचल
नवनील-नील कोमल-कोमल
छाया तरु-वन में तम श्यामल

इसे 'युगवाणी' की इस कविता से मिलाइये—

अभी गिरा रवि, ताम्र कलश सा,
गंगा के उस पार,
क्लांत पांथ जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ प्रसार।

भूरे जलदों से धूमिल नभ, विहग-छदों से बिखरे—
धेनु-त्वचा-से सिहर रहे, जल में रोओं से छितरे।
दूर, क्षितिज में चित्रित-सी उस तरुमाला के ऊपर
उड़ती काली विहग पाँति रेखा-सी लहरा सुन्दर

या फिर 'झंझा में नीम' शीर्षक यह कविता देखिये—

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिलबिल
एक दूसरे से मिल
मित्रों-से हैं खड़े,
मौन मनोहर।
दोनों पादप
सह वर्षातप
हुए साथ ही बड़े
दीर्घ सुदृढ़तर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'युगांत' (१६३७) के बाद कवि एक नितांत अभिनव क्षेत्र में प्रवेश करता है। कहीं-कहीं छायावाद-काव्य की झलक अवश्य मिल जाती है, परन्तु धीरे-धीरे रंगीनी छूट रही है।

आधुनिक हिन्दी काव्य के स्रष्टा के रूप में पंत का लगभग उतना ही महत्व है जितना प्रसाद का। निराला का काव्य मुख्यतः विद्रोह का काव्य है। उनका अनुकरण नहीं हो पाया। संभव भी नहीं था। जिन हिल्लोल-छंदों का आविष्कार निराला की प्रतिभा ने किया, उनमें

कविता की रचना करना साधारण प्रतिभा का काम नहीं था। प्रसाद की शैली में लाक्षणिकता और अभिव्यंजना की प्रधानता थी। वह पंडित-कवि की शैली थी। वैसा वाग्वैदग्ध्य भी सबके लिए संभव नहीं हो सकता था। इन दोनों कवियों ने पंत से अधिक मौलिकता दिखाई। अंग्रेज़ी-काव्य का इन पर प्रभाव बहुत कम था और नये काव्य का पाठक अंग्रेज़ी के रोमांटिक काव्य से परिचित छात्र वर्ग या अध्यापक वर्ग ही हो सकता था। पंत के काव्य में इन वर्गों ने शेली और कीट्स को पुनर्जीवित पाया। वही भाव, वही भाव-व्यंजना, वही इने-गिने चुने छंदों में रसानुभूति। इसीसे पंत का काव्य अधिक लोकप्रिय हुआ। जो हिन्दी-संस्कारों की बात जानते थे, उन्होंने पंत की कविताओं की भाषा का विरोध किया। अंग्रेज़ी शब्द और शब्द-समूह वैसे ही अनूदित रखे मिले। परंतु अंग्रेज़ी रोमांटिक काव्य का प्रेमी तरुण वर्ग पंत को ले उड़ा।

परंतु इससे यह नहीं समझना है कि पंत ने हिन्दी काव्य को मौलिक रूप से कम दिया या कुछ नहीं दिया। वास्तव में शब्दकोष, भाषा, शैली, छंद, भावधारा सब में पंत की देन बहुत बड़ी है। 'पल्लव' की भूमिका में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया था, वह साहस बराबर बना रहा। वे हमारे सबसे बड़े कलाकार कवि हैं। यदि प्रसाद और निराला कविता के क्षेत्र में न आते तो केवल पंत का कविता के बल पर ही इतनी ही बड़ी क्रांति हो जाती। सच तो यह है कि प्रसाद और निराला ने हिन्दी जनता को चकित अवश्य कर दिया, परंतु इस जनता को नई कविता की तरफ़ आकर्षित करने और उसे नए काव्य-संस्कार देने का सारा श्रेय पंत को ही मिलना चाहिये। भाव-क्षेत्र और विचार-क्षेत्र में भी उन्होंने ही सबसे अधिक योग दिया है। जो कवि 'वीणा' में रवीन्द्र की कविता तुतला-तुतला कर गा रहा है, जो कवि 'पल्लव' में 'उपमा-उत्प्रेक्षा की खिलवाड़' को ही काव्य समझ रहा है, वही कवि 'गुञ्जन' में हमें

जीवन-मरण, दुःख-सुख के प्रति अत्यंत सुन्दर पदावली में नया दृष्टिकोण दे सकता, उसी ने 'ज्योत्स्ना' और 'युगांत' में मानववाद को जन्म दिया, वही अब सामाजिक और राजनैतिक चेतना के आधार पर नये काव्य (प्रगतिवाद) की नींव डाल चुका है। 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक कवि ने जितनी मंज़िले पार कीं, उतनी किसी भी कवि ने नहीं कीं। अब 'स्वर्ण-किरण' (१६४७) में वह नई संस्कृति को कविता और कला का रूप देने चला है। प्रसाद की 'कामायनी' अवश्य बड़ी चीज़ है। निराला का सारा काव्य ऐतिहासिक और कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। परन्तु पंत का काव्य हिन्दी के अधिक निकट है। वह पाठक का हृदय इतनी शीघ्रता से छू लेता है कि वह चकित हो जाता है। अकेले पन्त का काव्य द्विवेदी-युग की कविता में प्राण-संचार करने में सफल हुआ है। प्रकृति, नारी, मानव-मनोभाव और मनुष्य के चिरंतन प्रश्नों के प्रति पंत का दृष्टिकोण सदैव क्रांतिकारी रहा है। काव्य-कला और विचार-धारा दोनों क्षेत्रों में सबसे बड़ी क्रांति पंत की कविता ने ही की है। भाषा का इतना बड़ा कलात्मक प्रयोग तो हिन्दी में कभी हुआ ही नहीं। 'अनंग' कविता में कवि कहता है—

कहाँ मेघ औ' हंस, किन्तु तुम
भेज चुके संदेश अजान!
तुड़ा मरालों से मन्थर धनु,
जुड़ा चुके हो अगणित प्राण!

भाषा की समर्थता 'परिवर्तन' की इन पंक्तियों से दर्शनीय है—

विश्वमय हे परिवर्तन!
अतल से उमड़, अकूल, अपार,
मेघ से विपुलाकार;
दिशावधि में पल विविध प्रकार

अतल में मिलते तुम अविकार !
अहे अनिर्वचनीय ! रूप धर भव्य, भयङ्कर;
इन्द्रजाल-सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर,
गरज, गरज, हँस, हँस, चढ़ गिरि, छा, ढा भू-अम्बर
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर !
अखिल विश्व की आशाओं का इन्द्रचाप-वर
अहे तुम्हारी भीम-भृकुटि पर
अटका निर्भर !

अभी पिछले दिनों में 'नया साहित्य' (मासिक पत्र) में उनका स्वामी विवेकानन्द के 'सन्यासी का गीत' का हिन्दी रूपांतर छपा है। इन रचनाओं से द्विवेदीयुग के सर्वश्रेष्ठ कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की कोई भी रचना मिला लीजिये, इस में कोई संदेह नहीं पंत की रचना भाषा, सौष्ठव और अभिव्यंजना में भारी पड़ेगी। यदि छायावादी कवि हिन्दी काव्य में नहीं आते तो क्या नहीं आता, आज इसकी कल्पना करना कुछ कठिन है। आचार्य शुक्लजी का कहना है कि उस समय अनेक कवि कविता को रससिक्त करने का प्रयत्न कर रहे थे और कालांतर में वे अभिव्यंजना के नये-नये ढङ्ग निकाल लेते। परन्तु वे इतनी दूर नहीं जा पाते जितना पंत गये या प्रसाद गये या निराला गये। छायावाद ने हमारी कविता को विश्वजनीन व्यापकता दे दी। भारतीय काव्य-परम्परा से एकदम नाता तोड़ कर हमने पश्चिम के काव्य और काव्यशास्त्र से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया। एक दशक के भीतर इतना बड़ा परिवर्तन कदाचित् किसी भी देश के काव्य में नहीं हुआ। इस परिवर्तन का सबसे बड़ा श्रेय पंत को ही मिलेगा। शेली, कीट्स, टेनीसन, बाइरन, वर्ड्सवर्थ, रवीन्द्र, कालिदास इन सब पूर्वी-पश्चिमी प्रतिभावान कवियों के काव्य से प्रेरणा लेकर, इनके पद-चिह्नों पर चल कर पंत ने हिन्दी कविता में

जिस क्रांति का सृजन किया वह विश्वसाहित्य में अभूतपूर्व है। केवल पंत की कविता के अध्ययन से हम छायावाद-काव्य की सारी प्रवृत्तियों—और सर्वश्रेष्ठ प्रवृत्तियों—से परिचित हो जाते हैं।

(घ) महादेवी वर्मा

[१]

आध्यात्मिक दुःख-सुख (या रहस्यवाद) छायावाद-काव्य का एक प्रधान अंग है। लगभग सभी छायावादी कवियों ने इस विषय को अपनाया है, परन्तु आदि से अंत तक इसी एक विषय को अपनी अनुभूति और कला से भरने वाली कवियित्री महादेवी वर्मा हैं। जिस समय उन्होंने काव्य में प्रवेश किया उस समय पंत की लोकप्रियता विशेष रूप से बल प्राप्त कर चुकी थी। महादेवी की प्रारम्भिक कविताओं पर पंत की शैली का प्रभाव है। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति को अपना एकमात्र विषय बना लिया। इस क्षेत्र के लिए उन्हें नई भाषा-शैली की योजना करनी पड़ी और उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से प्रस्फुटित हो सका।

महादेवी का काव्य मात्रा में अधिक नहीं है। नीहार (१६३०), रश्मि (१६३२), नीरजा (१९३५), सांध्यगीत (१६३६) और दीपशिखा (१६४२) उनके कविता-संग्रह हैं। पिछली चार रचनाओं का एक संग्रह 'यामा' नाम से १६४० में प्रकाशित हुआ था, परन्तु उसमें सजधज के अतिरिक्त नया कुछ भी नहीं था, इन्हीं थोड़ी कविताओं के बल पर महादेवी वर्मा को आधुनिक काव्य में शीर्ष-स्थान प्राप्त है। साधारण हिन्दी पाठक उन्हें समझ नहीं पाता। परन्तु उनकी गीतिमाधुरी में वह भी बह जाता है। प्रसाद और निराला ने जिस गीतिकाव्य को जन्म दिया था, उसका सबसे श्रेष्ठ, सब से मधुर रूप महादेवी की कविता में ही मिलता है। खड़ी बोली हिन्दी का सारा भाव-वैभव, सारा ऐश्वर्य, सारा वेदनामाधुर्य 'सांध्यगीत' और

'दीपशिखा' की रचनाओं में मिलेगा । ये रचनाएँ आध्यात्मिक तो हैं; परन्तु 'गीतांजलि' की श्रेणी में नहीं आतीं । इन्हें तो सन्तों, दक्षिणी शैव और वैष्णव संतों भक्तों और ईसाई मर्मियों की रचनाओं की श्रेणी में रखा जाना चाहिये । जो हो, महादेवी की रचनाएँ आधुनिक भारतीय साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं ।

महादेवी को दुःख-सुख का प्रधान कवि कहा जाता है । उनकी पंक्तियों में रोदन है । उनकी कविताओं में दुःख की बड़ी कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । यह दुःख उन्हीं की कविताओं में नहीं पाया जाता । लगभग सभी आधुनिक कवियों ने एक प्रकार के आध्यात्मिक असन्तोष का अनुभव किया है और वह दुःखवाद के सारे 'सरगम' पर दौड़ गये हैं । इस दुःखवाद की पहली कवियित्री महादेवी हैं । प्रसाद के "आँसू" और पंत की "ग्रंथि" से लेकर महादेवी द्वारा परिपुष्ट होती हुई भगवतीचरण वर्मा और बच्चन में जाकर दुःखवाद की धारा दो विशेष दृष्टिकोण ग्रहण करती हुई दिखाई पड़ती है। छायावाद के प्रारम्भ काल का वातावरण भाव-प्रधान था और जैसे जैसे राजनैतिक कारणों से बुद्धितत्त्व को विशेष प्रश्रय मिलता गया, उस पर बुद्धि की प्रखर किरणें पड़ीं और दुःखवाद के नये पहलू का विकास हुआ । पहले दुःख की कविताएँ अस्पष्ट, आध्यात्मिक संकेत-प्रधान थीं । आज दुःख की कविताएँ अधिक स्थूल हैं और वर्तमान जीवन के प्रति असन्तोष उनमें साफ़ झलकता है । बच्चन की कविताओं में तो वह मुखर हो उठा है ।

महादेवी का दुःखवाद आध्यात्मिक है । उनके दर्शन के अध्ययन, स्त्री-स्वभाव और साहित्यिक परम्पराओं से प्राप्त हुई सुगमता ने उनके इस आध्यात्मिक दुःखवाद को एक विशिष्ट रूप दे दिया है । श्री राय कृष्णदास ने "नीरजा" की भूमिका में लिखा है—"उनकी (महादेवी की) काव्य-साधना आध्यात्मिक है । उसमें आत्मा का

परमात्मा के प्रति आकुल प्रणयनिवेदन है। कवि की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी दृष्टि से, विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनंत, अलौकिक, चिर-सुन्दर की छाया-मात्र है।" उनके इस विचित्र दृष्टिकोण से उनके एक विशिष्ट दर्शन और उनकी अपनी काव्यकला का जन्म हुआ है।

'नीरजा' के पहले गीत से ही महादेवी का दर्शन स्पष्ट हो जाता है। वे आत्मा को प्रोषितपतिका के रूप में पाती हैं। सहसा उन्हें एक पारलौकिक सम्बन्ध का आभास मिलने लगता है और उनका हृदय एक प्रकार की टीस से क्रन्दन करने लगता है। उनके दर्शन को वास्तव में उसी अर्थ में दर्शन कहा जा सकता है जिस अर्थ में हम रहस्यवाद को दर्शन कहेंगे। सच बात तो यह है कि कुछ दार्शनिक अनुभव-ज्ञान, साक्षात्कार या सन्तों की परिभाषा में सहज ज्ञान द्वारा सत्य की प्राप्ति को दर्शन का विषय नहीं मानते। वे पृथ्वी से अधिक निकट रहने में ही रक्षा समझते हैं। उनका एकमात्र साधन है तर्क, परन्तु रहस्यवादी का ज्ञान दूसरे प्रकार का ज्ञान है। उसकी साधना की धारा विपरीत है। पहला समष्टि से व्यष्टि की ओर जाता है, दूसरा व्यष्टि से समष्टि की ओर। रहस्यवादी की आँख एक दिन प्रभात में खुल पड़ती है और तब उसे समष्टि दिखलाई ही नहीं पड़ती। एक ही व्यक्ति जैसे, एक ही भाव जैसे उसकी पुतलियों में समा गया हो। इस संसार में वह अकेलेपन का अनुभव करता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रेम प्रतीकों में अव्यक्त-व्यक्त, परमात्म-आत्म, पूर्ण-अपूर्ण या ससीम-असीम का एक पारस्परिक सम्बन्ध प्रत्येक युग के रहस्य-वादियों के गान का विषय रहा है।

जिस गीत के संबंध में हमने ऊपर कहा है उसका विश्लेषण करने पर हमें कई बातें मिलती हैं। चरमतत्त्व और आत्मतत्त्व का अनन्योन्याश्रित संबंध है। यह प्रकृति न जाने कब से परमात्मा से

विलग हुई है, परन्तु इसे इस बात का, इस अलगाव का दुःख है। उसके और परमात्मा के बीच में इस दुःख के स्रोत द्वारा एक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। युग-युग से यह सम्बन्ध चला आता है। मानवी आत्मा इस दुःख-स्रोत के ही भीतर से कमल के रूप में प्रगट होकर जल के ऊपर उठती है। कदाचित् प्रकृति के इस दुःख से ही उसकी उत्पत्ति हुई है। उसमें इसी पारलौकिक पीर का सौरभ है। तत्त्वरूप में यह आत्मा निर्विकार है, निष्काम है। इसकी स्थिति पूर्ण ज्ञान में होने से यह विरागी है। उसे केवल एक बार इस पारलौकिक सम्बन्ध का ज्ञान हो जाय और अव्यक्त की एक झलक या मुस्कान दीख पड़े और वह अपनी सारी पूर्णता में खिल जायगी। इस गीत में कई सिद्धांत उपस्थित किये गये हैं—(१) इस 'प्रेम की पीर' में आत्मा की स्थिति स्वाभाविक बात है, (२) इस पीर का विकास करने या इसका अधिक-अधिक अनुभव करने में आत्मतत्त्व परमात्मतत्त्व के अधिक निकट पहुँचता है, (३) शांति, मुक्ति या चरमावस्था में पहुँचने के लिए, किसी अंश से हो, परमात्मा के विशेष अनुग्रह की आवश्यकता है। इस तरह इस दर्शन में विशिष्टाद्वैत की थोड़ी-सी झलक आ जाती है। आत्मा कितनी ही साधना करे, परमात्मा की थोड़ी अनुकंपा आवश्यक है। इस अनुकंपा के लिए याचना कविता का बड़ा सुन्दर विषय है। स्त्री-पुरुष के रूपक में यह याचना और भी सुन्दर हो जाती है, (४) आत्मा की परोक्ष के प्रति विह्वलता आत्मा की पूर्वानुभूति या अधिक स्पष्ट शब्दों में अस्तित्व की अविच्छिन्नता का प्रमाण है। दुख जीवनतंतु को छेड़ कर एक प्रकार की अतीन्द्रिय झंकार उठा देता है और हमें एकाएक अपने दैवी सम्बन्ध और सनातन जीवन-धारा का ज्ञान हो आता है।

महादेवी जीवन को वेदना की अभिव्यक्ति मानती हैं। यह दुःख एक प्रकार की साधना है। किसी भी प्रकार अन्य प्रकार की साधना की आवश्यकता नहीं।

[१] विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास

[२] अपना जीवन दीप मृदुलतर
वर्ती कर निज स्नेहसिक्त उर

[३] तू जल-जल जितना होता क्षय
मधुर मिलन में मिट जाता तू
उसकी स्मिति उज्ज्वल में घुल खिल
मधुर मधुर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पथ आलोकित कर

जलता हुआ दीपक इनके लिए आत्मा का सबसे सुन्दर प्रतीक है। तम अज्ञान अथवा परवशता का। अंधकार और प्रकाश समाप्त न होनेवाला [illegible] निरन्तर रहते हैं। अंधकार और प्रकाश का भेद अज्ञान के कारण है। विरह की साधना द्वारा ज्ञान होते ही भेद जाता रहता है। परन्तु यह ज्ञान बाहर से नहीं आता। इसके लिए तन (पार्थिव बंधनों और विकारों) को मोम की तरह जलाना होगा, मन को जलाना होगा, चेतना को विदा करना होगा। साधना की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होकर कवियित्री इसी अध्यात्म-ज्ञान की ओर पहुँच रही है। 'दीपशिखा' की एक कविता में यह स्पष्ट है—

मोम-सा तन घुल चुका है, दीप सा मन जल चुका है
चल पलक हैं निर्निमेषी,
कल्प-पल सब तिमिरवेषी,
आज स्पंदन भी हुई उर के लिए अज्ञात देशी!
चेतना का स्वर्ण जलती
वेदना में गल चुका है

अथवा

मुझे झंझा-उच्छ्वास पुकारें
तरी-सागर, लहरें पतवारें,
मुझे अब पार है एक कहानी
अदेश अकुल सदा बहती मैं
अकेली वियोग कथा कहती मैं

ये कविताएँ कवियित्री को उस ओर लिए जा रही हैं जहाँ रहस्यवादी के लिए अज्ञात अज्ञात नहीं रह जाता और वह परोक्ष सत्ता की वीन बन जाता है। 'प्रसाद' ने ठीक ही कहा है—कि आलंबन के प्रतीक बदलते रहते हैं क्योंकि रहस्यमय अनुभूतियुग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुना करती है। महादेवी की कविता की अस्पष्टता शब्दों और अर्थों की उतनी नहीं जितनी इन प्रतीकों की है। उनके प्रतीकों की अपनी भाषा है और उससे परिचित हो जाने पर ही हम उनके काव्य का रसास्वादन कर सकते हैं।

महादेवी साधना में विश्वास करती हैं यह हम पहले कह चुके हैं, परन्तु यह योग-जैसी कुछ कठिन साधना नहीं है। यह साधना है प्रेम में अधिक-अधिक रमते जाना, 'सूली की सेज पर सोना।' इस तरह महादेवी में मीरा की झलक मिल जाती है। परन्तु मीरा में महादेवी-जैसी तीव्र कल्पना नहीं है। उन्होंने निर्गुण और सगुण में समन्वय स्थापित किया है। महादेवी निर्गुण या शायद इससे भी परे की उपासक हैं। उन्होंने कवि-प्रतिभा और गहरी अनुभूति के द्वारा लक्ष्य को सुलभ करने की चेष्टा की है। मीरा ने कृष्ण का एक प्रतीक ले लिया था। इसके प्रयोग के पीछे परम्परा का बल होने के कारण वह हमें अधिक सुगम है। महादेवी के लिए 'सौन्दर्य' प्रतीक है परन्तु सौन्दर्य के उपादान सैकड़ों भिन्न वस्तुएँ होने के कारण प्रतीकों की

संख्या भी बढ़ जाती है। इन प्रतीकों के भीतर से अद्वैत-शक्ति का प्रश्न उनके सामने है। इसीलिए वे बन्धनों से भागती नहीं—

क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन
बीन-बन्दी तार की झंकार है आकाशचारी
धूलि के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिर हारी
बाँधती निर्बंध को मैं बंदिनी निज बेड़ियाँ गिन

हिंदी के दूसरे श्रेष्ठ दार्शनिक कवि निराला का भी संसार के प्रति यही दृष्टिकोण है परन्तु अद्वैतवाद से सम्बन्धित होने के कारण वे जहाँ-तहाँ आत्मा की निर्लिप्तता का संदेश देते हैं। 'गीतिका' की भूमिका में वे कहते हैं—'मैं दूर, सदा ही दूर'। दोनों कवि यह विश्वास रखते हैं कि यह ब्रह्मांड बीज-रूप से उनके शरीर में व्याप्त है। भूल की बेड़ी में निर्लिप्त बंदी हो गया है। निराला ने एक गीत—'जग का देखा एक तार—' में परमात्म-सत्ता पर मानवी-रूप का आरोप किया है। महादेवी अपनी ससीमता पर गर्व करती हैं। बात एक है।

अंत में, महादेवी का दार्शनिक दृष्टिकोण इस पद से प्रगट हो जाता है—

मेरा प्रतिपल छू जाता है
कोई कालातीत
स्पंदन के तारों पर गाती
एक अमरता गीत
भिक्षुक-सा रहने आया दृग-तारक में आकाश

उनकी सारी कविता इसी दार्शनिक चिंतन से स्फुरित हुई है परन्तु उसमें बुद्धिवाद दिखलाई नहीं देता। उनके हृदय ने उनके दार्शनिक चिंतन को आत्मसात कर लिया है और अत्यंत कलापूर्ण छंदों में नवीन प्रतीकों द्वारा उसका प्रकाशन किया है।

महादेवी के गेय गीतों के विषय हैं प्रकृति, करुणा (दुःखवाद), विश्वमैत्री की सांकेतिक अभिव्यंजना, विभिन्न रूपों में रहस्यवाद की अवतारणा। महादेवी की प्रतिभा चित्रप्रिय (Pictorial) है इसी से उनके वस्तु-विधान में वर्ण-वैचित्र्य अधिक रहता है। 'रश्मि' में इन्द्रधनुष के सात रंग हैं। महादेवी को करुणा की व्यंजना करने वाला गहरा काला या हलका धुँधला रंग प्रिय है परन्तु वे उसकी अग्रभूमि में इन्द्रधनुष की तरह चमकीले रंग रखकर उसे और भी समुज्ज्वल कर देती हैं। उन्हें चटकीले रंग भी प्रिय हैं। महादेवी की कदाचित् कोई भी प्रौढ़ कविता ऐसी नहीं मिलेगी जिसमें रंगीन चित्र न हों। कहीं-कहीं तो वे चित्रों को अपना लक्ष्य ही बना लेती हैं या उसके द्वारा अनुभूति जगाने का प्रयत्न करती हैं। महादेवी के काव्य में रंग धीरे-धीरे बल इकट्ठा करते हैं और इनके द्वारा जब एक अलौकिक वातावरण तैयार हो जाता है तो कवियित्री अनुभूति के क्षेत्र में पहुँच जाती हैं। इस प्रकार महादेवी कल्पना से अनुभूति की ओर पहुँचती हैं और रंग उनकी कल्पना का सबसे महत्वपूर्ण अंश है। परन्तु महादेवी पूरा-पूरा साङ्गोपांङ्ग चित्रण नहीं करतीं। वे संकेत देती चलती हैं। इस तरह वे रूप स्पष्ट नहीं कर पातीं और कभी-कभी उनके विभिन्न रंगीन चित्रों में रंगों की विषमता के सिवा चित्रों को जोड़ने वाली कोई वस्तु नहीं रहती। लेकिन शायद यह दोष नहीं है क्योंकि इसके कारण उनके चित्र प्रकृति-चित्र से कहीं आगे बढ़ गये हैं। साथ ही वे क्रियाओं, विशेषणों और ध्वनियों को भी चित्रित करती हैं। अंग्रेज़ी साहित्य के प्री-रेफिलाइट (Pre-Raphelite) कवि चित्रकारों की तरह उनके चित्रों में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है जो अपरोक्ष पक्ष की ओर इंगित करते हैं। ये प्रतीक उनकी रहस्यवादी भावना को स्पष्ट करते हैं। ये प्रतीक कई हो सकते हैं—जलता हुआ दीपक, कमल पर गुञ्जार करता हुआ भौंरा इत्यादि। उनके इस प्रकार के चित्रों का एक उदाहरण है—

हिमस्नात कलियों पर जलाये
जुगनुओं ने दीप से
ले मधुप राग समीर ने
वन-पथ दिये हैं लीप से
गाती कमल के कक्ष में
मधुगीत मतवाली अलिनि

महादेवी के चित्रों में दो बातें ध्यान देनी पड़ेंगी। वे प्रकृति के बड़े-बड़े रूपों का चित्रण करती हैं और उनके चित्र महान् चित्रपट पर खिंचे होते हैं और वे चित्रमात्र से ऊपर उठकर अधिक महान् की ओर मन को नहीं ले जाते। यों विशालता के चित्र हमें निराला के काव्य में भी मिलते हैं, परन्तु वहाँ विशालता का सांकेतिक ढंग से प्रयोग नहीं किया गया है। महादेवी में यह संकेत या तो रंग द्वारा आता है या उन महान् प्रकृतिरूपों में आरोपित की हुई हमारी परिचित वस्तुओं के द्वारा। उदाहरण-स्वरूप, महादेवी का प्रात का एक चित्र इस प्रकार है—

धर कनक थाल में मेघ
सुनहला पाटल-सा
कर बालारुण का कलश
विहग-रव मङ्गल सा
आया प्रियपथ से प्रात
मैं पहचानी नहीं

रंगों के प्रयोग में महादेवी पंत से प्रभावित हुई हैं, परन्तु उन्होंने अपने लिए वे रंग चुने हैं जो पंत के रङ्गों की तरह चमकीले नहीं हैं। पंत के रंगों में तेज़ी अधिक है। वे रोमांटिक कवि की रंग के प्रति उत्सुकता मात्र बतलाते हैं। उससे अपरोक्ष की ओर संकेत नहीं मिलता। बहुत चमकीले रंगों से ऐंद्रियता प्रकट होती है, अतीन्द्रिय

की ओर वे हमें बहुधा नहीं ले जाते। कहीं-कहीं एक दो रंग चटकीले हुए तो वे रहस्यवाद की उद्भावना के चित्रण के लिए ठीक हो सकते हैं। सदैव ही गहरे रंगों का प्रयोग खेल सा हो जाता है। इसीलिए महादेवी के रंग अधिक गम्भीर है, चाहे फिर उनमें चटकीलापन भले ही हो।

जैसा हमने ऊपर लिखा है, महादेवी बहुधा रंग ही देकर नहीं रह जातीं, उसके साथ गन्ध आदि वस्तुओं के दूसरे गुणों को भी खींच लाती है। इससे उनकी अनुभूति की संश्लिष्टता ही प्रकट होती है—

तम ने धोया नभ ंथ
सुवासित हिम जल से

यहाँ तरलता, सुगंध और अंधकार तीनों की अनुभूति साथ-साथ आती है। एक बात महादेवी के चित्रों के संबंध में निराली है। वे बड़ी चीजों का बड़े छोटे रूप में चित्रण करती हैं। इस प्रकार वे ऐसी बात पैदा कर देती हैं जो केवल कवि को सुलभ है, चित्रकार की पकड़ में नहीं आती। किसी भी दूसरे प्रकार से इतनी विशद चित्रपटी उपस्थित नहीं हो सकती जितनी इस पद्य में हुई है—

पिक की मधुमय वंशी बोली;
नाच उठी सुन अलिनी भोली;
अरुण सजल पाटल बरसाता
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदुल अंक धर दर्पण सा सर
आँज रही निशि दृग इन्दीवर

यहाँ एक संश्लिष्ट चित्र है। इसमें पाँच रंगों का प्रयोग हुआ है। लाल पाटल के लिए, गुलाबी किरणों के लिए, उजला काला ताल के के लिए, भूरा काला रात के लिए, गहरा काला उसकी आँखों के

लिए। पहली पंक्ति में अरुणोदय के इस चित्र में गूँज पैदा कर दी गई है। दूसरी पंक्ति द्वारा चित्र की जड़ता दूर कर उसमें गतिशीलता लाई गई है। सूर्य, कमल और भौंरे का महादेवी ने प्रतीक के ढंग पर प्रयोग किया है।

[२]

महादेवी वर्मा का काव्य कुछ इतना गीतात्मक, कुछ इतना अस्पष्ट कुछ इतना भ्रामक है कि उसपर कुछ कहते बनता नहीं। उनकी कला में विकास का वह क्रम भी नहीं मिलता जो अन्य कवियों में मिलता है। अधिकांश कविताएँ शीर्षकहीन हैं, इसलिए जहाँ अर्थ अस्पष्ट हो, वहाँ समीक्षक के हाथ बँधे हैं। 'नीहार' में १९२३ तक की रचनाएँ हैं। यह उनका पहला संग्रह है। कालक्रम के अनुसार इस संग्रह की सब पहली कविता 'मुरझाया फूल' (१९२३) है। इसमें बालिका का मात्र उच्छ्वास है—

मत व्यथित हो 'फूल' किसको
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सब को बनाया
है यहाँ करतार ने

यह कह कर वह दुःखों से समझौता कर लेती है। इस संग्रह की कुछ कविताओं में रवीन्द्र की कविताओं का स्पष्ट प्रभाव है। 'कहाँ' (१९२६), अनोखी भूल (१९२६), अनन्त की ओर (१९२८), उस पार (१९२४) आदि कविताएँ इसका प्रमाण है। वास्तव में 'नीहार' (१९३०) और रश्मि (१९३२) की कविताएँ रवीन्द्र और पंत की भावनाओं और भाषाशैली से प्रभावित हैं। इन कविताओं में भावुकता की बहुलता इतनी अधिक है कि अधिकांश कविताओं से न किसी अर्थ विशेष की व्यंजना होती है, न वे कोई रसानुभूति प्रदान करती हैं। इन्हीं संग्रहों की कविताओं ने जनता में ववंडर उठा दिया

था।—'यह भी कोई काव्य है'—अनेक पत्रों में इन्हीं कविताओं की पंक्तियों को लेकर कार्टून बने और अनंत पथ के यात्री कवि की खिल्ली उड़ाई गई। परन्तु धीरे-धीरे ये कविताएँ लोकप्रिय होने लगीं। उसकी विचित्र शब्दावली और रहस्यमयी अस्पष्टता से हिन्दी का पाठक वर्ग परिचित हो गया। जिस भावुकता, जिस रहस्यमयता, जिस कल्पनातिरेक के दर्शन इन कविताओं में हुए वे विचित्र होने के कारण समीक्षक भी इस नये काव्य के सम्बन्ध में सोचने के लिए मजबूर हुआ। जो नया संसार कवियित्री बना रहीं हैं, वह कहाँ है, कौन सा है—

चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार!

कलियों के उच्छ्वास शून्य में तानें एक वितान,
तुहिन कणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछादें गान;
जहाँ सपने हों पहरेदार,
अनोखा एक नया संसार

करते हों आलोक जहाँ बुझ बुझ कर कोमल प्राण,
जलने में विश्राम जहाँ मिटने में हो निर्वाण;
वेदना मधु मदिरा की धार,
अनोखा एक नया संसार।

मिल जावे उस पार क्षितिज के सीमा-सीमाहीन,
गर्वीले नक्षत्र धरा पर लोटें होकर दीन!
उदधि हो नभ का शयनागार
अनोखा एक नया संसार

इस 'अनोखे नये संसार' को १९३०-३२ का हिन्दी पाठक क्या समझता? यह सब तो उसे चमत्कार ही लगा। भला इन पंक्तियों को

सुकुमार भावुकता उँगलियों पर मात्रा गिनने वाले समीक्षकों के आगे अपना हृदय कैसे खोलती—

थकी पलकें सपनों पर डाल
व्यथा में सोता हो आकाश,
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलों के उर में अवसाद;
वेदना की वीणा पर, देव,
शून्य गाता हो नीरव राग,
मिलाकर निश्वासों के तार
गूँथती हो जब तारे रात;
उन्हीं तारक-फूलों में, देव,
गूँथना मेरे छोटे प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण!

परन्तु इन भावुकता-प्रधान कविताओं में कुछ ऐसी हैं जो महादेवी की प्रारम्भिक रचनाएँ होने पर भी हिन्दी काव्य की अमर सम्पत्ति रहेंगी। 'मेरा एकांत' ऐसी ही कविता है—

कामना की पलकों में झूल
नवल फूलों के छूकर अंग,
लिए मतवाला सौरभ साथ
लजीली लतिकाएँ भर अंक,
यहाँ मत आओ मत्त समीर!
सो रहा है मेरा एकांत!
लालसा की मदिरा में चूर
क्षणिक भंगुर यौवन पर भूल,
साथ लेकर भौंरों की भार
विलासी हे उपवन के फूल!

बनाओ इसे न लीलाभूमि
तपोवन है मेरा एकांत !
निराली कलकल में अभिराम
मिलाकर मोहक मादक गान,
छलकती लहरों में उद्दाम
छिपा अपना अस्फुट आह्वान,
न कर हे निर्झर! भंग समाधि
साधना है मेरा एकांत !

इस प्रकार की कविताएँ निस्सन्देह हिन्दी कविता का गौरव हैं, 'रश्मि' की कुछ कविताओं में आध्यात्मिक वियोग-मिलन को विषय बनाया गया है। 'स्मृति' कवियित्री कहती हैं—

कहाँ से आई हूँ कुछ भूल
कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लेता—
विस्मृति सरिता के कूल ?

'मैं और तुम' शीर्षक कवि निराला, इकबाल, रवीन्द्र और नज़रुल की इसी शीर्षक की रचनाओं के साथ रखी जा सकती है :

तुम अनन्त जलराशि ऊर्मि मैं
चंचल-सी अवदात,
अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो
कूलों पर अज्ञात।
हिम शीतल अधरों से छूकर
तप्त कणों की प्यास,
बिखराती मञ्जुल मोती - से
बुद-बुद में उल्लास।

देख तुम्हें निस्तब्ध निशा में
करते अनुसंधान,
श्रांत तुम्हीं में सो जाते जा
जिसके बालक प्राण।

इस प्रकार की आध्यात्मिक कविताओं का पूर्ण विकास 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' में मिलता है।

'नीरजा' (१६३५) में कवयित्री 'गीत'-कार के रूप में सामने आती हैं। काव्य-शैली और विषय भी बँध से गये हैं। प्रकृति का यह पावस-वैभव देखिये—

रूपसि तेरा घन केश पाश
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल,
लहराता सुरभित केशपाश!
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास!
सौरभ-भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल,
चल अंचल से झरझर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल;
दीपक सा देता बारबार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास!
+ + +
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वकपाँतों का अरविन्द हार;
तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जाती मलयज बयार,
केकीरव की नूपुर ध्वनि सुन
जाती जगती की मूक प्यास

साँझ का एक चित्र देखिए—

नव इन्द्रधनुष सा चीर
महावर अंजन ले;
अलि-गुञ्जित मीलित पंकज—
—नूपुर-रुनझुन ले—
फिर आई मनाने साँझ
मैं मानी नहीं

विषय वही है अध्यात्म। परन्तु इस चित्रपटी से प्रकृति भी सजाई गई है। इसी संग्रह में हम पहली बार कवियित्री को प्रौढ़ रूप में देखते हैं। 'प्रिय गया है लौट रात!' और 'मुस्काता संकेत भरा नभ, अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं' जैसे गीत किसी भी साहित्य को धन्य कर देंगे। उनमें जितनी साधना छिपी है वह तो कवियित्री ही जानें, रहस्यमय प्रेम और मिलन और वियोग का जितना सुन्दर प्रकाशन हिन्दी भाषा के माध्यम से हो सकता है उतना उनमें है। मीरा, कबीर और अण्डाल की सारी प्रतिभा, सारी कला, सारी अनुभूति इन गीतों में सँजो कर रख दी गई है। 'सांध्यगीत' (१६३६) और 'दीपशिखा' (१६४२) में यही भाव-धारा और भी उज्ज्वल और भी अधिक अनुभूतिपूर्ण होकर सामने आती है। वहाँ शब्द-शब्द हृदय के स्पंदन में घुल जाते हैं :

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी!
दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों के पास प्रियतर;
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर;
आज है निःसीमता
नव स्वप्न की अनुरागनी सी।
एक स्पंदन कह रहा है अकथ युगयुग की कहानी;
हो गया स्मित से मधुर इन लोचनों का क्षार पानी;

मूक प्रति निश्वास है
लघु प्राण की अनुगामिनी सी !

या

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो !
हो उठी हैं चंचु छूकर
तीलियाँ भी वेणु सस्वर ;
बंदिनी स्पंदित व्यथा ले !
सिहरता जड़ मौन पिंजर
आज जड़ता में इसी को बोल दो

इस प्रकार के गीत से भावना इतनी अन्यतम है, इतनी काव्यमय है कि उसका अनुभव ही किया जा सकता है, वह आलोचना का विषय नहीं रह पाती। 'दीपशिखा' में कविता संगीत ही बन गई है—

हुए शूल अक्षत मुझे, धूलि चंदन !
अगरु-धूम सी साँस सुधि-गंध सुरभित,
बनी स्नेह-लौ आरती चिर अकंपित,
हुआ नयन का नीर अभिषेक-जलकण
सुनहले सजीले रंगीले धवीले,
हसित-कंटकित अश्रु-मकरंद गीले,
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन !

इन कविताओं ने छायावाद की सारा लांछा दूर कर दी है। आज चाहे नये जीवन और नये साहित्य के नये-नये प्रलय-स्रोत उमड़ कर इस महान साधना को डुबाना चाहें, यह साहित्य अपने में इतना बली है कि किसी भी तरह नष्ट नहीं हो सकता। 'आँसू' (१९२६), पल्लव (१९२७), परिमल (१९३०), गुञ्जन (१९३२), अनामिका (१९३६), तुलसीदास (१९३८), नीरजा (१९३५), सांध्यगीत

(१९३६), कामायनी (१९३६), चित्ररेखा (१९३५), चंद्रकिरण (१९३७) और दीपशिखा (१९४२)—इतनी बड़ी काव्यविभूति रवीन्द्र और अंग्रेजी रोमांटिक काव्यों के महान साहित्य-वैभव के सामने अपदार्थ नहीं सिद्ध होगी। यह साहित्य तो नहीं है। यह जीवन, कला और सौन्दर्य की साधना है। इसे प्राण पहचानता है। मन इसकी महानता का अनुभव करता है। इस सारे काव्य-साहित्य में महानतम है महादेवी का काव्य—आकाश-चुंबि हिमश्रृंग की भाँति उज्ज्वल, शान्त, गंभीर!

(ङ) रामकुमार वर्मा

रहस्यवादी कवियों में डा० रामकुमार वर्मा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि उनकी पहली काव्य-रचना 'वीर हम्मीर' १९२४ में प्रकाशित हुई थी, परन्तु छायावाद की कविता में उनका योग १९३० से होता है। इसी वर्ष 'अभिशाप' (कविता) प्रकाशित हुई। इसके बाद अंजलि (१९३१), रूपराशि (१९३३), चित्ररेखा (१९३५) और चन्द्रकिरण (१९३७) आते हैं। इन काव्य-संग्रहों में हम उन्हें रहस्यवादी काव्य और कला के पथ पर तीव्रगति से अग्रसर होते पाते हैं। अभिशाप, अंजलि और रूपराशि में रामकुमार प्रकृति, सौन्दर्य और दुःखवाद के कवि हैं, परन्तु चित्ररेखा और चन्द्रकिरण में वे शुद्ध रहस्यात्मक आध्यात्मिक भूमि पर खड़े हैं। ये दोनों गीत-संग्रह छायावाद-काव्य में महत्वपूर्ण माने जायेंगे।

अन्य छायावादी कवियों में रामकुमार वर्मा भावक्षेत्र, कला और अभिव्यंजना की दृष्टि से महादेवी वर्मा के ही अधिक निकट हैं। आध्यात्मिक विरह-मिलन के उसी तरह के गीत उन्होंने भी लिखे, यद्यपि उन गीतों पर उनके अपने व्यक्तित्व की छाप है। उनका कबीर और संतसाहित्य का अध्ययन गंभीर है और कदाचित् इन्हीं से उन्हें इन गीतों के लिए प्रेरणा मिली है। परन्तु इन गीतों के पीछे

वैसी तीव्र अनुभूति नहीं जैसी तीव्र अनुभूति महादेवी वर्मा के गीतों के पीछे पाई जाती है। अधिकांश गीतों में अनुभूति से अधिक कल्पना और वाग्छल (conceit) के दर्शन होते हैं। चित्ररेखा की कुछ कविताएँ बड़ी सरस हैं। कवि यद्यपि कल्पना से अनुभूति को अधिक पसन्द करने लगा है पर वह न तो कल्पना का जाल पूर्णतया छिन्न कर पाया है, न पूरी मात्रा में व्यक्तव्य अर्थ का अनुभव कर पाया है। वह केवल अनुभव करने की कल्पना करता है। कल्पना और अनुभूति के बीच उसका चिन्तन सेतु का काम करता है। कवि प्रायः अपनी कल्पना को अनुभूति का रूप देने की चेष्टा करता है, परन्तु वह अनुभूति प्रायः उसके पांडित्य के गोरखधंधे में अपनी राह भूल जाती है। उसकी अनुभूति कल्पना का चिन्तन-साधित रूप है। इसी सामञ्जस्य के कारण अस्पष्टता और दुर्बोधता आ जाती है। चित्ररेखा का कवि अनुभूति के भावावेश में अपने में भूल नहीं सकता; कल्पना को भूल नहीं सकता और अपने ज्ञान को भी भूल नहीं सकता। महादेवी की कविताओं की दुर्बोधता इसलिए है कि कवियित्री अनुभूति से चिन्तन की ओर लौट आती हैं और चित्ररेखा की दुर्बोधता है कल्पना से अनुभूति की ओर दौड़ने के कारण। महादेवी वर्मा की कविताओं की अस्पष्टता उनके बेसुधपन के कारण है। चित्ररेखा की अतिरिक्त आत्मचैतन्य के कारण। महादेवी की कविता का सौन्दर्य अनुभूति की गम्भीरता के कारण है। चित्ररेखा इसलिए सुन्दर है कि स्थान-स्थान पर सौन्दर्य-कल्पना की उड़ान और चिन्तन में सामञ्जस्य स्थापित हो गया है। कल्पना और चिन्तन का सामञ्जस्य कविजनोचित हो सकता है, परन्तु कल्पना और अनुभूति का सामञ्जस्य पंडित की बुद्धि ही कर सकती है। कविता का लक्ष्य है अनुभूति। अनुभूति से चिन्तन अथवा कल्पना की ओर लौटने से काव्य अस्पष्ट हो जाते हैं। अनुभूति की कल्पना से तो काव्य प्राणहीन ही बन जाता है।

चित्ररेखा पर लिखते हुए श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'कवि यद्यपि कल्पना से अनुभूति को अधिक पसन्द करने लगा है पर न तो वह कल्पना का जाल छिन्न-भिन्न कर पाया है, न पूरी मात्रा में व्यक्तव्य अर्थ का अनुभव कर पाया है।' इसका अर्थ यह होता है कि इस रचना में कवि में कल्पना और अनुभूति दोनों का सहारा लिया है परन्तु कल्पना के सहारे विषय की मनोवैज्ञानिक परिस्थिति के साथ कवि इतना भावसाम्य उपस्थिति नहीं कर सका है कि वह उसमें डूब जाये। सौन्दर्य की भावना से निश्चय ही कवि का उद्देश्य सौन्दर्यपूर्ण प्राकृतिक संकेतों के लिए सौन्दर्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं। वह कुछ दूसरी चीज़ है। वह बाह्य जगत् की चीज़ नहीं, स्वयम् कवि के अंतर्जगत की चीज़ है। 'चित्ररेखा' स्वयम् सौन्दर्यानुभूति-प्रधान काव्य नहीं है; न उसमें सौन्दर्य-सृष्टि कवि का लक्ष्य है। वह कवि के अंतरजगत से संबंध रखता है। उसके गीत कवि के भीतर गूँजते हैं। उनका विषय रहस्य की अनेक अनुभूतियाँ हैं। उन अनुभूतियों तक कवि की पहुँच सौन्दर्य के द्वारा हुई है। रहस्यात्मक अनुभव को छंद में उतारते हुए कवि ने यह अनुभव किया है—यह प्रयत्न किया है कि उसे प्रकृति के सौन्दर्य में फलीभूत कर दे, अन्यथा सौन्दर्य से अनुभव की रूपरेखा बनाने में सहायता ले। 'चित्ररेखा' की इन कविताओं के लिए 'सांध्यगीत' की भूमिका में लिखी महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ नितांत सत्य हैं—"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।"

कुमार मूलतः सौन्दर्यवादी और रहस्यवादी कवि हैं। नारी-सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति सब उन्हें एक अज्ञात रहस्यमय सत्ता की ओर उन्मुख करते हैं। रहस्यवाद क्या है, इसके सम्बन्ध में बड़ा मतभेद

है, परन्तु 'कबीर के रहस्यवाद' ग्रंथ में स्वयं कवि ने उनकी परिभाषा इस प्रकार दी है—"रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।" इसी भावना में भर कर कवि प्रार्थना करता है—

मेरे जीवन में एक बार
तुम देखो तो अपना स्वरूप
मैं तुममें प्रतिबिंबित होऊँ,
तुम मुझमें होना है अनूप
राकाशशि अपनी रजतमाल
जब किरणों को पहनाता हो,
जब मधुऋतु में तरु का
लतिका से अंतर कम हो जाता हो
तब तुम बूँदों में बरस पड़ो
तुममें देखूँ अपना स्वरूप

परन्तु इस रहस्यमय मिलन की पहली सीढ़ी तो प्रिय के व्यक्त सौन्दर्य से तादात्म्य उत्पन्न करना है। अतः कवि के विचार में सौन्दर्यामृत का पान ही दिव्य जीवन है—

दिव्य जीवन है छवि का पान,
यही आत्मा की तृषित पुकार

(रूपराशि)

और जब वह इस सौन्दर्य साधना में कोई व्याघात देखता है, जब जरा-मृत्यु में सौन्दर्य की परिणति पाता है, तब निराशावादी बन जाता है, तब प्रकृति ही उसे सांत्वना देती है। प्रकृति का सौन्दर्य ही शाश्वत है।

प्रकृति के सम्बन्ध में अनेक रूपों में कवि की जिज्ञासा जाग उठती है। तारों को देखकर वह कहता है—

इस सोते संसार बीच
सजकर धजकर रजनी वाले,
कहाँ बेचने ले जाती हो
ये गजरे तारों वाले

(अंजलि)

परन्तु प्रकृति में भी तो परिवर्तन है। बसंत जाता है। पतझड़ आता है। अंत में कवि नियति की कठोरता को ही शाश्वत मान लेता है। उर्दू कवियों की भाँति वह भी फ़लक की संगदिली का रोना रोता है, आकाश को कोसता है—

और पत्ते का पतन जो हो गया कुछ अचर से चर
देख कर मैंने कहा अः यह निशा का मौन अंबर
शांत है जैसे बना है साधु संत निरीह निश्छल
किन्तु कितने भाग्य इसने कर दिये हैं नष्ट निर्बल

(चन्द्रकिरण, पृष्ठ १८)

इस प्रकार रहस्यमय सत्ता, प्रकृति और नारी के सौन्दर्य को नियतिवाद में गूँथ दिया गया है। कवि मधुर मिलन के गाने भी गाता है, परन्तु ऐसे गाने कम हैं, महादेवी भी वियोग के गाने ही अधिक गाती हैं, परंतु उनकी कविता में अनुभूति की मात्रा अधिक है। रामकुमार वर्मा वाग्विलास में बंध जाते हैं। वाग्छल (conceit) की प्रवृत्ति उनकी प्रारंभिक कविताओं में भी है। अराकान के वर्णन में शुजा के व्यथित मन का आरोप वे चारों ओर के शुष्क कठोर और नीरस पहाड़ी वातावरण पर कर डालते हैं—

ये शिलाखंड काले कठोर
वर्षा के मेघों से कुरूप

दानव से बैठे, खड़े या कि
अपनी भीषणता में अनूप
ये शिलाखंड मानों अनेक
पापों के फैले हैं समूह
या नीरसता के चिर निवास
के लिए रचा है एक व्यूह

'चन्द्रकिरण' में यह metaphysical conceit की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि वह कवि की रहस्यात्मक अनुभूति के संबंध में हमें संदेह में डाल देती है। हम वाग्छल में खो जाते हैं।

महादेवी और रामकुमार के काव्य में काव्य की मूल धारणाओं और जीवन के प्रति दृष्टिकोणों में इतना निकट का सम्बन्ध है कि दोनों की कविताओं में स्थान-स्थान पर भावसाम्य मिलता है। परन्तु जहाँ रामकुमार वर्मा ने काव्य के अनेक अंगों (कथाकाव्य, नाट्य काव्य, कथोपकथन काव्य) पर लेखनी चलाई है, वहाँ महादेवी ने केवल गीत या गेय कविता ही लिखी है। इसलिए दोनों कवियों की तुलना करते समय हमें दोनों के गीत-साहित्य की तुलना करनी होगी।

महादेवी के गेय गीतों के विषय भी वही हैं जो रामकुमार के हैं— प्रकृति, करुणा, विश्वमैत्री की भावना और उसकी सांकेतिक अभिव्यंजना, विभिन्न रूपों में रहस्यवाद की अवतारणा। पर दृष्टिकोण की अधिक भिन्नता न होने पर भी अभिव्यंजना और कला की सूक्ष्म विभिन्नता है जो दोनों की विभिन्न कला-प्रवृत्तियों और अभिरुचियों से सम्बन्ध रखती है। महादेवी की प्रतिभा चित्रप्रिय (Pictorial) है। इसी से उनके वस्तुविधान में वर्णवैचित्र्य रहता है। रामकुमार के काव्य में रङ्गों का इतना प्राधान्य या वैचित्र्य नहीं है। उन्हें हलके रंग प्रिय हैं। महादेवी ने अपनी एक पुस्तक का नाम रश्मि रखा है।

रामकुमार ने अपनी एक पुस्तक का चन्द्रकिरण। रश्मि और चन्द्र-किरण के वर्णविन्यास में जितना अंतर है, उतना ही अंतर दोनों के रंगों के प्रति दृष्टिकोण में है। रश्मि में इन्द्रधनुष के सात रंग हैं। महादेवी के चित्रों और काव्य में इन्हें उचित स्थान मिला है। चन्द्रकिरण का रंग श्वेत, रंगहीन होते हुए भी मनोमोहक होता है और वह शाश्वत सत्य का रंग भी है। करुणा अथवा दुःख का संकेत होने के कारण रामकुमार की दृष्टि अंधकार और उसके रंग-कालिमा, कुहासा अथवा श्यामलता की ओर अधिक जाती है।

गहरा अंधकार (तम) अप्रत्यक्ष सत्य की व्यंजना करता है जो अनेक वर्णच्छटा में प्रस्फुटित हुआ है। महादेवी को भी काला या हलका धुंधला रंग प्रिय है परन्तु वे उसकी अग्रभूमि में इन्द्र-धनुष की तरह चमकीले रंग रखकर उसे और भी उज्ज्वल कर देती हैं। उन्हें चटकीले रंग भी प्रिय है। रामकुमार रंगों या चित्रों को अपनी भाव-व्यंजना में सहायक बनाते हैं। वे बहुधा साधन होते हैं, साध्य या लक्ष्य नहीं—

(१) इन्द्रधनुष सा यह जीवन
दुख के काले बादल में
अंकित है इस क्षण या उस क्षण

(२) ओ पीलेपन!
आओ, मेरे यौवन के
कुसुमों का तो कर लो आलिंगन
ओ पीलेपन!

इसके विपरीत महादेवी या तो चित्रों को ही लक्ष्य बना लेती हैं या उनके द्वारा अनुभूति जगाने का प्रयत्न करती हैं। रामकुमार के काव्य में रंग कवि के हृदय की पूर्णानुभूति भावना को स्पष्ट-मात्र करने के लिए आते हैं।

महादेवी और रामकुमार की कविता को समझने के लिए हमें प्राचीन और अर्वाचीन रहस्यवाद-काव्य के अन्तर को समझना होगा। प्राचीन काव्य के मूल में धार्मिक अनुभूति और साधना थी। स्वयम् कवि के लिए उस काव्य का मूल्य इतना ही था कि वह उसके द्वारा कम-अधिक अपनी रहस्यानुभूति को प्रकाश में लाता था। उसके अपने प्रतीक थे। इनमें बहुत से किसी न किसी भाँति जन-समाज से परिचय प्राप्त थे। फलतः यह रहस्यवाद ऊँचे धरातल पर उठा हुआ होता भी साधारण पाठक के लिए अगम्य नहीं था। अर्वाचीन रहस्यवाद काव्य का आधार अधिकतः कल्पना है। उसके पीछे धार्मिक अनुभूति तो है ही नहीं, जहाँ है वहाँ अधिक गहरी नहीं है। यह साधना का न फल है, न उसका विषय ही। उसे हम काव्य-शैली मात्र भी कह सकते हैं। उसके प्रतीक भी नये हैं और भारतीय रहस्यवाद की परम्परा से मेल नहीं खाते। इसी कारण आधुनिक रहस्यवाद काव्य को पाठक नहीं मिल सके। जहाँ भाषा की अप्रौढ़ता और छंदों की नवीनता भी इसके साथ सम्मिलित हो गई, वहाँ वह कूट काव्य होकर रह गया। इस प्रकार के कूटों को 'छायावाद' का नाम दे दिया गया।

आधुनिक रहस्यवादी काव्य के साथ 'रहस्यवाद' शब्द की भाषा भी विस्तार पाती है। उसमें प्रकृति, सौन्दर्य, प्रेम (विरह और मिलन) को भी रहस्यानुभूत माना गया केवल इंद्रियानुभूत नहीं। वास्तव में धार्मिक रहस्यवाद इस धर्महीन युग की विशेषता नहीं हो सकता था। भिन्न-भिन्न रहस्यवादी कवियों की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के कारण भी रहस्यवाद काव्य में शैली के अन्तर हो गये, परन्तु ये अन्तर अधिक नहीं हैं। हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि हिन्दी रहस्यवादी काव्य किसी भी काल में बाहरी प्रभावों से अछूता रहा है। वास्तव में वह कई स्थलों पर अन्य प्रवृत्तियों से इतना मिला-जुला चलता है कि उसे उनसे अलग कर स्वतंत्र रूप देना असंभव है। भारतीय

चिंतनधाराएँ सब कुछ समेट कर चलती हैं। रहस्यवाद भी धर्म को समेट कर चला। आधुनिक रहस्यवाद भी वैष्णव भक्ति के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ है यद्यपि उस पर अंग्रेज़ी की रोमांटिक धारा का प्रभाव ही प्रधानतः लक्षित है। रोमांस काव्य की मूल विशेषता है करुणा। आधुनिक रहस्यवाद को भी करुणा से प्रेरणा मिली है। आधुनिक रहस्यवाद के विषय हैं मिलनानन्द, प्रतीक्षा, वियोग, विराट और सूक्ष्म (अनन्त और सांत) का सम्बन्ध, प्रकृति में विराट अज्ञात शक्ति की कल्पना, करुणा के प्रति मोहमय आकर्षण, वेदना की व्यापक-रहस्यमय अनुभूति। जैसा हमने देखा है आज का रहस्यवाद कल्पना-प्रधान है, अनुभूति-प्रधान नहीं। कवि ने उसे अपनी गहन सहानुभूति नहीं दी है। उसका कवि के जीवन से अन्यतम संबंध नहीं।

भारतीय रहस्यवाद ईश्वर-विषयक चिंता और तत्सम्बन्धी साधना का ही प्रमुख धारा रहा है। हमारे प्राचीनतम संस्कृत साहित्य में ईश्वर, जीव, प्रकृति एवं दृष्ट और अदृष्ट सत्ताओं के संबंध में अनेक रहस्यमूलक बातें कही हैं। ऋग्वेद के 'नासिदेयसूत्र' और 'पुरुषवलि की कथा' में आदि रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। उपनिषदों में इस प्रकार की उक्तियाँ बहुत बड़ी भाषा में पाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश अज्ञात चिद्शक्ति के रूप-गुण के संबंध में कही गई हैं जैसे —

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्य रूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥

(मुण्डकोपनिषद)

यही ईश्वर-जीव-संबंधी रहस्यवादी चिन्तन हमारे रहस्यवादी साहित्य का प्रधान अंग है। इस चिन्तन का एक स्वरूप वह है जो हमें

उपनिषदों में मिलता है, दूसरा वह जो भागवत आदि रूपक-प्रधान धर्म-ग्रंथों में। एक में ज्ञान का आश्रय लिया है, दूसरे में ज्ञान को पीछे छोड़ कर प्रेम को ग्रहण किया गया है। प्राचीन हिन्दी साहित्य में दो प्रकार के रहस्यवादी उद्गार मिलेंगे। उपनिषदों की रहस्यवादी धारा की परम्परा पहली बार सिद्ध-साहित्य में मिलती है और फिर नाथसाहित्य में होकर निर्गुण और निरंजन सम्प्रदाय में प्रवाहित होती है। इस साहित्य के सबसे महत्वपूर्ण कवि कबीर और दादू हैं। इसका बीज सिद्धांत अद्वैतवाद है। भागवत में रहस्यवाद का आधार बहुत कुछ द्वैतवाद है। असंख्य गोपियों के रूपक द्वारा व्यास ने भागवत में इसे गोपियों के रूपक द्वारा प्रकाशित किया है। सूफ़ियों का रहस्यवाद संतों के रहस्यवाद से कुछ भिन्न है। वह भागवत के प्रेम-मूलक रहस्यवाद जैसा है। उसका आरम्भ वहाँ होता है जहाँ जीव और ईश्वरविषयक गवेषणा का अंत हो जाता है। उस समय जीव ईश्वर के सम्बन्ध में एक मधुर भावना की सृष्टि होती है।

सत्रहवीं शताब्दी में रहस्यवाद की धारा क्षीण हो गई। जिस धर्म-प्राणता पर उसका आधार था वह लौकिकता की चोट से चूर-चूर हो रही थी। साहित्य की चिन्ता लोकोन्मुख हो गई। कवि नारी को केन्द्र बनाकर दीपशलभ की भाँति उसके चारों ओर घूमने लगे। अठारहवीं शताब्दी का साहित्य पूर्ण रूप से लौकिक रहा। अध्यात्म के छींटे ही शेष रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में हमारा परिचय अंग्रेजी साहित्य से हुआ परन्तु उसका प्रभाव श्रीधर पाठक के काव्य को छोड़कर और अधिक नहीं बढ़ा। बीसवीं शताब्दी के पहले दशाब्द के बाद अंग्रेजी के उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य के अनुकरण होने लगे। उस काव्य के रहस्यवाद की ओर भी कवियों का ध्यान गया। परन्तु वह उस प्रकार की कविता लिखने का प्रयास नहीं करते थे। इसी समय रवीन्द्र की 'गीतांजलि' प्रकाशित हुई (१९११)। इस पर कबीर, वैष्णव भक्ति, पश्चिमी साहित्य और उपनिषद का प्रभाव था। यह रचना

पूर्व और पश्चिम में सम्मानित हुई। हिन्दी के कवियों ने भी रवीन्द्र की शैली को पकड़ा और इस प्रकार अर्वाचीन काल में रहस्यवादी कविता का सूत्रपात हुआ। पंत, प्रसाद और निराला के काव्य पर रवीन्द्र की आध्यात्मिक रहस्यवादी चिन्ता का प्रभाव स्पष्ट है। महादेवी और रामकुमार रवीन्द्र के स्रोत की ओर मुड़े। उन्होंने प्राचीन रहस्यवादी साहित्य से अपना सम्बन्ध जोड़ा। रवीन्द्र के 'गीतांजलि' के गीतों की अपेक्षा इन कवियों की कविताएँ भारतीय रहस्यवादी चिंता के निकट अधिक हैं।

(च) अन्य कवि

छायावाद के सर्वप्रधान कवि श्री जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा हैं। इनके सम्बन्ध में हम पीछे विचार कर चुके हैं। पर अन्य कवियों ने भी इस काव्यधारा में महत्वपूर्ण योग दिया है। पहले अध्याय में हमने प्रधान कवियों और उनकी रचनाओं की सूची दे दी है। इन अन्य कवियों में सबसे महत्वपूर्ण लोचनप्रसाद शर्मा (प्रवासी, १९१४), मुकुटधर पांडेय (पूजाफूल, १९१६), मोहनलाल महतो (निर्माल्य, १९२६, एकतारा, १९२७, कल्पना १९३५), रामनाथ 'सुमन' (विपञ्ची १९२६), रामनरेश त्रिपाठी (मिलन, १९१८, पथिक १९२०, स्वप्न १९२६, मानसी १९२७), गुरुभक्तसिंह (कुसुमकुञ्ज १९२७, सरस सुमन १९२५, वनश्री १९३२, वंशीध्वनि १९३२), सियारामशरण गुप्त (आर्द्रा १९२८, विषाद १९२६, दूर्वादल, १९२६, पाथेय १९३४), मैथिलीशरण गुप्त (झंकार १९२६), हरिकृष्ण प्रेमी (अनंत के पथ पर, १९३१), भगवतीचरण वर्मा (मधुकण १९३२, प्रेमसंगीत १९३७), हरिवंशराय (तेरा हार १९३३, मधुशाला १९३५, मधुबाला १९३६, मधुकलश १९३७, निशानिमंत्रण १९३८, एकांत संगीत १९३९) रामधारीसिंह दिनकर (रेणुका १९३५, द्वन्द्वगीत १९४०, रसवन्ती

१६४०), नरेन्द्र शर्मा (शूलफूल १६३४, कर्णफूल १६३६, पलाश-वन १९४०), इलाचन्द जोशी (विजनवती १६३७), रामेश्वर शुक्ल अंचल (मधूलिका १९३८, अपराजिता १६२६, किरणवेला १६४१); आरसीप्रसाद (कलापी १६३८), उदयशंकर भट्ट (मानसी १६३६), रामरतन भटनागर (तांडव १६४०) और माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी, १६११) प्रमुख हैं। ये तो कुछ महत्वपूर्ण कवि और उसके काव्य हुए। वैसे छायावाद काव्य-साहित्य इतना प्रचुर है कि एक साथ इतने बड़े आन्दोलन का अध्ययन करना असंभव है। केवल छंद के क्षेत्र में ही हज़ारों की संख्या में नये प्रयोग हुए हैं जिनका पिंगलशास्त्र के अनुसार अध्ययन करना दो-चार वर्षों का काम है। इन सब कवियों के काव्य का अभी वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो सका है और हम यह नहीं जानते कि छायावाद को इनसे कितना योग प्राप्त हुआ है।

छायावाद-काव्य के पूर्ववर्ती उन कवियों का नाम नहीं लेने अकृतज्ञता होगी जिन्होंने द्विवेदीयुग के जड़ इतिवृत्तात्मक काव्य को रससिक्त करने की चेष्टा की। इनमें से कुछ कवि ऐसे थे जिनके लिए व्रजभाषा काव्य आदर्श काव्य था और जो व्रजभाषा की सी ललित पदावली तथा रसात्मकता और मार्मिकता खड़ी बोली में लाना चाहते थे। छायावाद काव्य के इतिहासकार के लिए वे इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। अधिक महत्वपूर्ण वे हैं जो अंग्रेज़ी की या अंग्रेज़ी के ढंग पर चली हुई बंगला की कविताओं से प्रभावित थे। वे इस कविता में लाक्षणिक वैचित्र्य, व्यंजयना, चित्रविन्यास और रुचिर अन्योक्तियाँ देखना चाहते थे। इनमें सब से प्रमुख थे पारसनाथ सिंह, जीतनसिंह और मुकुटधर पांडेय। पारसनाथ सिंह ने बंगला कविताओं के अनुवाद प्रकाशित किये और जीतनसिंह ने अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों के। ये सब अनुवाद सरस्वती में प्रकाशित हुए। वास्तव में छायावाद-काव्य के इतिहास के लिए १९१० से १६२८ तक की

सरस्वती का अध्ययन अनिवार्य है। मुकुटधर पांडेय मौलिक रचनाएँ लेकर आये। इनकी अधिकांश कविताएँ सरस्वती में ही प्रकाशित हुईं। अन्य महत्वपूर्ण प्रवर्त्तक मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट और पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी हैं। इन सब कवियों को हम छायावाद काव्य के पूर्ववर्ती कवि कह सकते हैं। मैथिलीशरण गुप्त की नक्षत्र निपात (१९१४), अनुरोध (१९१५) पुष्पांजलि (१९१७) स्वयंआगत (१९१८) और मुकुटधर पांडेय की 'आँसू' और 'उद्गार' जैसी रचनाओं ने ही नये मार्ग की ओर इंगित किया। यदि पंत, प्रसाद और निराला का काव्य हिंदी में न आया होता तो भी कालांतर में इन कवियों के प्रयास से द्विवेदी-युग का काव्य रससिक्त हो जाता।

परन्तु जैसा हमने पिछले अध्यायों में देखा है, छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय अलग-अलग प्रसाद, पंत, निराला को है। तीनों रवीन्द्रनाथ के काव्य से प्रभावित हुए परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने लिए स्वतंत्र पथ प्रशस्त कर लिए। तीनों कवियों ने नये काव्य में नये-नये वातायन खोले। व्यक्तित्व की प्रधानता तीनों में थी। तीनों कवि अभिव्यंजना की नई-नई शैलियाँ लेकर चले और तीनों ने भावभूमि के प्रसार के प्रति आग्रह दिखाया। पश्चिमी कवियों का सीधा प्रभाव पंत के काव्य पर ही अधिक पड़ा। प्रसाद और निराला प्राचीन आर्य-साहित्य की परम्परा से ही विशेष रूप से प्रभावित हुए और बंगला और अंग्रेजी काव्य में जो सुन्दर और श्रेष्ठ था, उसका सम्बन्ध उन्होंने प्राचीन आर्य-साहित्य से जोड़ा। इन कवियों की कविता पर हम अलग-अलग विचार कर चुके हैं। इन तीनों कवियों को हम छायावाद की 'बृहद्त्रयी' कह सकते हैं। १९३० तक इन तीनों कवियों का व्यापक प्रभाव नई पीढ़ी पर पड़ने लगा था। इस प्रभाव ने अनेक नए कवियों को जन्म दिया। इनमें सब से अधिक लोकप्रियता रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा और महादेवी वर्मा को मिली। इन्हें छायावाद की 'लघुत्रयी' कहा जा सकेगा। रामकुमार

वर्मा और महादेवी वर्मा की काव्य-संपत्ति पर हम पीछे विचार कर चुके हैं। इन दोनों कवियों का केवल एकमात्र विषय था—आध्यात्मिक रहस्यवाद। इन्होंने इस विषय के अनुरूप भाषा गढ़ी, नई-नई शैलियों के प्रयोग किये। विषय की एकरसता इनमें मिलेगी, परन्तु इस एक विषय में भाव और विचार के तीनों सर्जक मिल जायेंगे।

भगवतीचरण वर्मा का काव्य महादेवी और रामकुमार के काव्य से भिन्न है। वह बालकृष्ण शर्मा नवीन के काव्य की परम्परा में अधिक आता है। अध्यात्म उनका प्रिय विषय नहीं रहा। प्रेम, प्रकृति और विद्रोह यही तीन उनके प्रिय विषय थे। उनकी कविता में रोमांटिक काव्य के उस रूप में कोई दर्शन नहीं होते जो हम प्रसाद, पंत और निराला में पाते हैं। न प्रकृति के प्रति रहस्यभावना है, न अध्यात्म की उलझन। उन्हें हम आधुनिक हिन्दी कविता का बाइरन कह सकते हैं। उद्दाम-वासना, उत्कट-लालसा, अदम्य विद्रोह उनके विषय हैं। भाषा में वह ओज, वह मार्दव है जो अन्य छायावादी कवियों में नहीं है। उनकी आँखें रहस्य के अँधेरे में खो नहीं जातीं। आगे चलकर भगवती बाबू प्रगतिवादी काव्य के उन्नायक हुए। सच तो यह है कि जीवन के प्रति प्रेम, संघर्ष और उत्कट राग का भाव उनकी प्रारम्भिक कविताओं में भी है। अतः उनकी एक अलग श्रेणी माननी पड़ेगी। हाँ, व्यक्ति-निष्ठ वे अन्य कवियों से अधिक हैं। फिर भी 'प्रेमसंगीत' और 'मधुकण' की कुछ कविताओं में वे काव्य के 'नक्षत्र'-लोक से उतर कर जीवन के समतल पर आ गये हैं। भाषा भी जीवन के अधिक निकट है। नई वधू का स्वागत करता हुआ कवि कहता है—

सुन्दरता का गर्व न करना ओ स्वरूप की रानी !
समय-रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी

१६३०-३२ में जब छायावाद अपने पूर्णोत्कर्ष में था, इस कवि ने

मादक विद्रोही स्वर में, गर्वभरी नई-वाणी में अपने निजी दुख-सुख कह कर छायावाद-काव्य में एक नई लीक स्थापित कर दी। इसमें संदेह नहीं कि भगवती बाबू का काव्य छायावाद और प्रगतिवाद की संधि पर खड़ा है। उसमें हिन्दी कविता नए स्वर में बोल रही है। वह शिशु की प्यारी रहस्यमय तुतलाहट नहीं है, किशोर का साहसी कंठ है।

इन दोनों 'त्रयी' के बाद जो कवि रह जाते हैं उनमें मोहनलाल महतो, रामनाथ सुमन, हरिकृष्ण प्रेमी और सियारामशरण गुप्त अधिक प्रौढ़ हैं। काल-क्रम की दृष्टि से वे बृहद्त्रयी के साथ हैं। इनमें महतो की कविता पर रवीन्द्र की रहस्यात्मक कविताओं और गीतों का बहुत अधिक प्रभाव है। सियारामशरण ने छंदों के अनेक नये प्रयोग किये हैं और उनमें विषय-वैभिन्न्य भी अन्य कवियों से अधिक है। वे छायावाद और द्विवेदी-युग की कविता के बीच की कड़ी हैं। उनके अग्रज मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदीयुग की कविता के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। पश्चिमी और बंगला प्रभाव से अलग रह कर इस शताब्दी के पहले-दूसरे दशक की काव्य-प्रवृत्तियों का विकास कहाँ तक संभव था, यह मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं से प्रगट होता है। परन्तु कलाकार के रूप में मैथिली बाबू सदैव सतर्क रहे हैं। अपने समय की सारी प्रवृत्तियों का उन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। 'झंकार' (१६२६) में उनकी वे कविताएँ संग्रहीत हैं जो छायावाद का प्रभाव ग्रहण कर आगे बढ़ती है। वैसे साकेत का उर्मिला का विरह-वर्णन, और द्वापर काव्य छायावाद की लाक्षणिकता और गीत-शैली को आत्मसात कर लेते हैं। एक और कवि जिनका बहुत कुछ अलग अस्तित्व है, माखनलाल चतुर्वेदी हैं। उन्होंने राष्ट्रीय कविता को नया रूप दिया है। लाक्षणिकता और वाग्भंगिमा उन्हें विशेष प्रिय हैं। इस विषय में वे प्रसाद के समकक्ष आते हैं। भाषा और शैली के अटपटे कलाहीन प्रयोग के भीतर से वह अपनी बात कहने में सफल हुए हैं। 'हिमकिरीटिनी'

(१६४१) में उन्होंने अपनी बीस वर्ष की काव्य-साधना को इकट्ठा कर दिया है। रामधारीसिंह 'दिनकर', आरसीप्रसाद सिंह, उदयशंकर भट्ट और नरेन्द्र शर्मा ने अनेक प्रकार से छायावाद-काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाया है। इन सब कवियों पर पंत का प्रभाव विशेष रूप से है, परन्तु उनमें अपना भी बहुत कुछ है। दिनकर का ओज और नरेन्द्र की सुकुमारता छायावाद-काव्य का गौरव हैं।

छायावाद-काव्य की एक प्रधान प्रवृत्ति प्रेम थी। परन्तु छायावाद काव्य में प्रकृति के चित्रण अलंकृत ही अधिक हुए। १६२७ में 'कुसुमकुञ्ज', १६२५ में 'सरस सुमन', १६३२ में वनश्री और वंशीध्वनि लिखकर भक्त ने छायावादी प्रकृति-काव्य में नये प्राण डाल दिये। वर्डस्वर्थ उनके माडिल थे। छायावाद की अलंकृत, अभिजात्यात्मक (Aristocratic) भाषा के स्थान पर उन्होंने प्रतिदिन के दृश्यों को प्रतिदिन की बोली में लिखा। यह एकदम नई प्रवृत्ति थी। परन्तु विशेष कारणों से वह अधिक विकसित नहीं हो सकी। गोपालसिंह नेपाली के 'पंछी' और 'उमङ्ग' (१६३४) काव्य इसी दिशा में अधिक रसात्मक प्रयत्न थे। आधुनिक काल की नवीनतम काव्य-प्रवृत्ति (प्रगतिवाद) में भाषा और प्रकृति-चित्रण के संबन्ध में वही दृष्टिकोण है जो भक्त और नेपाली का था। परन्तु अब प्रकृति के अच्छे-बुरे सभी चित्र काव्य का विषय बन गये हैं और इन प्रकृति-चित्रों की भाषा लगभग गद्य ही है।

'बच्चन' (हरिवंशराय) की कविताएँ मूलतः स्वच्छंदवाद के अन्तर्गत आती हैं परन्तु उनमें क्षणिक आनन्दवाद की एक नई धारा बह रही है। 'उमरखैयाम' की रुबाइयों (खैयाम की मधुशाला, १६३५) के साथ बच्चन ने हिन्दी कविता में प्रवेश किया। 'क्षणिकवाद', 'आनन्दवाद', 'हालावाद' कहकर उनकी कविताओं की खिल्ली उड़ाई गई। उनके गीतों पर यह लांछा लगाई गई कि उनमें 'वासना' भरी पड़ी है। 'कवि की वासना' शीर्षक कविता लिखकर

कवि को अपने विरोधियों का मुँह बन्द करना पड़ा। धीरे-धीरे उनकी कविता से आनन्द और मादकता के स्वर म्लान होते गये और मधुकलश (१९३७) के बाद वे घोर निराशावादी के रूप में उपस्थित हुए। 'निशानिमंत्रण' (१९३८) और एकांत संगीत (१९३९) में दुःख, करुणा, निराशा और सूनेपन के स्वर इतने ऊँचे हो उठे हैं कि एक प्रकार से कवि का साहित्य आत्मघाती बन जाता है। 'आओ, सो जायें, मर जायें' कहकर कवि जीवन के द्वन्द्वों की समस्या हल कर डालता है। परन्तु यह नहीं कि बचन की कविता के उज्ज्वल पक्ष हैं ही नहीं। भाषा की नई पकड़, भावों की नई सूझ, नई मूर्त्तिमत्ता, गीतिकला (Lyrical Art)—अनेक दृष्टियों से बचन का काव्य उत्कृष्ट है। उसमें वेदना, पलायन और आत्मघाती आनन्दवाद के जो स्वर हैं वे परिस्थितिजन्य हैं। कवि का जीवन जिन संघर्षों में से होकर गुजरा है। उन्होंने जो गीत उठाये, वे ही कवि ने शब्दों में बाँध दिये। परन्तु इन गीतों में बहुत कुछ है जो इस पृथ्वी का है, जो छायावाद को प्रगतिवाद की ओर बढ़ाता है।

छायावाद के सभी प्रधान कवियों में व्यक्तित्व की भावना बहुत गहरी है। सभी व्यक्तिनिष्ठ हैं। परन्तु प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार अपनी बात नहीं कहते। उनके काव्य में निर्वैयक्तिकता (Objectiveness) का ही विशेष विकास हुआ। कवि अपनी बात न कह कर सब की प्राणों की ध्वनि मुखरित करता है। इसी से 'प्रसाद' का 'आँसू' अस्पष्ट रह गया है। इसी से इन कवियों के अध्यात्म प्रेम और लौकिक प्रेम के गीत प्राणों को नहीं छूते। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण रहस्यभाव से प्रभावित है। भगवती बाबू में पहली बार हम व्यक्ति का कंठ फूटता पाते हैं। फिर तो वैयक्तिकता का तूफ़ान आ गया। सभी कवियों ने 'मैं' शैली अपनाई। सब ज़ोर-ज़ोर से अपनी बात कहने लगे। महादेवी, बच्चन, भगवती बाबू और अंचल की कविताओं में इस वैयक्तिकता की मात्रा सबसे अधिक

है। इन कवियों में प्रेम आकाशचारी नहीं रह पाया। वह इस जगत की स्थूल वस्तु हो गया। बच्चन की 'मिलनयामिनी' (१९४७), भगवती बाबू का 'प्रेमसंगीत' (१९३७) और अंचल की कविताएँ (१९३८-१९४१) इसका प्रमाण है। 'स्वर्ग की तन्वि' हाड़-मांस की नारी बन गई है।

परन्तु अन्य काव्य-धाराओं की भाँति छायावाद जड़ नहीं बन सका। वह गतिशील रहा है। नई-नई वृत्तियों ने उसमें योग दिया। जिन अंग्रेज़ी स्वच्छंद कवियों (Romanticists) को उसने अपना गुरु माना है, उन्हीं में परिवर्तन के बीज भी विद्यमान थे। आधुनिक अंग्रेज़ी कविता में जो क्रांति हुई है, वह सौ वर्ष पहले के वर्डस्वर्थ के काव्य से प्रभावित होकर ही हुई है। छायावादी कवियों ने विशेषतः शेली, कीट्स और टेनीसन से प्रेरणा ली थी। जब 'सरस सुमन' (१९३२) में गुरुभक्तसिंह भक्त वर्डस्वर्थ की ओर मुड़े, तब प्रगतिवाद के जन्म के लिए वातावरण तैयार होने लगा। काव्य जीवन के निकट आने लगा। भाषा और भाव दोनों में। छायावाद की विचित्रता, चंचलता, विद्रोहात्मता का अंत हुआ। वाणी में स्थायित्व आया। गंभीरता आई। नेपाली (१९३४—) और बच्चन (१९३५—) के काव्य ने भाषा-विषयक परिवर्तन को और आगे बढ़ाया। 'बच्चन' को हम जीवन, प्रेम और व्यक्ति को नई आँखों से देखता पाते हैं। रोमांस के धूप के चश्मे जैसे उतर गये हों। 'अंचल' की रचनाओं में आत्मा के विरोध में देह की पुकार ही ऊँची उठती है। भाषा, विषय, छंद और टेक्नीक (अभिव्यंजना) के नये प्रयोग होने लगे हैं। अनेक रचनाएँ छायावाद और प्रगतिवाद की संधि पर खड़ी दिखलाई पड़ती है। 'तांडव' (१९४०) में ये दोनों काव्यधाराएँ स्पष्ट रूप से अलग-अलग होती जान पड़ती हैं।

१९२७ के लगभग ही छायावाद में अनुकरण की इतनी प्रधानता हो गई थी कि समीक्षकों के लिए एक समस्या खड़ी हो गई थी। इसी

वर्ष ('सरस्वती') के सम्पादक को ऐसी निरर्थक रचनाओं से ऊब कर तीव्र आलोचना करनी पड़ी। रहस्यवादी ऊहात्मक कविताओं की इस बाढ़ ने छायावाद को साधारण जनता के निकट लांछित कर दिया। १६२६ तक छायावाद की कविता का विद्रोह मुखर हो चला था। 'सरस्वती' खंड ३७, संख्या ३, १६३६ की एक कविता ('रहस्यवाद का निर्वासन') इसका प्रमाण है। इसी वर्ष की पहली संख्या में 'रूखा रोटी या रहस गान' गीत में कविता में पलायनवाद पर चोट की गई। १६३७ से हम स्पष्ट रूप से नई प्रगतिवादी धारा का प्रवर्तन पाते हैं, रूपाभ (१६३६) और हंस (१६३०) ने इस नवीनतम काव्य-धारा के निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लिया। इस प्रगतिवादी कविता की कई विशेषताएँ हैं :

१—भाषा में गद्यात्मकता

२—नये छंदों की ओर विशेष आग्रह नहीं। परन्तु भाव-वाहक छंदों के निर्माण की ओर प्रवृत्ति।

३—निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण। वाह्य जगत् को तद्गत और अनासक्त भाव से देखने का प्रयत्न।

४—समाजवादी सिद्धांतों का बहुल प्रचार

५—किसानों और मज़दूरों का स्तव-गान

६—यौन के प्रति तीव्र आकर्षण। फ्राइड का प्रभाव।

७—शोषितों और पीड़ितों के प्रति गहरी सहानुभूति।

८—बुद्धितत्त्व की प्रधानता

६—मानवतावाद (Humanism) और अतंर्राष्ट्रीयता (Internationalism)

१०—प्रभाववाद (Impressionism)

११—व्यंगात्मक लाक्षणिक शैली का प्रयोग। डी० एच० लारेन्स और टी० एस० इलियट की रचनाओं का प्रभाव। इससे कविता में ध्वनि-प्राणता की मात्रा बढ़ गई है।

यह स्पष्ट है कि नये काव्य (प्रगतिवाद) में छायावाद के विरुद्ध एक नये रास्ते के निर्माण का प्रयत्न किया गया है। छायावाद की अलंकृत भाषा के विरोध में गद्यात्मक भाषा और व्यंगात्मक लाक्षणिक शैली का प्रयोग बाह्य परिवर्तन है। परन्तु विशेष परिवर्तन इस बार फिर कविता की स्पिरिट का है। व्यक्तिवाद से हटकर कवि निर्वैयक्तिक (Impersonal) हो गया है। उसमें सामाजिकता ही प्रधान हो उठी है। किसानों, मज़दूरों, शोषितों, पीड़ितों का काव्य में प्रवेश इसी का फल है। बुद्धितत्त्व की प्रधानता (Rationalism) के कारण समाजवाद, मार्क्स और फ्रायड काव्य में प्रवेश पा गये हैं। इस नई कविता की सबसे आशाप्रद प्रवृत्तियाँ मानवतावाद और अंतर्राष्ट्रीयता हैं। छायावाद अधिकतः आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों को लेकर चला। चारों ओर के जीवन को उसने आँख की ओट कर लिया। अब यही बहिस्कृत जीवन सहस्रों द्वारों से काव्य के नक्षत्रग्रह में प्रवेश कर गया है। मनुष्य की दैहिक भूखें उसका विषय बन गई हैं। अन्न, काम, सामाजिक सभ्यता, आर्थिक मुक्ति हिन्दी कविता के नये विषय हैं। परन्तु अतिवाद यहाँ भी घुस गया है। मनुष्य का बाहर का जीवन ही सब कुछ हो गया है, भीतर का जीवन (कला, सौन्दर्य, अध्यात्म, नैतिकता) कुछ भी नहीं रह गया है।

५

छायावाद-काव्य का मूल्यांकन

पिछले अध्यायों में हमने छायावाद के इतिहास, उसकी मूल प्रवृत्तियों और उसके सर्वश्रेष्ठ कवियों के काव्य पर विचार किया है। यहाँ हमें छायावाद की कविता (१९०९—३६) को सामूहिक रूप से लेना है। हमें यह देखना है हिन्दी काव्य की परम्परा में इस नये काव्य ने हमें क्या दिया और जो दिया उसमें कितना स्थायी है। इस विवेचन के लिए हमें पहले अपनी प्राचीन काव्य-सम्पत्ति पर विचार करना होगा।

हमारी प्राचीन काव्य-सम्पत्ति का आरम्भ सरहपा (७५० ई०) से होता है। सरहपा सिद्ध कवि थे। सरहपा (७५० ई०) से लेकर विद्यापति (१३७५—१४४८) तक हम केवल संतकाव्य (सिद्ध, नाथ, निरंजन और संत) की परम्परा पाते हैं। कदाचित् कबीर (१३९९—१५१८) विद्यापति के समसामयिक थे। परन्तु विद्यापति के बाद हिन्दी-काव्य में लौकिक और साहित्यिक भावना की परम्परा लगभग १५० वर्षों के लिए लोप हो गई। १६०० ई० में केशवदास की रचनाओं के साथ इस परम्परा का नया जन्म हुआ और ढाई सौ वर्ष (१८५० ई०) तक रीतिकाव्य के रूप में यह परम्परा चलती रही। भक्तकाव्य की परम्परा का जन्म १५०० ई० के पास हुआ और डेढ़ सौ वर्ष तक इस काव्य की धारा अत्यन्त शक्तिशाली बनी रही। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काव्य में तीन प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं

१—विरागात्मक, रहस्यवादी, नैतिकताप्रधान : संत-काव्य (सूफ़ी काव्य में राग ने विराग की जगह ले ली है, परन्तु वह इसी श्रेणी में आता है)

२—सगुण भक्तिकाव्य। इसमें साहित्य की सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं को स्थान मिला है। वास्तव में विद्यापति के काव्य की परम्परा इसके माध्यम से प्रच्छन्न रूप में चलती रहती है।

३—लौकिकता-प्रधान साहित्य-परिपाटी प्रभावित काव्य (रीति-काव्य)। आधुनिक युग के आरम्भ तक हिन्दी कविता एक हज़ार वर्ष तक जी चुकी थी।

इस एक हज़ार वर्ष के हिन्दी काव्य में बहुत कुछ ऐसा है जो कदाचित् संसार के किसी भी काव्य-साहित्य में एक जगह इकट्ठा नहीं मिलेगा। हिन्दी का चारण-काव्य हिन्दी की अपनी चीज़ है। मुसलमानी विदेशी सत्ता से मोर्चा हिन्दी प्रदेश ने ही लिया। अन्य प्रान्तों के काव्य में इस तरह की कोई चीज़ नहीं। जब राजपूतों ने हथियार डाल दिये तो सांस्कृतिक नेताओं के रूप में सन्त, भक्त और निरंजनी उठ खड़े हुए। उन्होंने दो मार्ग ग्रहण किये। भक्त अपनी प्राचीन आध्यात्मिक और सांस्कृतिक निधि की रक्षा करना चाहते थे। उन्होंने प्राचीन भक्ति-मार्ग को सचेष्ट और आकर्षक बनाकर लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया। संतों और निरंजनियों ने संघर्ष का मार्ग नहीं पकड़ा। उनका पथ समन्वय का पथ था, मेल-जोल का पथ था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस सारे काव्य की साधना आध्यात्मिक थी। इसके विपरीत रीतिकाव्य की साधना मुख्यतः साहित्यिक थी। उसमें कवि का लक्ष्य रस और चमत्कार होता था, भक्ति या विराग नहीं। आधुनिक हिन्दी के कवि के पास यही काव्य बपौती के रूप में था। उसने इसे केवल अंशतः स्वीकार किया। कविता के नये मार्ग उसने निकाले। उन्नीसवीं शताब्दी में सामयिक विषयों को लेकर कविताएँ लिखी गईं। भारतेन्दु (१८५०—१८८५) प्राचीन और नवीन काव्यधारा के संधिस्थल पर खड़े हैं। जहाँ उनके काव्य में भक्त, संत और रीतिकाव्यों की बहुत कुछ सामग्री आ गई है, वहाँ उन्होंने सामयिक विषयों (मँहगी, अकाल, अनावृष्टि, टैक्स)

पर लिखकर नए पथ का प्रवर्तन किया। उनके बाद काव्य का नेतृत्व पं० श्रीधर पाठक के हाथ में चला गया। वह सरकारी नौकर थे। सामयिक विषयों से उन्हें इतना प्रेम नहीं हो सकता था। शिमला और मसूरी में रहकर वह विद्रोह और असन्तोष की कविता नहीं लिख सकते थे। उन्होंने अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेज़ी कवियों (कूपर, पोप, ड्राइडन) को अपना गुरु बनाया और क्लासिकल (संयमित शैली की विवेचना और वर्णन-प्रधान) कविताओं की नींव डाली। उनके बाद इस क्षेत्र में महावीरप्रसाद द्विवेदी आये। संस्कृत और मराठी का काव्य उनका मॉडिल बना। पद्य गद्य बन गया। वह जीवन के निकट तो आ गया, परन्तु जीवन के रस से वह सिक्त नहीं हो पाया। नए विषय आये। नए भाव आए। देश के पशु-पक्षी, नदी-नाले, विधवाओं के दुःख और अनाथ बालकों के गद्यात्मक क्रन्दन से सारा काव्य भर गया। द्विवेदीयुग (१९००-१९२१) का काव्य यही कहा गया है।

परन्तु इस द्विवेदीयुग के बीच में कुछ ऐसे कवि उठ खड़े हुए जिन्होंने इस गद्य के युग में पद्य की बात चलाई। 'इन्दु' (१६०६—१६) और सरस्वती (१६१६—२५) के द्वारा उन्होंने काव्यजगत में रस, अनुभूति और जिज्ञासा-प्रधान कविताओं को हिन्दी काव्य-साहित्य का महत्वपूर्ण अंग बना दिया। उन्होंने जहाँ एक ओर रीतिकाव्य के छंदों (कवित्तों-सवैयों) के विरुद्ध आवाज़ उठाई, रीतिकाव्य को 'वासना का काव्य' बताकर उससे अपनी घृणा प्रदर्शित की, वहाँ दूसरी ओर सामयिक और गद्यात्मक वर्णनात्मक 'द्विवेदीयुग के काव्य' से भी उनकी रुचि नहीं मिली। उन्होंने रवीन्द्रनाथ टाकुर, विवेकानन्द, वाल्ट व्हाइटमैन, शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ और कविकुलगुरु कालिदास को अपना आदर्श माना। भाषा और भाव में जो नवीनता वे लाये, उसके लिए उन्हें इन महाकवियों के पन्ने उलटने पड़े। जहाँ कल्पना-वैभव और भाषा के लिए वे रवीन्द्रनाथ की ओर मुड़े, वहाँ

नए भाव, नए चिंतन, नए विषयों के लिए वे अंग्रेज़ी के उन्नीसवीं शताब्दी के काव्य की ओर उन्मुख हुए। द्विवेदीयुग की गद्यात्मक (अभिधा-प्रधान) कविताओं के समकक्ष उन्होंने नई अनुभूति और नई शैली रखी। एक तरह से वे सारी प्राचीन काव्य-सम्पत्ति को अस्वीकार करके आगे बढ़े। भाव, भाषा, छंद—सभी विषयों में नवीनता विद्रोह मानी गई।' पुरानी परम्परा में पलने वाला पाठक इस नये काव्य को समझ भी नहीं सका। यही नहीं, आलोचकों ने भी इसका तीव्र विरोध किया। पं० रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान आलोचक भी इस नये काव्य को पूरी तरह समझ नहीं सके। उन्होंने लगभग प्रत्येक नए अंग की कड़ी आलोचना की—

१ भाषा—"कुछ ऐसे लोगों को, जिन्होंने अध्ययन या शिष्ट-समागम द्वारा भाषा पर पूरा अधिकार नहीं प्राप्त किया है, संस्कृत की विकीर्ण पदावली के भरोसे पर या अगरेज़ी पद्यों के वाक्यखंड के शब्दानुवाद जोड़-जाड़ कर, हिन्दी कविता के नए मैदान में उतरते देख आशंका भी होती है।"

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७७२-३)

२ छंद—('मुक्तछंद') "अमेरिका के एक कवि वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman) की नक़ल है।" (वही, पृ० ७७३) "पद्य-व्यवस्था से मुक्त काव्यरचना वास्तव में गीत-काव्यों के अनुकरण का परिणाम है।" (वही, पृ० ७७४) "उस ढंग का अनुकरण पहले बंगाल में हुआ। वहाँ की देखा-देखी हिन्दी में भी चलाया गया। निरालाजी का तो इसकी ओर प्रधान लक्ष्य रहा। हमारा इस सम्बन्ध में यही कहना है कि काव्य का प्रभाव केवल नाद पर अवलंबित नहीं।"

(वही, पृ० ७७४)

३ वस्तुविधान और अभिव्यंजना शैली—छंदों के अतिरिक्त वस्तु-विधान और अभिव्यंजना-शैली में भी कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रकट हुईं जिनसे अनेकरूपता की ओर हमारा काव्य बढ़ता दिखलाई देता है। किसी

वस्तु में अनेकरूपता का आना विकास का लक्षण है, यदि अनेकता के भीतर एकता का कोई सूत्र बना रहे। इस समन्वय से रहित जो अनेकरूपता होगी वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं की होगी, एक वस्तु की नहीं।" (वही, पृष्ठ ७७४) यह स्पष्ट है कि नये वस्तुविधान और नई अभिव्यंजना-शैलियों को आचार्य शुक्ल संदेह की दृष्टि से देखते हैं, यद्यपि थोड़ा-बहुत श्रेय वे उसे देते ही हैं—"छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्यशैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध-चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। भाषा के परिमार्जन-काल में किस प्रकार खड़ी बोली की कविता के रूखे-सूखे रूप से ऊब कर कुछ कवि उसमें सरसता लाने के चिन्ह दिखा रहे थे, यह कहा जा चुका है। अतः आध्यात्मिक रहस्यवाद का नूतन रूप हिन्दी में न आता तो भी शैली और अभिव्यंजना-पद्धति की उक्त विशेषताएँ क्रमशः स्फुटित होतीं और उसका स्वतंत्र विकास होता। हमारी काव्य-भाषा में लाक्षणिकता का कैसा अनूठा विकास घनानन्द की रचनाओं में मिलता है, यह हम दिख चुके हैं।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वस्तुविधान और शैली के नवीन प्रयोगों का स्वागत करते हुए भी आचार्य सतर्क हैं।

४—काव्य की भूमि के संबंध में भी आचार्य को बहुत कुछ कहना है :

(क) छायावाद का 'प्रधान लक्ष्य काव्य-शैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।' (वही, पृष्ठ ७८०)

(ख) 'छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था। (वही, पृष्ठ ७८४)

(ग) '(इसी समय) श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थीं। पुराने ईसाई संतों के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बङ्गाल में ऐसी कविताएँ (छायावाद) कही जाने लगीं। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाये रास्ते का दरवाज़ा-सा खुल पड़ा और हिन्दी में कुछ नये कवि उधर एकबारगी झुक पड़े।' (वही, पृष्ठ ७८५) "छायावाद नाम चल पड़ने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विशृङ्खलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले। शैली की इन विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना में ही लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही। विभाव पक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया। इस प्रकार प्रसरणोन्मुख काव्य-क्षेत्र बहुत कुछ संकुचित हो गया। असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति अत्यंत चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारों तक ही काव्य की गति-विधि प्रायः बँध गई। हृत्तंत्री की झंकार, नीरव संदेश, अभिसार, अनंत प्रतीक्षा, प्रियतम का दबे पाँव आना, आँखमिचौनी, मद में झूमना, विभोर होना इत्यादि के साथ-साथ शराब, प्याला, साक़ी आदि सूफ़ी कवियों के पुराने सामान भी इकट्ठे किये गये। कुछ हेर-फेर के साथ वही बँधी पदावली, वही वेदना का प्रकांड प्रदर्शन, कुछ विशृंखलता के साथ प्रायः सब कविताओं में मिलने लगा।" (वही, ७८५)

"छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओं की बहुत कुछ गति-विधि अँग्रेज़ी वाक्यखंडों से अनुवाद-द्वारा संगठित देख अंग्रेज़ी काव्यों से परिचित हिन्दी कवि सीधे

अंग्रेज़ी से ही तरह-तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद अपनी रचनाओं में जोड़ने लगे।" (वही, पृष्ठ ७८८) "कलावाद और अभिव्यंजनवाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी अप्रस्तुत योजना के काम लाये गये।" (वही, पृ० ७८८)

(घ) "नाना अर्थ-भूमियों पर काव्य का प्रसार रुक सा गया। प्रेमक्षेत्र (कहीं आध्यात्मिक, कहीं लौकिक) के भीतर ही कल्पना की चित्रविधायिनी क्रीड़ा के साथ प्रकांड वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा व्रीड़ा से दौड़ी हुई प्रिय के कपोलों पर की ललाई, हाव-भाव, मधु-स्राव तथा अश्रुप्रवाह इत्यादि के रँगीले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्णवृत्त दिखाई देते हैं। जगत और जीवन के नाना मार्मिक पक्षों की ओर उनकी दृष्टि नहीं है।" (वही, पृष्ठ ७८६)

ऊपर जो उद्धरण लिये गये उनसे हमें अपने युग के एक प्रधान आलोचक के छायावाद-विषयक उद्गार एक स्थान पर मिल जाते हैं। आचार्य शुक्ल छंद और भाषा-विषयक छायावादियों की स्वतंत्रता पसंद नहीं करते। छायावाद काव्य में 'नाद' पर अधिक बल दिया गया और अधिकांश काव्य गीतात्मक है। आचार्य का कहना है कि इस गीतात्मकता ने काव्यभूमि के प्रसार में बाधा डाली है। छायावादियों के दो ही विषय रह गये हैं: १—आध्यात्मिक प्रेम, २—लौकिक-प्रेम। वे प्रकृति के सारे वैभव का उपयोग इन्हीं प्रिय विषयों को सजाने के लिए करते हैं। वस्तुविधान शैली में इस नये काव्य ने जो नए मार्ग ग्रहण किये, वे कुछ हद तक आचार्य को मान्य हैं, यद्यपि वे इन्हें

बँगला और अंग्रेज़ी के काव्य से बुरी तरह प्रभावित मानते हैं। फिर भी उनके विचार से यह श्रेय की बात है। उनका कहना है कि द्विवेदी-युग के कुछ कवि स्वतंत्र रूप से नए वस्तु-विधान और नई अभिव्यंजना शैली के निर्माण के लिए अग्रसर हो रहे थे। द्विवेदीयुग की कविता जहाँ 'अनेक विषयस्पर्शी' थी, वहाँ उसका स्वरूप 'गद्यवत् रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर वाह्यार्थ निरूपक' था। न उसमें कल्पना का रंग था, न हृदय का वेग। पदलालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृत्ति, शब्द-प्रयोग की विचित्रता, छायावाद की देन ही समझी जानी चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यह देन बहुत बड़ी है और केवल दो दशक में इसने हिन्दी काव्य को संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य-साहित्य के समकक्ष रख दिया है।

परन्तु इतना श्रेय होते भी छायावाद का भविष्य उज्ज्वल नहीं रहा। इसका कारण यह था कि भावभूमि बहुत सङ्कुचित रही। लौकिक और आध्यात्मिक प्रेम, प्रकृति, मानव-जीवन की अनश्वरता-असारता यही मात्र उसके विषय रहे। अर्थभूमि का यह सङ्कोच इस काव्य को लोकप्रिय नहीं बना सका। एक तरह से अपने सारे युग से यह तटस्थ रहा। १९२१ के सत्याग्रह से लेकर १९३६ तक की राजनैतिक प्रवृत्तियों, महान आंदोलनों और महान समस्याओं की थोड़ी भी झलक इसमें नहीं है। व्यक्ति का दुख-सुख, प्रेमविलास, थोथा अध्यात्म—इतने छोटे से संपुट में क्या समा सकता? अतः इस काव्य का महत्व मुख्यतः साहित्यिक रहा। कुछ सीमा तक यह लांछना ठीक भी है। छायावादी कवि ने जीवन के प्रति आँख मूँद ली और वह अपने कल्पना के रंगमहल में बैठा अपने काल्पनिक विरह-मिलन के गीत गाता रहा। उसने विशेष कुछ कहा नहीं, कहने के नये-नये ढंगों में ही वह उलझा रहा। चित्रमयी, कोमल, व्यंजक भाषा में सङ्गीत की लहरें उठाना ही मानों उसका लक्ष्य हो।

'छायावाद' की इन्हीं प्रवृत्तियों को ध्यान में रख कर आचार्य

अंग्रेज़ी से ही तरह-तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद अपनी रचनाओं में जोड़ने लगे।" (वही, पृष्ठ ७८८) "कलावाद और अभिव्यंजनवाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी अप्रस्तुत योजना के काम लाये गये।" (वही, पृ० ७८८)

(घ) "नाना अर्थ-भूमियों पर काव्य का प्रसार रुक सा गया। प्रेमतत्व (कहीं आध्यात्मिक, कहीं लौकिक) के भीतर ही कल्पना की चित्रविधायिनी क्रीड़ा के साथ प्रकांड वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा व्रीड़ा से दौड़ी हुई प्रिय के कपोलों पर की ललाई, हाव-भाव, मधु-स्राव तथा अश्रुप्रवाह इत्यादि के रँगीले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्णतृप्त दिखाई देते हैं। जगत और जीवन के नाना मार्मिक पक्षों की ओर उनकी दृष्टि नहीं है।" (वही, पृष्ठ ७८६)

ऊपर जो उद्धरण लिये गये उनसे हमें अपने युग के एक प्रधान आलोचक के छायावाद-विषयक उद्गार एक स्थान पर मिल जाते हैं। आचार्य शुक्ल छंद और भाषा-विषयक छायावादियों की स्वतंत्रता पसंद नहीं करते। छायावाद काव्य में 'नाद' पर अधिक बल दिया गया और अधिकांश काव्य गीतात्मक है। आचार्य का कहना है कि इस गीतात्मकता ने काव्यभूमि के प्रसार में बाधा डाली है। छायावादियों के दो ही विषय रह गये हैं: १—आध्यात्मिक प्रेम, २—लौकिक-प्रेम। वे प्रकृति के सारे वैभव का उपयोग इन्हीं प्रिय विषयों को सजाने के लिए करते हैं। वस्तुविधान शैली में इस नये काव्य ने जो नए मार्ग ग्रहण किये, वे कुछ हद तक आचार्य को मान्य हैं, यद्यपि वे इन्हें

बँगला और अंग्रेज़ी के काव्य से बुरी तरह प्रभावित मानते हैं। फिर भी उनके विचार से यह श्रेय की बात है। उनका कहना है कि द्विवेदी-युग के कुछ कवि स्वतंत्र रूप से नए वस्तु-विधान और नई अभिव्यंजना शैली के निर्माण के लिए अग्रसर हो रहे थे। द्विवेदीयुग की कविता जहाँ 'अनेक विषयस्पर्शी' थी, वहाँ उसका स्वरूप 'गद्यवत् रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर वाह्यार्थ निरूपक' था। न उसमें कल्पना का रंग था, न हृदय का वेग। पदलालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृत्ति, शब्द-प्रयोग की विचित्रता, छायावाद की देन ही समझी जानी चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यह देन वहुत बड़ी है और केवल दो दशक में इसने हिन्दी काव्य को संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य-साहित्य के समकक्ष रख दिया है।

परन्तु इतना श्रेय होते भी छायावाद का भविष्य उज्ज्वल नहीं रहा। इसका कारण यह था कि भावभूमि बहुत सङ्कुचित रही। लौकिक और आध्यात्मिक प्रेम, प्रकृति, मानव-जीवन की अनश्वरता-असारता यही मात्र उसके विषय रहे। अर्थभूमि का यह सङ्कोच इस काव्य को लोकप्रिय नहीं बना सका। एक तरह से अपने सारे युग से यह तटस्थ रहा। १९२१ के सत्याग्रह से लेकर १९३६ तक की राजनैतिक प्रवृत्तियों, महान आंदोलनों और महान समस्याओं की थोड़ी भी झलक इसमें नहीं है। व्यक्ति का दुख-सुख, प्रेमविलास, थोथा अध्यात्म—इतने छोटे से संपुट में क्या समा सकता! अतः इस काव्य का महत्व मुख्यतः साहित्यिक रहा। कुछ सीमा तक यह लांछना ठीक भी है। छायावादी कवि ने जीवन के प्रति आँख मूँद ली और वह अपने कल्पना के रंगमहल में बैठा अपने काल्पनिक विरह-मिलन के गीत गाता रहा। उसने विशेष कुछ कहा नहीं, कहने के नये-नये ढंगों में ही वह उलझा रहा। चित्रमयी, कोमल, व्यंजक भाषा में सङ्गीत की लहरें उठाना ही मानों उसका लक्ष्य हो।

'छायावाद' की इन्हीं प्रवृत्तियों को ध्यान में रख कर आचार्य

शुक्ल ने उसकी सर्वग्राही व्याख्या करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार-छायावाद के कई पक्ष हैं :

क—रहस्यवाद (Mysticism)

ख—प्रतीकवाद (Symbolism)

ग—कलावाद (Art for Art's sake, aestheticism)

घ—वेदनावाद या प्रभाववाद (Impressionism)

ङ—अभिव्यंजनावाद (Expressionism)

इसमें रहस्यवाद का संबन्ध विषय से है, शेष का शैली से। इस प्रकार छायावाद में शैलीतत्त्व की ही प्रधानता मान ली गई। इन सब के विषय में उन्होंने बहुत कुछ कहा है।

छायावादी कवियों के जीवनवृत्त और उनकी रचनाओं के अध्ययन से ऊपर की बहुत-सी मान्यताओं की पुष्टि होती है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी—यही इस नये काव्य के नेता हैं। इन सभी कवियों को छोटी अवस्था में मातृवियोग (कहीं-कहीं पितृवियोग भी) सहना पड़ा। संसार का पहला परिचय ही इन्हें दुःख के माध्यम से हुआ। निराला को विशेष रूप से जीवन भर परिस्थितियों से लड़ना पड़ा। ऐसी दशा में इन कवियों के काव्य में वेदना और करुणा के जो सुर बोल रहे हैं, उनके पीछे क्या पीड़ा है, यह समझा जा सकता है। प्रारंभ से ही असहाय होने के कारण इन कवियों ने प्रकृति, सौन्दर्य, प्रेम या दर्शन का आश्रय ग्रहण किया परन्तु सौन्दर्य और प्रेम की बात इस युग में मुक्तकंठ से नहीं कही जा सकती थी। वह अतिनैकिता का युग था। इस शताब्दी का दूसरा दशक किन्हीं नई व्याख्याओं, नई स्वतंत्रताओं के लिए उत्सुक तो था नहीं। इसी से रहस्यवाद और प्रकृति इसकी प्रेम-प्रवृत्ति के प्रकाशन के दो माध्यम बन गये। रहस्यवाद की प्रेरणा उन्हें 'गीतांजलि' (बंगला) या उसके अंग्रेजी अनुवाद से अवश्य मिली। 'निराला', 'पंत' और 'प्रसाद' की प्रारंभिक कविताएँ स्पष्ट रूप से 'गीतांजलि' से प्रभावित

है। परन्तु महादेवी ने अपने लिए आध्यात्मिक रहस्यवाद की परंपरा स्वतंत्र रूप से स्थापित की। उनके काव्य में 'गीतांजलि' का प्रभाव ढूँढ़ना हास्यास्पद होगा। हो सकता है, बौद्धसाहित्य, कबीर, मीरा और ईसाई मर्मी कवियों ने उन्हें प्रेरणा दी हो, परन्तु उनका काव्य स्वयं उनकी अनुभूति से महान है। कदाचित् लौकिक प्रेम-भावना के निरोध ने यह आध्यात्मिक रूप ग्रहण किया हो। वास्तव में, छायावादी कवि रीति-काव्य के वासनात्मक शृंगार का विरोध लेकर चले। उन्होंने या तो 'प्रेम' को काव्य का विषय ही नहीं बनाया—हमारा तात्पर्य लौकिक प्रेम से है—या उसे स्वस्थ भावनात्मक सम्बन्ध (Platonic love) के रूप में प्रकाशित किया। परन्तु इन सभी प्रसिद्ध छायावादी कवियों को प्रेम में असफलता मिली। 'ग्रंथि', 'आँसू', 'उच्छ्वास' पंत की प्रेम-संबंधी निराशा ही प्रगट करते हैं। प्रसाद का 'आँसू' तो निराश प्रेमी की चीत्कार ही है। निराला बहुत शीघ्र ही विधुर हो गये। पंत जीवन भर अविवाहित रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपरोक्ष में जो नारी के प्रति आकर्षण, प्रेम और विलास की धारा इन कवियों में चल रही है, वह परिस्थितियों की प्रतिक्रिया-मात्र है। जहाँ कवि प्रकृति को देखना चाहता है, वहाँ वह प्रेयसी को देखता है। 'जुही की कली' और 'शेफालिका' के साथ पवन और शिशिरबिंदु की क्रीड़ा—वह भी नग्न क्रीड़ा—उसे आह्लाद प्रदान करती है। दुःखवादी होने के कारण इन कवियों की दृष्टि दार्शनिक होना आवश्यक थी। इसीलिए दार्शनिक जिज्ञासा के रूप में बहुत कुछ इस काव्य में मिल जाता है। प्रसाद निराला और महादेवी का दर्शन का अध्ययन काफ़ी गंभीर रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद की कविता उसके उन्नायकों के व्यक्तिगत जीवन और उनकी अभिरुचि से ही अधिक प्रभावित है। साधारण लोक-रुचि का वह प्रतिनिधित्व नहीं करती। यही कारण है कि वर्षों तक जनता इन कवियों की कविता को समझ नहीं सकी।

द्विवेदी काव्य का श्रेष्ठतम विकास मैथिलीशरण गुप्त की कविता में हुआ था। इससे आगे जनता की पहुँच नहीं थी।

परन्तु व्यक्तिगत अभिरुचि और कवियों का व्यक्तित्व ही छायावाद की सब कुछ व्याख्या नहीं है। रवीन्द्रनाथ और अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों का प्रभाव, रीतिकाव्य और द्विवेदीकाव्य के प्रति विद्रोह, भाषा शैली और छंदों की नवीनता का आग्रह—ये कुछ ऐसी चीज़ें थीं जिन्होंने छायावाद को मांस-मज्जा प्रदान की। रीतिकाव्य की तरह छायावाद भी मूलतः साहित्यिक आन्दोलन था। परन्तु इस साहित्यिक आन्दोलन के इतिहास को पूर्णतः समझना कठिन है। अपने देश के साहित्य और साहित्यशास्त्र की ओर से विमुख रहकर इसने विदेश के साहित्य और साहित्यशास्त्र से सम्बन्ध जोड़ा। रिचर्ड्स और इलियट इस आन्दोलन के साहित्य-गुरु बने। शेली, कीट्स वर्ड्स्वर्थ उसके मार्गप्रदर्शक। रीतिकाव्य की छंदों की एकरसता के विरुद्ध मुक्तछंद, अतुकांत, विषमछंद—न जाने कितने नये छंद गढे गये। द्विवेदीकाव्य की इतिवृत्तात्मकता के विरोध में कल्पना का इतना ऊहापोहात्मक प्रयोग हुआ कि उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं के ढेर लग गये। 'पल्लव' और 'परिमल' इन दो प्रवृत्तियों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। विषय, छंद, शैली, भाषा सभी के लिए बंगला और अंग्रेज़ी काव्य का मुँह ताका गया। आचार्य शुक्ल की यह लांछना ठीक है कि इस काव्य में अर्थभूमि का प्रसार अधिक नहीं था। नये-नये विषय इसमें नहीं। सामाजिकता का तो एकांत रूप से लोप है। कवि कल्पना के रंगमहल से बाहर ही नहीं निकलता। परन्तु कवि की इस एकांत साधना ने उसकी शक्ति को भाषा और शैली के संस्कार तक सीमित रख कर बड़ा काम किया। वास्तव में हज़ारों नये शब्द, हज़ारों नये शब्द-समूह, हज़ारों नये मूर्त्त चित्र, हज़ारों नये भाव-विन्यास छायावाद ने हिन्दी काव्य को दिये। आज तो वे सब हमारे गद्य को भी धनी बना रहे हैं। सच तो यह है कि आधुनिक काव्य और आज की खड़ीबोली

को सम्पन्न बनाने का बहुत बड़ा श्रेय प्रसाद, पंत और निराला की वर्षों की एकांत तपस्या को मिलना चाहिये। छायावाद काव्य ने हमें पश्चिम को साहित्य-विभूति से जोड़ा। बंगला की सारी भावुकता को उसने नया रूप दिया। रवीन्द्रनाथ तो वह हिन्दी को नहीं दे सका, परन्तु उसने हिन्दी काव्य को रीतिकाव्य को ब्रजनिकुञ्ज की गलियों और द्विवेदी-काव्य की नीरस मरुस्थली से बाहर निकाला। हिन्दी कविता को उसने एक नितांत नई दिशा दी, इसमें काई संदेह नहीं। इन "कवियों ने बाह्य-जगत को अपने अंतर के योग में उपलब्ध किया था। कविजगत् को अपनी रुचि, अपनी कल्पना और अपने सुख-दुखों में गुंथा हुआ देखता था और रचना-कौशल से उसका व्यक्तिजगत पाठक का उपभोग्य हो उठता था। X X पिछले पंद्रह—बीस वर्षों की हिन्दी कविता में उसकी सैकड़ों वर्षों की परम्परा के विरुद्ध वैयिक्तिकता का अबाध प्रवेश हुआ है। चाहे कवि कल्पना के द्वारा इस जगत की विसदृशताओं से युक्त एक मनोहर जगत् की सृष्टि कर रहा हो, या चिन्ता-द्वारा किसी अज्ञात रहस्य के भीतर प्रवेश करने की चेष्टा कर रहा हो,—सर्वत्र उसकी वैयक्तिकता ही प्रधान हो उठती रही है।" (हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १३७-१३८) आचार्य द्विवेदी के अनुसार नई कविता की कई विशेषताएँ हैं :

१—कल्पना की प्रधानता

२—चिन्तनमूलक प्रवृत्तियाँ

३—प्रभाववाद (Impressionism)

४—वैयक्तिकता

५—भावुकता

६—भाषा और शैली के नवीन प्रयोग। ये सब नई प्रवृत्तियाँ आधुनिक हिन्दी काव्य को साधारण काव्यभूमि से बहुत ऊँचा उठा देती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रीतिकालीन कविता का उज्ज्वल कलापक्ष म्लान पड़ गया था। उसमें वासना की कालिमा ही अधिक

थी। इसी समय हिन्दी प्रदेश पश्चिम के सम्पर्क में आया। पहले पश्चिमी दुनिया से हमारा सम्पर्क बंगला साहित्य के माध्यम से हुआ। भारतेन्दु ने हेमचन्द्र की नई सामाजिक कविताओं को अपनी रचनाओं का आधार माना। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हम सीधे अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित होने लगे। पहले अट्ठारहवीं शताब्दी के क्लासिकल कवि पोप ड्राइडन, गोल्डस्मिथ हमारे मॉडिल बने, फिर वर्ड्स्वर्थ, शैली, कीट्स, टेनीसन (उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक कवि)। १६१८ से यह विदेशी प्रभाव इतना अधिक हो गया कि इसने हिन्दी कविता में अभूतपूर्व युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी तक हम काव्य-परम्पराओं और काव्यशास्त्र की रूढ़ियों में इतने बँधे थे कि कवि का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं रह गया था। बँधे-बँधाये नियमों के भीतर से कवि चाहे जितनी सफलता पा ले, उसे विद्रोह करने की स्वतंत्रता नहीं थी। विषय, भाव, भाषा, शैली सब में वह बँधा हुआ था। रूढ़ियों के विरुद्ध संदेह करना भी पाप था। नये छायावादी कवि ने परिपाटी-विहित रसज्ञता और रूढ़ि-समर्थित काव्यकला को चुनौती दी। नये काव्य और पश्चिमी काव्यशास्त्र के अध्ययन से उसने अपने कुछ आधार बनाये। प्राचीन कविता को इस नये मापदंड से उसने नापा तो वह छोटी पड़ी। अतः उसके मन में प्रचीन काव्य-सम्पत्ति के प्रति सन्देह का जन्म हुआ और इस सन्देह के फलस्वरूप असन्तोष। एक नये रहस्य, एक नई विचार-धारा ने हिन्दी के तरुण कवियों को आक्रांत कर लिया। पहली बार धर्म, दर्शन और संस्कृत साहित्यशास्त्र की संकीर्ण दुनिया से बाहर निकल कर वह प्रकृति, मानव के दुःख-सुख और समाज के सम्पर्क में आया। उसके लिए उसकी सबसे बड़ी खोज स्वयं उसका व्यक्तित्व था। उसीके भीतर से वह बाहर के संसार को देखने लगा। सब कुछ अद्भुत था, विचित्र था।

कवि ने समझा, उसने जो कविता समझ रखा है उससे बाहर

भी बहुत कुछ कविता है। सबसे अधिक प्रभाव अंग्रेज़ी की कविता का पड़ा। छन्द, भाषा, रीति-नीति और उपमा-रूपक आदि सभी अंग्रेज़ी कविता के छन्द, भाषा, रीति-नीति और अलंकार-भंडार से प्रभावित हुए। गीतकाव्य (लिरिक) के रूप में एक नितांत नई चीज़ हमारे पास आ गई। परन्तु यह सब तो ऊपरी परिवर्तन था, बाह्यरूप का परिवर्तन था। कविता की 'स्पिरिट' ही बदल गई। वैयक्तिकता ने निश्चित रूप से स्थान पाया। नारी के प्रति अत्यंत उदात्त भावनाएँ जाग्रत हुई। वासना के शीशमहल से निकल कर वह जीवन के अनेक पथों पर बढ़ती हुई दिखलाई पड़ने लगी। उद्दीपन भाव मात्र या सजावट के लिए ही प्रकृति का उपयोग हो, यह बात नहीं रही। प्राचीन धार्मिक विश्वासों की नीवें हिल गईं। इससे रामकृष्ण कविता के आलंबन नहीं रहे। प्रकृति, पीड़ित मानवता, सार्वभौमिक रहस्यसत्ता—इन्होंने ईश्वर का स्थान ले लिया। एक हज़ार वर्ष की पुरानी अपनी काव्य-संपत्ति को छोड़कर हिन्दी का कवि पश्चिम के दो सौ वर्षों के साहित्य को ही सब कुछ मानकर चला।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी कविता को विश्व के कविता साहित्य के संपर्क में लाने का श्रेय छायावाद को ही मिलेगा। आदि कवि वाल्मीकि से भारतेन्दु तक कविता की साधना भारत की प्रमुख साधना रही है और उसमें बहुत कुछ इतना श्रेष्ठ है कि हमें युग-युग उसका गर्व रहेगा। कदाचित् संसार के किसी भी देश का काव्य इतना उदात्त इतना कमनीय, इतना महान न हो। परन्तु भारत से बाहर अन्य-अन्य देशों ने साहित्यशास्त्र और काव्य के जो नये नये मार्ग खोज निकाले थे, उनमें भी बहुत कुछ श्रेष्ठ था। छायावादी कवि ने भारत से बाहर के विश्व को इसी महान संपत्ति की ओर इंगित किया और स्वयं इस संपत्ति से प्रभावित होकर नई-नई क्रांतियों का प्रवर्तन किया।

———

हिन्दी साहित्य संबंधी निबंध-संग्रह

प्रबंध-चिन्तामणि

हिन्दी का आलोचना-साहित्य अभी अधिक पुराना नहीं हुआ है। जो है, वह कुछ खोज-ग्रंथों और प्रबन्धों के रूप में है जो खोज-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं, अतः सर्वसुलभ नहीं हैं। मौलिक आलोचनात्मक प्रबन्ध-साहित्य का हिन्दी में अभी श्रीगणेश ही हुआ है।

"प्रबन्ध-चिंतामणि" के विद्वान लेखक श्री रामरतन भटनागर ने हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। हिन्दी साहित्य का कोई अंग उनकी तीव्र समीक्षक-दृष्टि से बच नहीं सका है। अपने ग्रन्थों के लिए वे साधारण जनता और खोजी विद्वानों का समान आदर प्राप्त कर चुके हैं। प्रबन्ध-चिंतामणि में इन्हीं विद्वान लेखक के प्राचीन हिन्दी काव्य, धर्म, दर्शन और कला सम्बन्धी इक्कीस निबन्ध संग्रहीत हैं। हिन्दी की सर्वोच्च कक्षाओं के विद्यार्थी और हिन्दी के प्राचीन काव्य के पारखी और आलोचक इन निबन्धों से नई अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी आशा है।

हिन्दी साहित्य-सम्बन्धी गवेषणात्मक प्रबन्धों का इतना उच्च श्रेणी का संग्रह हिन्दी में नई चीज़ होगा।

मूल्य ८)

शीघ्र प्रकाशित होगा

किताब महल : प्रकाशक : इलाहाबाद

हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन

हिन्दी साहित्य में भारत के मध्य प्रदेश की जनता की लगभग १२०० वर्षों की चिंताधाराओं, भावनाओं, धर्म, संस्कृति और आशाकांक्षाओं का ऐसा बड़ा सङ्कलन है जो काल के सर्वभक्षी मुख से बच कर आज हम तक पहुंच सका है। मध्यदेश भारत राष्ट्र का हृदय है। आज से नहीं, आर्यों के समय से। वैदिक काल से राजपूत काल तक आर्यों की सारी चिन्तनाओं से हिन्दी साहित्य प्रभावित है, और आज की उत्तरी भारत की अन्य भाषाओं की अपेक्षा वह संस्कृत साहित्य का उत्तराधिकार अधिक मात्रा में प्राप्त कर सका है। इसी से स्वतंत्र भारत के लिए इस साहित्य का बड़ा महत्व है।

परन्तु हिन्दी साहित्य में केवल संस्कृत की साहित्यिक धाराओं की परम्परा ही सुरक्षित नहीं है, उसमें स्वतंत्र रूप से नया भी बहुत कुछ है।। गोरखनाथ से लेकर आधुनिक युग के राधा-स्वामी सम्प्रदायों तक भारत में एक विराट धार्मिक समन्वय, एक महान सांस्कृतिक ऐक्य की स्थापना की एक परम्परा चलती रही है। गोरखनाथ, कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, दादू, रज्जब और अनेकानेक भक्तों, सन्तों, गोरखपंथियों, सूफ़ियों और निरंजनियों ने इस परम्परा में योग दिया है। दस शताब्दियों तक भारत के महान सांस्कृतिक नेताओं ने जो सोचा-समझा, जिसके प्रचार को अपने जीवन का ध्येय बनाया, जो जान कर अमरता प्राप्त की, वह आज हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह केवल साहित्य नहीं है। धर्म, दर्शन, संस्कृति, जीवन-विज्ञान, नीति

और संङ्गीत की अनेक धाराएँ इस साहित्य का अविच्छिन्न अंग बन गई हैं।

इसी से हिन्दी साहित्य के इतिहासकार का उत्तरदायित्व बड़ा कठिन हो जाता है। विभिन्न विचार-धाराओं और विरोधी भावनाओं को निर्विकार भाव से समेट कर उसे चलना होता है। अनेक महान कवियों और लेखकों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन उसे देना होता है, परन्तु सबसे अधिक कठिन कार्य है युगों-युगों की पुरानी अंतस्साधनाओं को पुनर्जीवित करना और उनके नेताओं के व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण। केवल 'इतिहास' उसे नहीं देना है; उसे १२०० वर्षों की जनता और उसके नेताओं को जीवन देना है।

भटनागर जी का यह इतिहास इस नए दृष्टिकोण को सामने लाता है। डा० श्यामसुन्दरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास अपनी-अपनी जगह पूर्ण हैं, परन्तु पिछले पन्द्रह-सोलह वर्षों में साहित्य-सम्बन्धी अनेक नई खोजे हुई हैं जिन्होंने नई धाराओं का सूत्रपात किया है और हमें नई अंतर्दृष्टि दी है। इन पिछले वर्षों में जिस साहित्य का निर्माण हुआ है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। फिर वस्तु-विवेचन का ढंग भी अधिक वैज्ञानिक और अधिक सतर्क हो गया है। 'हिन्दी साहित्य : एक अध्ययन' में पहली बार कटे-छँटे वैज्ञानिक ढंग से हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण और संश्लेषण उपस्थित किया गया है।

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों, प्रेमियों और खोजियों को हमारी यह नई भेंट प्रिय होगी, इसमें हमें किंचित भी सन्देह नहीं है।

मूल्य ४॥)

किताब महल : प्रकाशक : इलाहाबाद